सितम्बर १९२९
वर्ष ७, खण्ड २]

चाँद

Regd. No. A–1154
[संख्या ५, पूर्ण संख्या ८३

वार्षिक चन्दा ६॥)
छः माही ३॥)

सम्पादक—श्रीरामरख सिंह सहगल

PRINTED AT

विदेश का चन्दा ८॥)
इस अङ्क का मूल्य ॥)

THE FINE ART PRINTING COTTAGE, ALLAHABAD.

तार का पता:—"गोल्डमाइन" कलकत्ता | टेलीफ़ोन-नं०—बड़ा बाज़ार १५९०, कलकत्ता

सोना, चाँदी और जवाहरात के ज़ेवरों का

अपूर्व संग्रह-स्थान

[इस प्रतिष्ठित फ़र्म के सञ्चालकों से हमारा पूर्ण परिचय है। यहाँ किसी प्रकार का धोखा होगा, इस बात का स्वप्न में भी भय न करना चाहिए। सारा काम सञ्चालकों की देख-भाल में सुन्दर और ईमानदारी से होता है; हमें इसका पूर्ण विश्वास है।

—सम्पादक 'चाँद'

मोती, पुखराज और इमीटेसन मानिक का बहुत सस्ता नाक का कील हमारे यहाँ मिलेगा।

सोने चाँदी का हर एक क़िस्म का ज़ेवर हमारे यहाँ तैयार रहता है और ऑर्डर देने से बहुत शीघ्र इच्छानुसार बना दिया जाता है!

हीरे, पन्ने, मोती, मानिक की हर एक चीज़ हमारे यहाँ तैयार मिलेगी। नमूना-सूची मँगा कर देखिए!

हर एक क़िस्म के चाँदी के बर्तन और चाँदी की फ़ैन्सी चीज़ें हमारी नोवेल्टी है।

पता:—मुरारजी गोविन्दजी जौहरी, १५६ हैरिसन रोड, कलकत्ता

नोट—सोने और चाँदी का विशाल सूचीपत्र ।) का टिकट भेजने से मुफ़्त भेजा जायगा।

Vinyo

यौवन-विज्ञान

में बतलाया गया है कि किस उपाय से पूर्ण-दैहिक सुख और यौवन का उपभोग किया जा सकता है। किस तरह यौवन की तेज़ी, सुखभोग, यौवन-धर्म, इन्द्रिय-वृत्ति चरितार्थ कर अपना स्वास्थ्य और सुख उम्रों का त्यों क़ायम रक्खा जा सकता है; रक्तहीन बहुसन्तान की जननी की अकाल मृत्यु से किस तरह रक्षा की जा सकती है, यौवन किस तरह बहुत दिनों तक भोग किया जा सकता है। इस समय आधुनिक विज्ञान ने जो उपाय बताए हैं, वे सभी उपाय इस पुस्तक में लिख दिए गए हैं। डॉक्टर मेरी स्टोप्स के उपायों से निश्चित हो गया है कि गर्भ-रोध का कौन उपाय सर्वोत्तम है—सभी बातें इसमें मिलेंगी। भारत के जलवायु के उपयुक्त विज्ञान-सम्मत सभी उपाय इसमें लिख दिए गए हैं। प्रत्येक युवक-युवती को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। इस पुस्तक द्वारा वे निर्भय होकर अपनी गृहस्थी चला सकते हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०; !

विवाह-विज्ञान

विवाह किस उम्र में करना चाहिए? यौवन-धर्म क्या है? स्त्रियों की ऋतु क्या वस्तु है? इन्द्रिय-परिचालन किस अवस्था में करना चाहिए? बन्ध्या (बाँझ वा निपूती) होने के क्या कारण हैं? उनका इलाज क्योंकर हो सकता है? किन उपायों के अवलम्बन करने से गर्भ नियमित किया (रोका) जा सकता है? अर्थात् किस प्रकार इच्छानुसार तीन-चार वर्षों का अन्तर देकर नीरोग तथा बलिष्ठ सन्तान प्राप्त हो सकती है—इन गृहस्थ तथा जीवनोपयोगी विषयों पर विशद रूप से इस पुस्तक में विचार किया गया है। यूरोपादि देशों में गर्भ रोकने के जितने विज्ञान-सम्मत उपाय डॉक्टरों ने बतलाए हैं। वे प्रायः सभी इस पुस्तक में भली-भाँति समझा दिए हैं। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २); किन्तु यह पुस्तक केवल विवाहित स्त्री-पुरुष को ही पढ़ना चाहिए, केवल नव-दम्पतियों के लिए ही पुस्तक लिखी गई है।

विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए चार अनमोल पुस्तकें !

स्त्री की चिट्ठी

समाज-लीला का ज्वलन्त चित्र है। जो गृहस्थी स्वर्ग का नन्दन-वन होनी चाहिए, वह नरक-कुण्ड बन रही है। स्त्री का स्वास्थ्य, सुख, प्रेम, उच्च अभिलाषा सभी तो रसातल में चला जा रहा है। इसी लिए आज स्त्री-संसार तड़प उठा है; इसी लिए इस पुस्तक में स्त्री ने पति से, अपने हृदय की भीषण दाह के कारण प्रकट किए हैं; इसी लिए आज वह पूछती है—स्त्री-जाति ने ऐसा क्या अपराध किया है, जिससे उसे यह अत्याचार सहन करना पड़ता है, इतनी निर्दयता भोगनी पड़ती है? क्या स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध का यही मतलब है, क्या मातृत्व के विकाश का यही रूप है? इन बातों का कौन उत्तरदायी है? इसका क्या उपाय है? एक चिरदुःखिता नारी ने मूक-पशु की भाँति ये सभी बातें, उपद्रव, सभी अत्याचार सहन कर अन्त में ऊब कर पति-देवता को आड़े-हाथों लिया है! सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु० !

मैनेजर—'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

गुप्त चिट्ठा

इस पुस्तक में स्त्री-पुरुष सम्बन्धी गुप्त विषय को एक जगत्-प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर ने स्त्री-पुरुष के पत्र-रूप में लिखा है। छोटी अवस्था में ही मेडिकल कॉलेज के एक विद्यार्थी का विवाह, विवाह के कारण बालिका, संसार-ज्ञान से हीना, नव-वधू की प्रलोभनों से रक्षा करने की चेष्टा, प्रथम यौवन-काल, द्विरागमन, प्रथम सहवास, गर्भ, सभी बातों पर इसमें विचार किया गया है। सन्तान पर सन्तान होने के कारण जब शरीर एकदम ख़राब हो जाता है, सब सुख नष्ट हो जाते हैं, तब सुधार किस तरह हो सकता है। प्रणय के प्रबल आवेग में स्वामी ने स्त्री को और स्त्री ने स्वामी को जो पत्र लिखे हैं, वे बड़े ही गुप्त, संसार भर के लिए नहीं, परस्पर की दो आत्माओं के लिए हैं—संसार में होने वाली स्त्री-पुरुष सम्बन्धी सभी बातें लिखी गई हैं। ऐसी चिट्ठियाँ, इतना ऊँचा साहित्य सबको अवश्य पढ़ना चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु० !

मैनेजर—'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

विषय-सूची

क्रमाङ्क लेख लेखक पृष्ठ

१—सुहाग-रात (कविता) [श्री० रामकुमार लाल जी वर्मा, एम० ए०] ५०६
२—सम्पादकीय विचार ५१०
३—आराधना (कविता) [श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी] ५२७
४—उद्धार [श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक] ५२८
५—वैदिक-यज्ञ [आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री] ५३६
६—शिशु (कविता) [श्री० बाबूलाल जी भार्गव 'कीर्ति'] ५४४
७—चीनी (शक्कर) का व्यवसाय [श्री० बाबूलालसिंह जी] ५४५
८—हिन्दू-लॉ में स्त्रियों के अधिकार [श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल्० बी०] ५५६
९—प्रबला (कविता) [श्री० रामचरित जी उपाध्याय] ५६२
१०—समाज का अग्नि कुण्ड [अध्यापक श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद'] ५६३

* * *

विविध विषय

११—अनाथाश्रम [श्रीमती हेमन्तकुमारी चौधरानी] ५७२
१२—मैथिल-स्त्रियाँ [श्री० कालीकुमार दास जी, मैथिल-वाचस्पति] ५७६

श्याम कान्ता

जासूसी, तिलिस्मी, वीरता, जादूगरी, संसार-चक्र और बहुत से गुप्त-रहस्यों का नया उपन्यास ! ऐसा उत्तम उपन्यास आज तक कोई नहीं निकला। एक बार शुरू करके बग़ैर ख़तम किए छोड़ने को जी नहीं करता। इसकी और क्या तारीफ़ करें, मँगा कर देखिए ! मूल्य केवल १); डाक-ख़र्च अलग।

काश्तकारी-मास्टर

अर्थात् खेती की पैदावार बढ़ाने की पुस्तक

इस पुस्तक में खेतों को विचित्र खाद देकर नई रीतियों से बोना बतलाया गया है, जिससे दुगुनी और चौगुनी पैदावार हो सकती है। गेहूँ, ऊख और धान आदि मोटा, लम्बा और भारी बनाना लिखा है। मूल्य केवल ।), डाक-ख़र्च अलग।

एक पुस्तक के लिए ।-) के टिकिट आने चाहिए।

जीवन-रसधारा

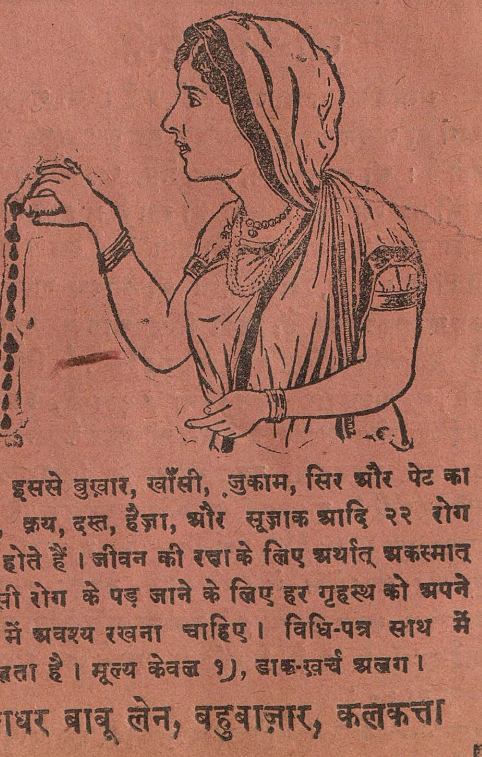

इससे बुख़ार, खाँसी, ज़ुकाम, सिर और पेट का दर्द, क्रय, दस्त, हैज़ा, और सूज़ाक आदि २२ रोग दूर होते हैं। जीवन की रक्षा के लिए अर्थात् अकस्मात् किसी रोग के पड़ जाने के लिए हर गृहस्थ को अपने घर में अवश्य रखना चाहिए। विधि-पत्र साथ में मिलता है। मूल्य केवल १), डाक-ख़र्च अलग।

'जीवन-रसधारा' ऑफ़िस—नं० १, गङ्गाधर बाबू लेन, बहुबाज़ार, कलकत्ता

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
१३	भारतवर्ष के साधु	[श्री० आनन्दीप्रसाद जी श्रीवास्तव]	५७८
१४	भारतीय महिलाएँ और फ़ैशन	[श्री० प्रताप-चन्द्र जी जैन]	५८१
१५	स्त्रियों के स्वत्व पर आक्रमण	[श्रीमती शकुन्तला देवी जी गुप्त 'हिन्दी-प्रभाकर']	५८२
१६	युवती का विवाह शास्त्र-सम्मत है	[साहित्या-चार्य 'मग']	५८५
१७	श्रीमती सावित्री देवी नागर	[श्री० सुरेन्द्र-नाथ जी ठाकुर, बी० ए०, विशारद]	५८६
१८	गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति	[श्री० रजनीकान्त जी शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०]	५८९
१९	हिन्दू-स्त्रियों में इस्लाम का प्रचार	[श्री० सन्तराम जी, बी० ए०]	५९३
२०	दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !	[लेखक—"पागल"]	५९६
२१	घरेलू दवाइयाँ	[श्री० रामस्वरूप जी राठी; कुमारी सावित्रीदेवी जी; श्रीमती उत्तरा-कुमारी जी वाजपेयी]	६०१

* * *

रङ्ग-भूमि

२२	न्याय का ताण्डव !		६०२
२३	इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स-स्कूल और कॉलेज		६०५
२४	हिन्दुओं की पाखण्ड-पूजा		६१०
२५	स्त्रियों का व्यापार		६१२
२६	७० × १३		६१३
२७	कोटा-राज्य का वैवाहिक क़ानून		६१५
२८	काला और गोरा क़ानून		६१८

* * *

सफ़री ग्रामोफ़ोन

से

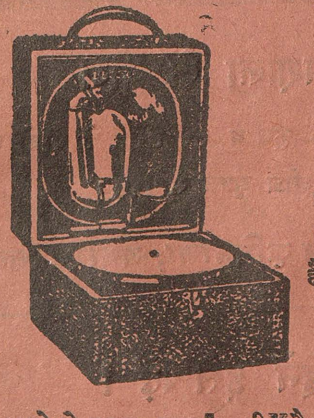

आवाज़ में उत्तम और तेज़, सफ़र के ले जाने में हलका और एक हैण्ड बेग की तरह, बजाने के समय बहुत जल्दी तैयार, मूल्य में सस्ता और चलने में मज़बूत।

घर बैठे फ़ोटोग्राफ़ी सीखिये

३२ चित्रों सहित १)

हिन्दी ग्रामोफ़ोन रेकर्ड सङ्गीत

अर्थात् बड़े प्रसिद्ध प्रसिद्ध गवैयोंके गाये हुए गानोंकी उत्तमोत्तम और मनोरंजक पुस्तकें

प्रथम भाग—५५० रेकर्डों के ११०० गाने मूल्य १।।।) रेशमी जिल्द सहित २।।)

द्वितीय भाग—५०० रेकर्डों के १००० गाने मूल्य १।।।) रेशमी जिल्द सहित २।।)

तृतीय भाग—कामिक हंसी, ड्रामे और ज़ोनोफोन के गाने १।।।) रेशमी जिल्द २।।)

चतुर्थ भाग—मारवाड़ी, नैपाली, मराठी, सिंधी और बंगला रेकर्डों के गानोंका हिन्दी में आनन्द लिजीये— मूल्य केवल मात्र १।) रुपया रेशमी जिल्द १।।।)

ग्रामोफ़ोन, हारमोनियम, फ़ोटो का सामान, बायस्कोप, बेतार का तार और साइकिल आदि का सूचीपत्र मुफ़्त मँगा कर देखिए।

एम० एल० साहा,

हेड ऑफ़िस—५।१ धर्मतल्ला स्ट्रीट, कलकत्ता — ब्राञ्च—७ सी, लिण्डसे स्ट्रीट, कलकत्ता

क्रमाङ्क	लेख	लेखक	पृष्ठ
२६—पाक-शिक्षा [श्रीमती कमलाकुमारी जी ; श्रीमती प्रकाशदेवी जी भटनागर ; श्रीमती सुशीलादेवी देशमुख]			६१६
३०—दुबे जी की चिट्ठी [श्री० विजयानन्द दुबे जी]			६२०
३१—सङ्गीत-सौरभ [सम्पादक तथा स्वरकार श्री० किरणकुमार जी मुखोपाध्याय (नीलूबाबू); शब्दकार—सूरदास जी]			६२४
३२—समाचार-संग्रह			६२६

*　　*　　*

चित्र-सूची

१—प्रेमोन्मत्त मीरा (तिरङ्गा)

२-४—इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स-हाईस्कूल तथा इन्टरमीजियट कॉलेज सम्बन्धी ३ चित्र (आर्ट-पेपर पर रङ्गीन)

सादे

५—वैकुअम पैन, मल्टीपुल एवैपोरेटर और क्रिस्टलाइज़र

६—क्रिस्टलाइज़र

७—सेण्ट्रीफ़ूगल मशीन

क्रमाङ्क	चित्र
८—चीनी का कारख़ाना	
९—जावा के चीनी के कारख़ाने का दृश्य	
१०—स्वर्गीया लक्ष्मीदेवी कुम्भकोणम्	
११—श्रीमती टी० के० माधवी अम्मा	
१२—श्रीमती सामबीबी	
१३—मिस ईची इपी, एम० डी० तिरुवेल्ला (मद्रास)	
१४—श्रीमती के० डी० रुकमनी अम्मा, बी० ए०	
१५—श्रीमती के० एस० पारवती अम्मल	
१६—मिस ई० डब्लू० ग्रे	
१७—मिस ए० के० रुकमनी	
१८—मिसेज़ आर० थॉमस, बी० ए०, एल० टी०	
१९—श्रीमती डी० सकम्मा	
२०—श्रीमती बी० भागीरथी अम्मा	
२१—कुमारी लीलावती जी भँवर, बी० ए०	
२२—श्रीमती सुषमादेवी	
२३—श्रीमती सावित्री देवी नागर	
२४—रूस की भावी पीढ़ी	
२५-२८—इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स-हाईस्कूल तथा इन्टरमीजियट-कॉलेज सम्बन्धी ४ चित्र	

बिक्री के लिए मैशीनरी

सेकेण्ड हैण्ड मैशीनरियों का एकमात्र संग्रह-स्थान । किसी प्रकार की मैशीनरी यदि आप उचित मूल्य तथा अच्छी हालत में चाहते हैं तो निम्न-लिखित स्थान से पत्र-व्यवहार कीजिए अथवा स्वयम् आकर मिलिए ।

एशियाटिक इञ्जीनियरिङ्ग कम्पनी

फ़ो-नं० १६७५ । २१ स्टैण्ड रोड, कलकत्ता

कृषिशाला के बीज

कृषिशाला के फूल व तरकारियों के बीजों का सचित्र सूचीपत्र शीघ्र मुफ़्त मँगाइए ।

श्री० सीताराम कृषिशाला, बनारस सिटी

बहिनें इसे पढ़ें !

जो बहिनें कठिन और भयङ्कर रोगों से पीड़ित हैं वे लज्जा त्याग कर एक बार पत्र-व्यवहार करें । हमारे यहाँ स्त्रियों के हर प्रकार के रोगों की उत्तम औषधियाँ तैयार हैं । पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है ।

लक्ष्मीदेवी (स्त्री-रोगों की विशेषज्ञ)

सञ्चालिका—नारी-आरोग्य भवन, झाँसी

मुग़ल-दर्बार-रहस्य

उपनाम

अमृत और विष

यह ऐतिहासिक उपन्यास मुग़ल-दर्बार-रहस्य के आधार पर लिखा गया है। यदि नूरजहाँ के शासन-काल के दाँव-पेच देखना हो; यदि देखना हो कि हिन्दुओं के ख़िलाफ़ मुसलमानों के शासन-काल में कैसे-कैसे भीषण षड्यन्त्र रचे जाते थे; यदि मुसलमान बादशाहों की काम-पिपासा, उनकी प्रेम-लीला और विलासिता का नग्न-चित्र देखना हो, तो इस महत्वपूर्ण ऐतिहासिक उपन्यास को अवश्य पढ़िए।

लगभग ८५० पृष्ठ की अमूल्य पुस्तक का मूल्य केवल ४) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए ३॥) मात्र !

विदूषक

नाम ही से पुस्तक का विषय इतना स्पष्ट है कि इसकी चर्चा करना व्यर्थ है। एक-एक चुटकुले पढ़िए और हँस हँस कर दोहरे हो जाइए, इस बात की गारण्टी है। एक विशेषता इस पुस्तक में यह है कि सारे चुटकुले विनोदपूर्ण और चुने हुए हैं। कोई भी चुटकुला पढ़ कर अगर दाँत न निकल पड़ें तो मू० वापस। मू० १) स्था० ग्रा० से ॥)

अबलाओं पर अत्याचार

इस पुस्तक में भारतीय स्त्री-समाज का इतिहास बड़ी रोचक भाषा में लिखा गया है। इसके साथ स्त्री-जाति के महत्व, उससे होने वाले उपकार, जाग्रति एवं सुधार को बड़ी उत्तमता और विद्वत्ता से प्रदर्शित किया गया है। पुस्तक में वर्णित स्त्री-जाति की पहली अवस्था, उन्नति एवं जाग्रति को देखकर हृदय छटपटा उठता है और उस काल को देखने के लिए लालायित हो जाता है। इसमें वर्तमान स्त्री-समाज की करुणाजनक स्थिति का सच्चा और नग्न-चित्र चित्रित किया गया है। मू० २॥); स्था० ग्रा० से १॥।≈)

☛ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं !

तीसरी बार ! तीसरा संस्करण !!

प्राणनाथ

लेखक—

[श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी०]

इस सुन्दर उपन्यास की उत्तमता का अन्दाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि इसकी ६,००० प्रतियाँ हाथोंहाथ बिक चुकी हैं और नित्य माँगें चली आ रही हैं। यह चीज़ है, जिसे पढ़कर आपको अपनी सामाजिक स्थिति पर बरसों विचार भी करना होगा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अपने को उतारने की शपथ खानी होगी। पहले संस्करण का मूल्य २।।) था, पर केवल प्रचार की दृष्टि से इसे घटाकर २।) कर दिया गया है, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय हुई है। पुस्तक सजिल्द है। आज ही एक प्रति मँगा लीजिए। स्थायी ग्राहकों से मूल्य केवल १।।≈) मात्र !

नवीन संस्करण !

गुदगुदी

पुस्तक क्या है, हँसी का ख़ज़ाना है। श्रीवास्तव महोदय ने इस पुस्तक में कमाल कर दिया है। एक-एक चुटकुला पढ़िए और हँस-हँस के दोहरे हो जाइए, यही इस पुस्तक का संक्षिप्त परिचय है। बालकों तथा स्त्रियों के लिए विशेष मनोरञ्जन की सामग्री है। मूल्य केवल ।) स्थायी ग्राहकों से ।≈); पहला संस्करण केवल एक मास में बिक गया था, दूसरी बार छपकर तैयार है।

मूर्खराज

[ले० श्री० प्रवासीलाल जी वर्मा]

अस्वस्थ को गुदगुदाने वाली, हृदय की कली खिलाने वाली यह अनोखी पुस्तक है। दुनिया की झंझटों से जब कभी आपका जी ऊब जाय, आप इस पुस्तक को उठाकर पढ़िए; मुँह की मुर्दनी दूर हो जायगी—हास्य की अनोखी छटा छा जायगी। पुस्तक को पूरी किए बिना आप कभी न छोड़ेंगे यह हमारा दावा है। पुस्तक की छपाई-सफ़ाई और काग़ज़ के बारे में प्रशंसा करना व्यर्थ है। मूल्य सिर्फ़ १)

शैलकुमारी

[ले० पं० रामकिशोर जी मालवीय]

यह उपन्यास अपनी मौलिकता, मनोरञ्जकता, शिक्षा, उत्तम लेखन-शैली तथा भाषा की सरलता और लालित्य के कारण हिन्दी-संसार में विशेष स्थान प्राप्त कर चुका है ! अपने ढङ्ग के इस अनोखे उपन्यास में यह दिखाया गया है कि आजकल एम० ए०, बी० ए० और एफ़० ए० की डिग्री-प्राप्त स्त्रियाँ किस प्रकार अपनी शिक्षा के अभिमान में अपने योग्य पति तक का अनादर कर उनसे निन्दनीय व्यवहार करती हैं; किस प्रकार उन्हें घरेलू काम-काज से घृणा उत्पन्न हो जाती है; अपने पति से वे किस प्रकार ख़िदमतें कराती हैं और उनका गार्हस्थ्य जीवन कितना दुःखपूर्ण हो जाता है, दूसरी ओर यह दिखाया गया है कि पढ़े-लिखे युवकों के साथ फूहड़ तथा अनपढ़ और गँवार कन्याओं का बेजोड़ विवाह ज़बरदस्ती कर देने से दोनों का जीवन कैसा दुःखमय हो जाता है। मूल्य केवल २) स्थायी ग्राहकों से १।।) मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

उपयोगी चिकित्सा

[ले० प्रोफ़ेसर पं० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य]

इस महत्वपूर्ण पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्‌गृहस्थ के यहाँ होनी चाहिए। इस पुस्तक को आद्योपान्त एक बार पढ़ लेने से फिर आपको डॉक्टरों की ख़ुशामदें न करनी होंगी—आपके घर के पास तक बीमारियाँ न फटक सकेंगी। इस पुस्तक में रोगों की उत्पत्ति का कारण, इसकी पूरी व्याख्या, उनसे बचने के उपाय उसके इलाज दिए गए हैं। रोगी की परिचर्या किस प्रकार करनी चाहिए, इसकी भी भरपूर व्याख्या आपको मिलेगी। स्त्रियों के लिए तो पुस्तक वास्तव में बड़े काम की है। पृष्ठ-संख्या लगभग २२५; सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥); स्थायी ग्राहकों के लिए १=)

सन्तान शास्त्र

[ले० विद्यावाचस्पति पं० गणेशदत्त जी गौड़ 'इन्द्र']

जो माता-पिता मनचाही सन्तान उत्पन्न करना चाहते हैं, उनके लिए हिन्दी में इससे अच्छी पुस्तक न मिलेगी। कामविज्ञान जैसे गहन विषय पर यह हिन्दी में पहली पुस्तक है, जो इतनी कठिन छान-बीन करने के बाद लिखी गई है। सन्तान-वृद्धि-निग्रह का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। बालपन से लेकर युवावस्था तक, अर्थात् ब्रह्मचर्य से लेकर काम-विज्ञान की उच्च से उच्च शिक्षा दी गई है। प्रत्येक गुप्त बात पर भरपूर प्रकाश डाला गया है, प्रत्येक प्रकार के गुप्त रोग का भी सविस्तार विवेचन किया गया है। रोग और उसके निदान के अलावा प्रत्येक रोग की सैकड़ों परीक्षित दवाइयों के नुस्ख़े भी दिए गए हैं। पुस्तक सचित्र है—४ तिरङ्गे और २५ सादे चित्र आर्ट पेपर पर छिप गए हैं। इसकी प्रशंसा करना व्यर्थ है। सजिल्द पुस्तक का मूल्य ४); स्थायी ग्राहकों के लिए ३)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

यदि आपको अपने बच्चे प्यारे हैं, यदि आप उन्हें रोग और मृत्यु से बचाना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को स्वयं पढ़िए और गृह-देवियों को अवश्य पढ़ाइए, परमात्मा आपका मङ्गल करेंगे।

सुन्दर छपी हुई सचित्र Protecting Cover सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य लागत मात्र केवल २) रु०, 'चाँद' तथा पुस्तक माला के स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र !

सफल माता

[लेखिका—श्रीमती सुशीला देवी जी निगम, बी० ए०]

आज हमारे अभागे देश में शिशुओं की मृत्यु-संख्या अपनी चरम-सीमा तक पहुँच चुकी है। अन्य कारणों में माताओं की अनभिज्ञता, शिक्षा की कमी तथा शिशुपालन-सम्बन्धी साहित्य का अभाव प्रमुख कारण है।

प्रस्तुत पुस्तक भारतीय गृहों की एक मात्र मङ्गल-कामना से प्रेरित होकर सैकड़ों अङ्गरेज़ी, हिन्दी, बङ्गला, उर्दू, मराठी, गुजराती तथा श्रेष्ठ पुस्तकों को पढ़कर लिखी गई है, अनपढ़ माता भी एक बार इस पुस्तक को पढ़कर अपना उत्तरदायित्व समझ सकती है।

गर्भावस्था से लेकर ९-१० वर्ष के बालक-बालिकाओं की देख-भाल किस तरह करनी चाहिए, उन्हें बीमारियों से किस प्रकार बचाया जा सकता है, बिना कष्ट हुए दाँत किस प्रकार निकल सकते हैं, रोग होने पर क्या और किस प्रकार इलाज और शुश्रूषा करनी चाहिए, बालकों को कैसे वस्त्र पहनाने चाहिए, उन्हें कैसा, कितना और कब आहार देना चाहिए, दूध किस प्रकार पिलाना चाहिए आदि-आदि प्रत्येक आवश्यक बातों पर बहुत उत्तमता और सरल बोल-चाल की भाषा में प्रकाश डाला गया है।

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

शिशु-हत्या और नरमेध-प्रथा

इस छोटी सी पुस्तक में, यद्यपि ऐतिहासिक प्राचीन कुप्रथाओं का दिग्दर्शन मात्र कराया गया है, तथापि रोचकता और भाषा-लालित्य के कारण यह एक छोटे उपन्यास का आनन्द देती है। भारतवर्ष के मध्यकालीन इतिहास में अविद्या, स्वार्थ एवं अन्ध-विश्वास के कारण जो सामाजिक अत्याचार घटित हुए हैं, उनमें से शिशु-हत्या और नरमेध नामक दो प्रथाओं के द्वारा किए गए अत्याचारों का वर्णन लेखक ने ऐसे करुणाजनक शब्दों में किया है कि उनको पढ़ने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं। इस ४८ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य चार आने मात्र रक्खा गया है।

मनोरंजक कहानियाँ

श्री० ज़हूरबख़्श जी की लेखन-शैली बड़ी ही रोचक और मधुर है। आपने बालकों की प्रकृति का अच्छा अध्ययन किया है। यह पुस्तक आपने बहुत दिनों के कठिन परिश्रम के बाद लिखी है। इस पुस्तक में कुल १७ छोटी-छोटी शिक्षाप्रद रोचक और सुन्दर हवाई कहानियाँ हैं, उनको पढ़ते ही हृदय आनन्द से उमड़ पड़ता है। हरेक कहानी को जितनी बार पढ़ा जाय, उतनी ही बार एक नया आनन्द प्राप्त होता है। बालक-बालिकाएँ तो इन्हें बड़े मनोयोग से सुनेंगे। बड़े-बूढ़ों का भी मनोरञ्जन हो सकता है। शीघ्र ही मँगाकर लाभ उठाइए!

पृष्ठ-संख्या १२० से अधिक; छपाई-सफ़ाई अच्छी; सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल १॥); स्थायी-ग्राहकों से १=)

मनोहर ऐतिहासिक कहानियाँ

इस पुस्तक में पूर्वीय और पाश्चात्य, हिन्दू और मुसलमान, स्त्री-पुरुष—सभी के आदर्श छोटी-छोटी कहानियों द्वारा उपस्थित किए गए हैं, जिससे बालक-बालिकाओं के हृदय पर बचपन ही से दयालुता, परोपकारिता, मित्रता, सच्चाई और पवित्रता आदि सद्गुणों के बीज अङ्कुरित करके उनके नैतिक जीवन को महान्, पवित्र और उज्ज्वल बनाया जा सके। इतनी उपयोगी २५० पृष्ठों की समस्त कपड़े की जिल्द-सहित पुस्तक का मूल्य २); स्थायी ग्राहकों से १॥) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

सती-दाह

सती-प्रथा का रक्त-रञ्जित इतिहास

यदि धर्म के नाम पर स्वेच्छाचारिता का नग्न चित्र आप देखना चाहते हैं, तो इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ को एक बार अवश्य पढ़िए। रूढ़ियों से चली आई इस रक्त-रञ्जित कुप्रथा ने न जाने कितनी होनहार युवतियों की हत्याएँ की हैं। किस प्रकार विधवाओं को सती होने पर मजबूर किया जाता था; उनकी इच्छा न होने पर भी, किस प्रकार उन्हें दहकती हुई अग्नि में झोंक दिया जाता था; किस प्रकार विधवाओं को ज़मीन में जीवित गाड़ दिया जाता था; उनके सम्बन्धी अन्ध-विश्वास के वशीभूत होकर किस प्रकार उन पर अत्याचार करते थे तथा भारतीय महिलाओं की कैसी दुर्दशा होती थी—यदि ये सब बातें प्रामाणिक रूप से आप जानना चाहते हैं तो एक बार इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। मू० २॥) रु०; स्थायी ग्राहकों से केवल १॥।=)

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

पाक-चन्द्रिका

८३६ प्रकार की खाद्य चीज़ों का बनाना सिखाने वाली अनमोल पुस्तक। दाल, चावल, रोटी, पुलाव, मीठे-नमकीन चावल, भाँति-भाँति की तरकारियाँ, सब प्रकार की मिठाइयाँ, नमकीन, बँगला मिठाई, पकवान, सैकड़ों तरह की चटनी, अचार, रायते और मुरब्बे, आदि बनाने की विधि विस्तृत रूप से वर्णन की गई है।

इस पुस्तक में प्रत्येक प्रकार के अन्न तथा मसालों के गुण-अवगुण बतलाने के अलावा पाक-सम्बन्धी शायद ही कोई चीज़ ऐसी रह गई हो, जिसका सविस्तार वर्णन इस वृहत् पुस्तिका में न दिया गया हो। प्रत्येक चीज़ के बनाने की विधि इतनी सविस्तार और सरल भाषा में दी गई है कि थोड़ी पढ़ी-लिखी कन्याएँ भी इससे भरपूर लाभ उठा सकती हैं। चाहे जो पदार्थ बनाना हो, पुस्तक सामने रखकर आसानी से तैयार किया जा सकता है। प्रत्येक तरह के मसालों का अन्दाज़ साफ़ तौर से लिखा गया है। पृष्ठ-संख्या ६००, मूल्य केवल ४) रु०, स्थायी-ग्राहकों से ३) रु० मात्र!

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

आदर्श चित्रावली

यह वह चीज़ है, जो आज तक भारत में नसीब नहीं हुई !

यदि 'चाँद' के निजी प्रेस

फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज

की

छपाई और सुघड़ता

का रसास्वादन करना चाहते हो तो

एक बार इसे देखिए

बहू-बेटियों को उपहार दीजिए और इष्ट-मित्रों का मनोरञ्जन कीजिए। पाश्चात्य देशवासी

धड़ाधड़ मँगा रहे हैं

विलायती पत्रों में इस

चित्रावली की धूम मची हुई है

कुछ भारतीय प्रतिष्ठित विद्वानों और पत्रों की सम्मतियाँ देखिए—

The Hon'ble Mr. Justice B. J. Dalal of the Allahabad High Court:

Your Album (*Adarsh Chittrawali*) is a production of great taste and beauty and has come to me as a pleasant surprise as to what a press in Allahabad can turn out. Moon-worshipping and Visit to the temple are particularly charming pictures—life-like and full of details. I congratulate you on your remarkable enterprise. . . .

मूल्य केवल ४) रु०, स्थायी ग्राहकों से ३)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

—इलाहाबाद—

क्रान्तिकारी चाँद पत्रिका

का

कनौजिया-अङ्क

आगामी मई का 'चाँद'—पाठकों को जानकर प्रसन्नता होगी 'कनौजिया-अङ्क' के नाम से एक वृहत् विशेषाङ्क प्रकाशित होगा। 'तीन कनौजिया तेरह चूल्हा' वाली लोकोक्ति का प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहते हैं तो शीघ्र ही ग्राहकों की श्रेणी में नाम लिखा लीजिए, नहीं तो पछताना पड़ेगा। यह विशेषाङ्क नहीं,

बम का गोला

हागा जो समाज के वक्षस्थल पर चोट करेगा, कनौजियों के गौरव की उन्हें याद दिलाएगा, उनमें प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों के मस्तक पर पाद-प्रहार कर उन्हें सर्वनाश की ज्वाला से—जो उन्हें एक बार ही निगल कर प्रकृति की आज्ञा का पालन करना चाहती है—उन्हें सचेत कर अपने औचित्य का पालन करेगा। आप इस अङ्क में विधवाओं का करुण क्रन्दन तथा नवयुवतियों की मूक-वेदना सुनेंगे—इसे स्मरण रखिए। विजयानन्द (दुबेजी) ने अभी से इस वृहत् विशेषाङ्क के लिए चिट्ठी लिखकर दिल के फफोले फोड़ने का निश्चय कर लिया है ! आप जानते हैं इस अङ्क का सम्पादन कौन महाशय करेंगे

?

हिन्दी के प्रतिष्ठित लेखक

पं० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा कौशिक

यही इस अङ्क को सफलता का एक तुच्छ प्रमाण है। इस महत्वपूर्ण अङ्क के लिए लेख तथा चित्रादि जो कुछ भी भेजना चाहें, इस पते से भेजने की कृपा करें :—

श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक

बङ्गाली मोहाल, कानपुर

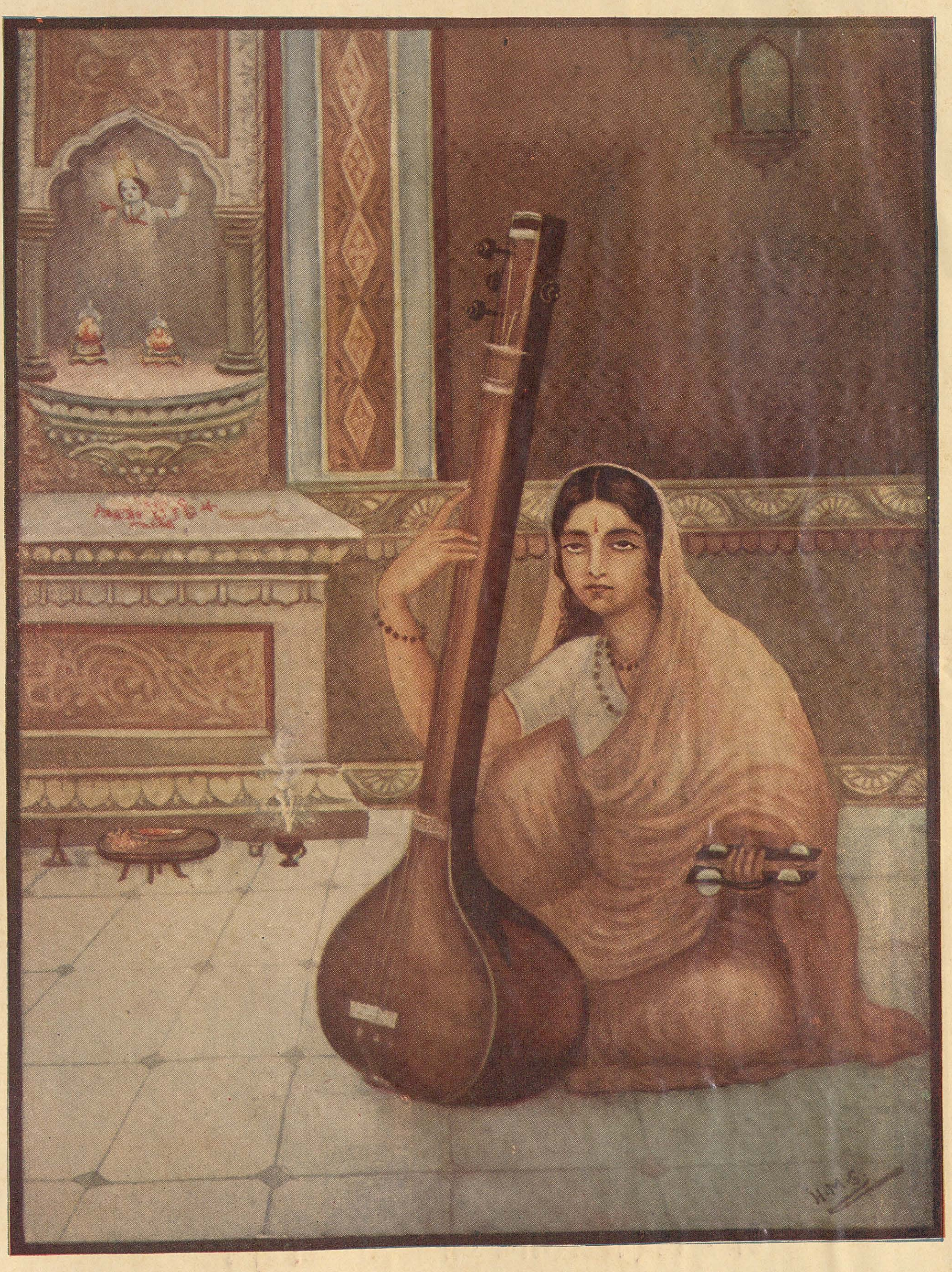

प्रेमोन्मत्त मीरा

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई - - - "
जाके सिर मोर-मुकुट मेरो पति सोई। मेरे तो - - "

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

चाँद

So far appreciated and recommended for use in Schools and Libraries by the Directors of Public Instruction Punjab, Central Provinces and Berar *but no longer approved by the U. P. Government and should not be purchased by any recognized School of these Provinces.*

वर्ष ७ | खण्ड २ | सितम्बर, १९२९ | संख्या ५ | पूर्ण संख्या ८३

सुहाग-रात

[रचयिता—श्री० रामकुमार लाल जी वर्मा, एम० ए०]

खुली-अधखुली आँखों में,
लज्जा भरता है कौन ?
मौन...मौन...मेरे किन प्रश्नों—
का उत्तर है मौन ?

आलिङ्गन है—किन्तु नेत्र हैं,
किसी दूसरी ओर ।
किस 'नहीं' में भरी हुई है,
'हाँ' की एक हिलोर ॥

सुकुमारी रजनी में मन ने,
देखा क्रूर प्रभात !
दिन में भी क्यों फैल न जाती,
यह सुहाग की रात !

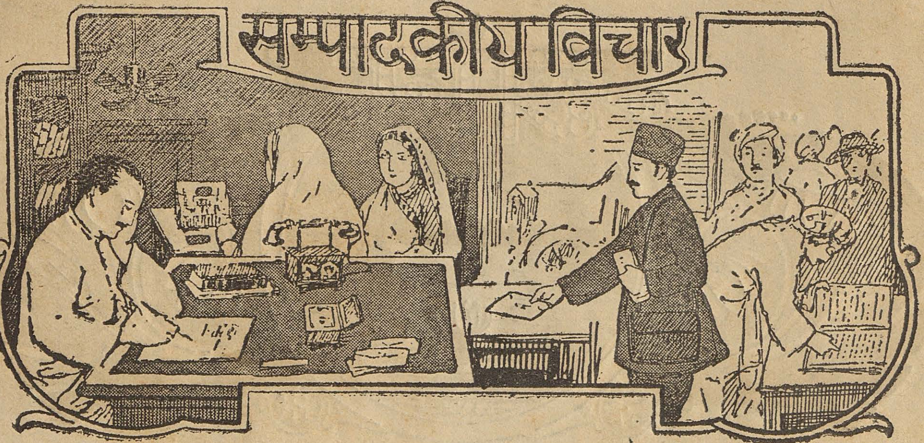

चाँद

सितम्बर, १९२९

राष्ट्रीय शिक्षा

(२)

रोमन शिक्षा-प्रणाली

रोमन लोग व्यवहार-कुशल थे, ग्रीक लोगों की भाँति दार्शनिक नहीं। रोमन लोग प्रकृति की उपयोगिता से लाभ उठाना जानते थे, उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होना नहीं। ग्रीक लोग मननशील, प्रसन्न-वदन और कोमल चित्त वाले थे। रोमन लोग थे कार्य-दक्ष, गम्भीर और कठोर। ग्रीक लोगों ने सौन्दर्य और कला की उपासना की, रोमन लोगों ने ठाट-बाट और शान-शौक़त की। ग्रीक लोग जीवन की प्रत्येक समस्या पर शान्ति और गम्भीरता-पूर्वक विचार करते थे, प्राकृतिक घटनाओं का विश्लेषण करते थे, उनके भीतर से किसी व्यापक और स्थायी तत्व को ढूँढ़ निकालने का प्रयत्न करते थे; और अपने अनुसन्धान में सफल होने पर मानव-जीवन की उलझी हुई ग्रन्थियों को सुलझा कर उसे सुन्दर और मनोरम बना देते थे। इस मननशील प्रकृति के कारण ग्रीक लोगों ने प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द लूटा, सभ्य-संसार की बुद्धि पर राज्य किया, राजनीतिक स्वतन्त्रता का आस्वादन किया, समाज को शान्ति के मार्ग पर परिचालित किया और अपने पीछे मानव-जीवन के भिन्न-भिन्न अङ्गों पर सुन्दर और स्थायी सिद्धान्त छोड़ गए। रोमन लोग कर्मवीर थे। कर्म की साधना के लिए उनके पास शक्ति और उत्साह का अभाव नहीं था। पर कर्म करने के पहले उसका स्वरूप निश्चित करने के लिए जिस विचार और बुद्धि की आवश्यकता होती है, उसका उनके पास सर्वथा अभाव था। उनके हृदय में साम्राज्य क़ायम करने की इच्छा थी; पर साम्राज्य का सङ्गठन किस प्रकार करना चाहिए, इस विद्या से वे परिचित नहीं थे। वे सुन्दर अट्टालिकाओं में निवास करना चाहते थे, पर गृह-निर्माण-कला का आविष्कार करने की शक्ति उनके मस्तिष्क में नहीं थी। वे अपने अहङ्कार को सन्तुष्ट करने के लिए वक्ता बनना चाहते थे, पर भाषण-कला को जन्म देना उनकी शक्ति के बाहर की बात थी! यही उनकी सबसे बड़ी राष्ट्रीय

दुर्बलता थी। इसी विचार-दारिद्र्य के कारण उन्हें ग्रीक-सभ्यता स्वीकार करनी पड़ी। ग्रीकों की विचार-बुद्धि को लेकर रोमन लोगों ने अपने जीवन की एक बड़ी भारी कमी को पूर्ण कर देना चाहा। ग्रीक सभ्यता को अपना कर उन्होंने संसार की आँखों में चकाचौंध पैदा कर दिया! पर थोड़ी देर के लिए! रोमन लोगों ने ग्रीकों से संयुक्त-शासन (Confiderate Government) का भाव लिया और उसके आधार पर विशाल साम्राज्य का सङ्गठन कर डाला। रोमन लोगों ने ग्रीकों से क़ानून उधार लिए और उनके आधार पर ऐसी शृङ्खलाबद्ध क़ानूनी संस्थाएँ रच डालीं, जो आजकल के उलझे हुए समाज में भी मार्ग-प्रदर्शक का काम कर रही हैं। रोमन लोगों ने ग्रीकों का धर्म स्वीकार किया और साम्राज्यान्तर्गत जङ्गली जातियों में उसका प्रचार करके उसे एक विश्वव्यापी धर्म बना डाला। ग्रीक-कला को अपनाकर रोमन लोगों ने रोमन-साम्राज्य के भौतिक स्वरूप को आकर्षक और मनोरञ्जक बनाने में कमाल कर दिखाया, पर कला के आदर्श को नहीं अपना सके। उनकी स्थूल बुद्धि के लिए इतनी गहराई में डूबना असम्भव था। ग्रीक सभ्यता की शरण लेकर रोमन लोगों ने जो कुछ भी उन्नति की, वह सब भौतिक उन्नति थी। उन्होंने ग्रीस के गणित और विज्ञान को उन्नत नहीं किया और न ग्रीक दर्शन में ही उन्नति करके मानव-सभ्यता को कोई स्थायी उपहार प्रदान कर सके। रोमन लोगों के इस मानसिक परावलम्बन का घातक प्रभाव उनकी सभ्यता और शिक्षा-प्रणाली पर भी पड़ा।

रोमन शिक्षा के इतिहास को हम तीन बृहत् युगों में विभक्त कर सकते हैं। प्रथम युग में रोमन शिक्षा अपनी प्राकृतिक अवस्था में विकसित हो रही है। उस पर अभी तक किसी बाहरी सभ्यता का प्रभाव नहीं पड़ा है। उसकी मौलिकता अक्षुण्ण है। वह ग्रामीण सरलता और सैनिक कठोरता का विचित्र सम्मिश्रण है। द्वितीय युग में रोमन-सभ्यता ग्रीक-सभ्यता के सम्पर्क में आती है और अपनी मानसिक दुर्बलताओं के कारण अपने समस्त जीवन को ग्रीक सभ्यता के रङ्ग में रँग देने के लिए बाध्य होती है। इस युग में रोमन शिक्षा ग्रीक शिक्षा का प्राणहीन अनुकरण-मात्र है। तृतीय युग में रोमन साम्राज्य का प्रजातन्त्र रूप नष्ट हो जाता है। रोम के नागरिकों पर निरङ्कुश शासकों के अत्याचार आरम्भ हो जाते हैं। नागरिकों को शासन-कार्य में सम्मति देने का अधिकार नहीं रहता। पर शिक्षा अपने प्राचीन रूप में ज्यों की त्यों बनी रहती है। वह रोम के पतनोन्मुख समाज को सुधारने और उसे शासकों के अत्याचार से मुक्त करने का कोई प्रयत्न नहीं करती। वह ग्रीक शिक्षा की ग़ुलामी में फँसी रहती है, और अन्त में समाज के साथ-साथ स्वयं भी नष्ट हो जाती है।

रोम आरम्भिक अवस्था में एक छोटा सा सङ्गठित राष्ट्र था। वह चारों ओर से शक्तिशाली और बैरी राष्ट्रों से घिरा हुआ था। उसके सामने आत्म-रक्षा का प्रश्न विकट रूप धारण करके खड़ा था। उसने सबसे पहले अपने उन गुणों की रक्षा करने का उपाय सोचा, जिनके अभाव में उसका जीवित रहना असम्भव था। सैनिक शक्ति और शिल्प उसके जीवन की दो मौलिक आवश्यकताएँ थीं। आरम्भिक रोमन शिक्षा ने रोम के नवयुवकों को वीर सैनिक बनाने की ओर मुख्य रूप से और कुशल शिल्पी बनाने की ओर गौण रूप से ध्यान दिया। रोमन पिता अपने परिवार का एकच्छत्र सम्राट् था। वह अपनी मधुर इच्छा के अनुसार अपने परिवार को बेच तक दे सकता था। बालक के शैशवकाल में उसकी शिक्षा का भार माता के ऊपर रहता था। रोम के अर्द्ध-ग्रामीण और अर्द्ध-सैनिक वातावरण में माता बालकों को आज्ञा-कारिता, गम्भीरता, मितव्ययिता, परिश्रम, साहस—सैनिकोपयोगी गुणों—आदि की शिक्षा देती थी। बालक के शैशवकाल में माता और पिता दोनों उसके साथ कठोरता का व्यवहार करते थे। बालकों की साहित्यिक शिक्षा भी व्यावहारिक ढङ्ग की होती थी। थोड़ा सा लिख-पढ़ लेना और पैसे गिन लेने की विद्या बालक की साहित्यिक शिक्षा को सम्पूर्ण करने के लिए पर्याप्त समझी जाती थी। जो परिवार अपने बालकों की साहित्यिक शिक्षा पर बहुत अधिक ध्यान देते थे, वे उन्हें वीर रस की कहानियाँ सुनाने का प्रबन्ध कर देते थे। इस काल में सैनिक शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक युवक के लिए अनिवार्य था।

इस शिक्षा के फल-स्वरूप रोम की सैनिक शक्ति का उत्कर्ष हुआ। रोम की सेनाएँ यूरोपीय राष्ट्रों को एक-एक करके पराजित करने लगीं। रोम के सेना-

पतियों ने राज्य पर राज्य और देश पर देश जीत कर विशाल साम्राज्य स्थापित कर लिया। जिधर उनकी तलवार चमक जाती थी, उधर ही के लोग उनके सामने सिर झुका देते थे। पर जिस दिन उनकी विजय-पताका ग्रीस के सुन्दर प्राङ्गण में पहुँची, उसी दिन उनकी विजयों का प्रवाह रुक गया। अब तक वे विजेता थे, पर ग्रीस में आकर उन्हें विजित होना पड़ा। उन्होंने ग्रीक सभ्यता का वह लुभावना रूप देखा जिसे ग्रीस के कवियों ने माधुर्य, कलाकारों ने सौन्दर्य और दार्शनिकों ने अमरता प्रदान कर रक्खी थी। ग्रीस के सुनील स्वच्छ आकाश के पवित्रता, पर्वतों के अन्चल में उगी हुई लताओं और द्रुमों के मुस्कान और नृत्य-मग्ना नदियों के मधुर सङ्गीत से मिल कर वहाँ के निवासियों की उज्ज्वल कल्पना ने जिस मनोहर सभ्यता की सृष्टि की थी, उसने रोमन सेनापतियों के हृदय को मोहित कर लिया। रोम की सेना ग्रीस की सेना पर विजयी हुई; किन्तु ग्रीक सभ्यता ने रोमन सभ्यता को सदा के लिए अपना ग़ुलाम बना लिया। रोम ने ग्रीक सभ्यता के रङ्ग में अपने को इस तरह रँगा कि थोड़े ही दिनों के बाद उसे पहचानना भी मुश्किल हो गया। रोमन राजनीतिज्ञ ग्रीक भाषा में व्याख्यान दे सकते थे। रोम के लेखक ग्रीक भाषा में पुस्तकें लिखते थे और रोम के नागरिक बड़े चाव से उन पुस्तकों को पढ़ते थे। ग्रीस से पकड़ कर लाए हुए ग़ुलामों की विद्या और बुद्धि से रोमन लोग इतने प्रभावित हुए कि उन्हें शिक्षक के पद पर नियुक्त कर दिया। एक ग्रीक ग़ुलाम ने ग्रीक काव्य 'ओडीसी' का रोम की भाषा लैटिन में अनुवाद किया और वह रोमन स्कूलों में पाठ्य-पुस्तक की भाँति पढ़ाई जाने लगी। रोम के लड़के ग्रीक खेल खेलते थे। आज-कल जिस प्रकार ग़ुलाम भारतवासी इङ्गलैण्ड की युनिवर्सिटियों में पढ़ने के लिए जाते हैं, उसी प्रकार रोम के बहुत से लड़के उच्च अध्ययन के लिए एथेन्स और एलेक्ज़ेन्ड्रिया की युनिवर्सिटियों में जाने लगे।

रोमन लोगों ने ग्रीक दर्शनशास्त्र पढ़ना आरम्भ किया और ग्रीकों की भाँति व्याख्यान देना भी सीखने लगे। रोमन लोगों को ग्रीक सभ्यता ने इतना प्रभावित किया कि रोम में धीर सैनिक की अपेक्षा चतुर वक्ता की प्रतिष्ठा अधिक होने लगी। ग्रीक काव्य, ग्रीक दर्शन और ग्रीक भाषण-कला की शिक्षा देने के लिए रोम में बहुत से स्कूल खुल गए। पर रोमन लोगों की कल्पना न तो ग्रीक साहित्य और ग्रीक दर्शन के ऊँचे आदर्शवाद को अपना सकी, न रोमन शिक्षा-प्रणाली ग्रीक शिक्षा-प्रणाली की भाँति आनन्ददायक थी। रोम में आकर ग्रीक शिक्षा-प्रणाली की सारी विशेषताएँ नष्ट होगईं; पर इस विकृत रूप में भी ग्रीक शिक्षा ने रोमन लोगों के जीवन में इतना अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया कि ग्रीक शिक्षा पाए बिना रोमन नागरिकों का रोमन-समाज में प्रतिष्ठित पद पाना असम्भव हो गया। सिसरो और सीज़र के समान रोम के महापुरुषों तक की सफलता का अधिक श्रेय ग्रीक शिक्षा को ही प्राप्त है। रोमन समाज में ग्रीक शिक्षा अपने उच्च आदर्श से गिर कर रोम के महत्वाकांक्षी नागरिकों के लिए समाज में आदर प्राप्त करने का साधन-मात्र रह गई। रोमन लोगों ने ग्रीकों के शारीरिक व्यायामों का भी अनुकरण किया; पर इसमें भी उन्हें पूरी सफलता प्राप्त न हुई। उन्होंने बाहर से व्यायामों का अनुकरण तो कर लिया, पर उनके उद्देश्य को न अपना सके। ग्रीक लोगों के व्यायाम शरीर को सुन्दर और सुडौल बनाने के लिए थे, पर रोमन लोगों ने उन व्यायामों का प्रयोग सैनिक गुणों की वृद्धि के लिए किया। रोम के बहुत से दूरदर्शी विद्वानों ने इस अन्धाधुन्ध अनुकरणशीलता से होने वाली बुराइयों का अन्दाज़ा पहले ही लगा लिया था। उन्होंने रोम की जनता को विवेकहीन अनुकरण के मार्ग से हटाने का प्रयत्न किया। पर रोमन जनता ग्रीक सभ्यता के नशे में बेहोश थी। उसने इन दूरदर्शी विद्वानों की बातों पर ध्यान नहीं दिया। रोम के नवयुवक ग्रीक नवयुवकों की भाँति नङ्गे होकर कुश्ती लड़ने लगे, ग्रीक नागरिकों की तरह सार्वजनिक स्थानों में नाचने लगे, अभिनय और प्रहसन करने लगे और ग्रीक बाजे बजाने लगे।

रोम के होनहार नवयुवकों को ग्रीस की भाषण-कला ने सबसे अधिक आकर्षित किया; यहाँ तक कि राजनीति, धर्मशास्त्र और सैनिक विद्या का अध्ययन करने वालों के लिए भी भाषण-कला का ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। ग्रीक लोगों के लिए व्याख्यान देना एक कला थी। वे लोग केवल कला की दृष्टि से

इसका अध्ययन करते थे। पर रोमन मस्तिष्क इतनी गहराई में उतरने में असमर्थ था। रोमन लोगों ने भाषण-विद्या को अपनी व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा सिद्ध करने और रुपया कमाने का साधन बना लिया। फल यह हुआ कि अन्य विद्याओं की भाँति ग्रीस की भाषण-कला भी रोम में आकर अपने ऊँचे आदर्श से पतित हो गई। रोमन लोगों ने ग्रीकों की देखा-देखी गणित का अध्ययन शुरू किया, पर ग्रीक लोगों ने इस विद्या में जितनी उन्नति की थी उसके आगे रोमन लोग एक इञ्च भी नहीं बढ़ सके। आगे बढ़ना तो दूर रहा, रोमन लोगों को गणित के ज्ञान में ग्रीकों की बराबरी का स्थान देना भी ग्रीकों के साथ अन्याय करना है। रोमन लोगों ने गणित-शास्त्र पर जितनी पुस्तकें लिखीं, सब ग्रीक पुस्तकों के आधार पर लिखी गईं और उन्हें भी वे सफलतापूर्वक नहीं लिख सके। अधिकांश पाठ भ्रष्ट और अशुद्ध कर दिए गए। उनमें मनगढ़न्त कहानियाँ और अन्धविश्वास की बातें घुसेड़ दी गईं। रोमन लोगों ने चिकित्सा-शास्त्र में कोई उन्नति नहीं की। इस विद्या के लिए उन्हें आजन्म ग्रीक और अरब चिकित्सकों का ऋणी रहना पड़ा। गृह-निर्माण-कला में रोमन लोगों का ज्ञान वहीं तक परिमित रहा, जहाँ तक वे ग्रीकों का अनुकरण कर सके।

रोमन शिक्षा-प्रणाली अपने इतिहास के द्वितीय युग में सभी बातों में ग्रीक शिक्षा-प्रणाली का विवेकहीन और हास्यास्पद अनुकरण करने के अतिरिक्त और कुछ न कर सकी। रोम में प्रजातन्त्र शासन के विनाश के बाद रोमन शिक्षा-प्रणाली के इतिहास का तृतीय युग आरम्भ होता है। जिस समय रोम में प्रजातन्त्र शासन था—जिस समय रोम की शासन-नीति रोमन नागरिकों की सम्मति के द्वारा प्रभावित होती थी—उस समय रोमन लोगों के लिए वक्तृत्व-कला की शिक्षा कुछ अंशों में उपयोगी थी। पर रोम में प्रजातन्त्र शासन अधिक दिनों तक नहीं ठहर सका। वह ग्रीस के नगर-राज्यों के अनुकरण पर स्थापित हुआ था। पर ग्रीक प्रजातन्त्रों में जो बुराई बहुत दिनों के बाद उत्पन्न हुई वह रोम में बहुत ही शीघ्र उत्पन्न हुई। व्यक्तिवाद की उच्छृङ्खलता ने थोड़े ही दिनों में रोमन प्रजातन्त्र को छिन्न-भिन्न करके रोम के नागरिकों को पुनः निरङ्कुश शासकों की स्वेच्छाचारिता का शिकार होने के लिए छोड़ दिया। रोमन शिक्षा-प्रणाली यदि रोमन संस्कृति की उपज होती, तो वह राष्ट्र की इस परिवर्तित अवस्था में अपना स्वरूप अवश्य बदल देती। पर वास्तव में वह सच्ची राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली नहीं थी। वह ग्रीक शिक्षा-प्रणाली का विवेकहीन अनुकरण-मात्र थी। वह रोमन राष्ट्र की नवीन आवश्यकताओं के अनुसार अपने स्वरूप को नहीं बदल सकी। जिस समय रोम में प्रजातन्त्र शासन था, उस समय रोमन शिक्षा प्रणाली ने रोमन नागरिकों को भाषण-कला की शिक्षा दी; पर जिस समय प्रजातन्त्र नष्ट हो गया और भाषण-कला की उपयोगिता जाती रही, उस समय भी वह अपनी अराष्ट्रीयता के कारण भाषण-कला की शिक्षा पूर्ववत् ही देती रही।

भाषण-कला का वास्तविक उद्देश्य स्वतन्त्र नागरिकों को वक्ता के विचारों के अनुकूल बनाना है। जब भाषण-कला का यह प्राकृतिक उद्देश्य नष्ट हो जाता है, तब वह वक्ता के लिए अपनी विद्वत्ता का प्रदर्शन करने और जनता की दृष्टि में अपने को स्वार्थ-त्यागी देश-भक्त साबित करने के साधन के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जाती। रोम के पढ़े-लिखे लोगों ने लच्छेदार स्पीचों के द्वारा भोली-भाली जनता को ठग कर स्वार्थ-साधन करना प्रारम्भ किया। इस सभ्य धोखेबाज़ी से रोमन नागरिकों का चरित्र भ्रष्ट हो ही रहा था; ग्रीक काव्यों के अध्ययन ने उनके नैतिक पतन को और भी सहायता दी। होमर और हेसियड के जिन काव्यों ने ग्रीस में सुकरात और प्लेटो जैसे दार्शनिक उत्पन्न किए, उन्हीं काव्यों ने रोम के नागरिकों को विलासिता के पङ्क में डुबा दिया। पर इसमें काव्यों का दोष नहीं था, दोष था रोमन लोगों की मानसिक दुर्बलता का, जिसके वशीभूत होकर उन लोगों ने इन काव्यों का अध्ययन आरम्भ किया था। रोमन लोगों ने अपने नैतिक पतन को जब मनोहर व्याख्यानों की आड़ में छिपाना प्रारम्भ किया, उस समय उनकी भाषा में बनावटीपन आ गया। उनकी भाषा का विकास कृत्रिम अलङ्कारों और गढ़े हुए रूपकों के भार के नीचे दब गया। वक्ता जब कभी लुभावने शब्दों का जाल रच कर अपने श्रोताओं को धोखा देना चाहता है, तब भाषा की ऐसी ही दुर्दशा होती है। रोम के नागरिक अपने भाषणों में सुकरात और प्लेटो का

अनुकरण करना चाहते थे, पर उनके पास सुकरात और प्लेटो के समान गम्भीर विचार नहीं थे। विचारों के लिए उन्हें सदा ही अपने पूर्वजों की शरण लेनी पड़ती थी। उनकी आत्मा प्राचीन विचारों का ग़ुलाम बन गई। आजकल के भारतवासियों की भाँति रोमन लोग भी अपने पूर्वजों का गुणगान करने में ही अपना गौरव समझने लगे। बाहर वे अत्याचारी शासकों के ग़ुलाम थे और भीतर अपने पूर्वजों की मृतक कीर्ति के! विलासिता के साथ इस दोहरी ग़ुलामी ने मिल कर उनके नैतिक अधःपतन को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया।

रोमन शिक्षा-प्रणाली का पहला कर्तव्य रोमन नागरिकों के इस नैतिक पतन को रोकना था; उन्हें ग्रीक-सभ्यता और प्राचीन विचारों की दासता से मुक्त करना था। पर तत्कालीन रोमन शिक्षा-प्रणाली इस कार्य को सम्पन्न करने के सर्वथा अयोग्य थी। वह स्वयं ग्रीक विचारों की दासी बनी हुई थी। उसके लिए रोम की मुमूर्षु राष्ट्रीयता की प्राण-रक्षा करना असम्भव था। उसने रोमन नागरिकों के चरित्र को उन्नत करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। रोमन नागरिकों का सम्पूर्ण जीवन ग़ुलामी के बोझ से दब गया! वे रोमन सम्राट् के दास थे, ग्रीक सभ्यता के दास थे, प्राचीन रूढ़ियों के दास थे और सबसे बढ़ कर दास थे विलासिता के! इतने प्रकार की ग़ुलामियों ने उनके जीवन को शक्तिहीन और जर्जर बना रक्खा था, जब कि उन पर जङ्गली जातियों का आक्रमण हुआ। जङ्गली जातियाँ तेज और आत्म-विश्वास से भरी हुई थीं। उन्होंने अल्प प्रयास से ही रोम के पतित और विलासी नागरिकों को पैरों तले रौंद कर उन पर अधिकार जमा लिया।

रोम ने स्वेच्छापूर्वक विदेशी सभ्यता स्वीकार की थी। वह अपने जीवन को जिस मार्ग से चाहता उस मार्ग से ले जाने के लिए स्वतन्त्र था। संसार की कोई भी शक्ति उसके मार्ग में बाधक नहीं हो सकती थी। वह अपने समय का सबसे बलवान और विशाल साम्राज्य था। पर नैतिक पराजय इतनी भयङ्कर होती है कि एक बार जो इसके चङ्गुल में फँस जाता है, उसका फिर कभी उद्धार नहीं होता। मृत्यु जब तक उसको संसार के सभी बन्धनों से मुक्त नहीं कर देती, तब तक वह दास ही बना रहता है। रोम ने जब ग्रीक सभ्यता को अपनाना आरम्भ किया, तब धीरे-धीरे उसने ग्रीक-सभ्यता की सारी बुराइयों को अपना लिया; पर उसके ऊँचे आदर्शों को वह ग्रहण नहीं कर सका। परिणाम यह हुआ कि जिस ग्रीक-सभ्यता के बाहरी रूप पर वह मुग्ध था, वही ग्रीक-सभ्यता उसके शोचनीय पतन का कारण हुई। भारत की वर्तमान अवस्था भी बहुत-कुछ पतनोन्मुख रोम के समान ही है। पाश्चात्य-सभ्यता के आकर्षक रूप ने भारतवर्ष की आँखों में चकाचौंध पैदा कर दिया है! भारतवर्ष का मोह-मुग्ध शिक्षित समाज पाश्चात्य-सभ्यता की सभी बातों को अच्छी और भारतीय-सभ्यता की सभी बातों को बुरी समझ रहा है। अङ्गरेज़ी पोशाक पहनना, अङ्गरेज़ी भाषा बोलना, अङ्गरेज़ी पुस्तकें पढ़ना, अङ्गरेज़ी खेल खेलना, अङ्गरेज़ी शिष्टाचार के अनुसार व्यवहार करना, अङ्गरेज़ी दृष्टिकोण से भारतीय समस्याओं पर विचार करना आदि भारतवर्ष में शिक्षित व्यक्ति के लक्षण समझे जा रहे हैं! पर शायद ही कोई भारतवासी ऐसा होगा, जो अङ्गरेज़ों के चरित्र से सफ़ाई और समय की पाबन्दी की शिक्षा ग्रहण करता हो! पार्लामेण्टरी शासन और आर्थिक स्वाधीनता के सिद्धान्त पर समाज के सङ्गठित करने की गप्प हाँकना भारतीय देशभक्तों का फ़ैशन बन गया है! पर सार्वजनिक सभा का समय ४ बजे निर्धारित करके देशभक्त वक्ता महोदय के लिए सभा में ८ बजे तशरीफ़ लाना एक साधारण-सी बात है! छोटे से छोटा अङ्गरेज़ भी इङ्गलैण्ड की बनी हुई कमज़ोर और रद्दी चीज़ को अधिक मूल्य देकर ख़रीदना पसन्द करता है; पर भारतवर्ष की बनी हुई सस्ती और टिकाऊ चीज़ कभी नहीं ख़रीदता। किन्तु शिक्षित भारत-वासी जब तक अपने घर को विलायती वस्तुओं से नहीं सजा लेते, तब तक उन्हें सन्तोष नहीं होता। सबसे बड़े दुःख की बात तो यह है कि भारतवर्ष की स्वराज्य की लड़ाई भी विदेशी आन्दोलनों का निर्जीव अनुकरण-मात्र है। भारतवर्ष की राजनीतिक पराजय हो चुकी है और अब उसकी स्वतन्त्रता के पुजारीगण अपने ही हाथों से उसके गले में नैतिक पराजय की दुर्भेद्य लौह-शृङ्खला भी बाँध रहे हैं! वास्तव में यह अवस्था बहुत ही शोचनीय है। यदि भारतवर्ष के नेतागण शीघ्र ही नहीं सँभल गए तो भारतवर्ष की भी अन्तिम दशा वही होगी जो मोहान्ध रोम की हुई थी!

भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली

भारत के प्राचीन आर्यों का स्वभाव सरल और पवित्र था। उनका समाज कठोर नियमों की श्रृङ्खला से आबद्ध नहीं था। उनकी सभ्यता जङ्गली अवस्था को पार कर धीरे-धीरे संस्कृत के क्षेत्र में प्रवेश कर रही थी। जिस समय आर्यों ने भारत के आदि निवासी द्राविड़ों को हरा कर पञ्जाब पर अधिकार किया, उस समय वे साधारणतः तीन विभागों में विभक्त थे। एक विभाग वीर योद्धाओं का था, जो युद्ध में शत्रुओं को पराजित कर अपनी जाति के लिए नई भूमि प्राप्त करता था। दूसरा विभाग उन पुरोहितों का था, जो जाति के कल्याण और उसके शत्रुओं के विनाश के लिए प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों की पूजा और प्रार्थना किया करता था। शेष सभी लोग तीसरे विभाग में सम्मिलित थे, जो कृषि और पशुपालन करते थे। जो द्राविड़ युद्ध में पराजित होकर पकड़े जाते थे, उन्हें आर्य लोग अपना घरेलू काम-धन्धा करने के लिए दास बना कर रख लेते थे। इस प्रकार आर्यों की प्रारम्भिक अवस्था में ही उनकी सभ्यता के भविष्य में उत्पन्न होने वाले जाति-भेद का बीज वर्तमान था। प्राचीन आर्यों का धर्म एक प्रकार की प्रकृति-पूजा था। उन्होंने पञ्चनद से परिप्लावित पञ्जाब के हरे-भरे मैदानों में प्रकृति का सुन्दर स्वरूप देखा और अपने बाल-सुलभ स्वभाव की सरलता और पवित्रता के कारण उस पर मुग्ध होगए! ऊषाकाल की शान्ति, प्रकाशपुञ्ज सविता का तेज, पवन की प्रबलता, विद्युत् की चञ्चलता और मेघों के अमृत-वर्षण में उन्हें अनुपम सौन्दर्य, अलौकिक पवित्रता और विराट् महानता का अनुभव हुआ। उन्होंने ऊषा, इन्द्र, अग्नि, मरुत, वायु आदि नामों से प्रकृति की भिन्न-भिन्न शक्तियों की पूजा करना आरम्भ कर दिया। वे इन देवताओं की प्रशंसा के गीत गाते, इन्हें बलिदान देकर प्रसन्न करने की चेष्टा करते और इनसे जाति के कल्याण और वृद्धि के लिए वरदान माँगते थे।

समाज की इस सरल अवस्था में स्वभावतः ही किसी विशेष प्रकार की शिक्षा-प्रणाली की आवश्यकता नहीं थी। प्रत्येक परिवार का सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति ऋषि कहलाता था और उसी के पास रह कर परिवार के लड़के अपने पैतृक व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त कर लेते थे। इस समय जीवन-युद्ध इतना कठिन था कि आर्यों के लड़कों को शिक्षा प्राप्त करने के लिए अधिक समय नहीं मिलता था। वे जातीय सत्ता के विस्तार के लिए निरन्तर युद्ध करने में व्यस्त रहते थे। पुरोहितों का वर्ग अपेक्षाकृत अधिक शान्ति के साथ जीवन व्यतीत करता था। इन लोगों ने देवताओं की प्रशंसा में गीत बनाए और यज्ञों का आविष्कार किया। पुरोहितों के लड़के अपने पिता या काका से सुन कर गीत कण्ठस्थ कर लेते थे और उन्हें यज्ञ करते हुए देख कर यज्ञ की विधि भी सीख लेते थे। जैसे-जैसे गीतों की संख्या में वृद्धि होने लगी और यज्ञों की विधि जटिल होने लगी, वैसे-वैसे समाज में पुरोहितों का प्रभुत्व बढ़ने लगा।

इस प्रकार अनेक शताब्दियाँ व्यतीत होगईं। समय के प्रवाह के साथ आर्यों की परिस्थिति में भी परिवर्तन हुआ। उन्होंने सतलज को पार किया और यमुना के किनारे तक फैल गए। सिन्धु और गङ्गा के बीच के विस्तृत मैदान में आर्यों के कई बलवान और विशाल राज्य स्थापित होगए। अनेक शताब्दियों के निरन्तर युद्ध के बाद आर्यों को शान्तिमय वातावरण में साँस लेने का अवसर प्राप्त हुआ था। युद्ध से छुटकारा मिलते ही उन्होंने अपने समाज को सङ्गठित और सुव्यवस्थित करने की ओर ध्यान दिया। इस समय तक जाति-भेद स्थापित हो चुका था; पर वह कठोर नियमों से आबद्ध नहीं हुआ था। संसार के सभी देशों में सभ्यता के विकास के साथ समाज में श्रेणी-विभाग हुआ करता है। ग्रीस और रोम में यह श्रेणी-विभाग वंश के आधार पर हुआ था। उच्च-वंश के लोगों को समाज में उच्च अधिकार प्राप्त थे। अन्य लोगों के लिए, चाहे वे कितने ही बुद्धिमान और कार्यपटु क्यों न हों, उच्च वंश वालों की ग़ुलामी करने के अतिरिक्त जीवन व्यतीत करने का और कोई मार्ग न था। आधुनिक यूरोप और अमेरिका में समाज का श्रेणी-विभाग धन के आधार पर हुआ है। जो व्यक्ति जितना ही धनी है, उसके अधिकार समाज में उतने ही अधिक हैं। प्राचीन भारत में समाज का श्रेणी-विभाग कर्म के आधार पर हुआ था, विद्या, धन अथवा वंश के आधार पर नहीं। विद्याध्ययन करना, यज्ञ करना और दान देना, ये कर्म सबके लिए आवश्यक थे। इन कर्मों के द्वारा वर्ण का निर्णय नहीं किया जाता था। वर्ण के

निर्णायक केवल वे ही कर्म समझे जाते थे, जिनके द्वारा समाज की भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ अपनी जीविका उपार्जित करती थीं। जो लोग विद्या पढ़ाते और यज्ञ कराते थे तथा इन कर्मों के पुरस्कार-स्वरूप प्राप्त होने वाली दक्षिणा या दान से जीवन-निर्वाह करते थे, वे ब्राह्मण कहलाए। जो लोग देश का रक्षण और शासन करते थे और इन कर्मों के पुरस्कार-स्वरूप देशवासियों से कर इत्यादि वसूल करके अपनी जीविका चलाते थे, वे क्षत्रिय कहलाए। जिन लोगों की जीविका का आधार कृषि, पशुपालन, शिल्प, व्यापार आदि था, वे वैश्य नाम से अभिहित हुए। और जो लोग इन तीनों वर्णों की सेवा करके जीवन-निर्वाह करते थे, वे शूद्र हुए। जब तक यह वर्ण-व्यवस्था अविकृत रूप में रही, तब तक भिन्न-भिन्न वर्णों के छोटे या बड़े होने का कोई विचार न था। समाज में सभी वर्णों का स्थान बराबर था और सभी वर्ण समान महत्व की दृष्टि से देखे जाते थे।

इस वर्ण-व्यवस्था के द्वारा भारत के प्राचीन आर्यों ने व्यक्ति और समाज के झगड़े का निर्णय बहुत ही स्थायी और पूर्णतया वैज्ञानिक ढङ्ग पर किया था। ग्रीस के सर्व-श्रेष्ठ दार्शनिकगण जिस आदर्श सामाजिक व्यवस्था की केवल कल्पना-मात्र कर सके थे, वही सामाजिक व्यवस्था भारतवर्ष में हज़ारों वर्षों तक प्रचलित रही और आज न जानें कितने हज़ार वर्षों के बाद भी भारतीय समाज उसी वैज्ञानिक वर्ण-व्यवस्था के विकृत स्वरूप के आधार पर टिका हुआ है। ग्रीस का प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो अपने यौवनकाल में भारतवर्ष में आया था और भारतीय सभ्यता का अध्ययन करके पुनः ग्रीस लौट गया था। प्लेटो ने ग्रीस में जिस वर्ण-व्यवस्था को प्रचलित करना चाहा था, वह भारतीय वर्ण-व्यवस्था से बहुत मिलती-जुलती थी। इन बातों को देखने से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि ग्रीक-दार्शनिकों ने वर्ण-व्यवस्था का भाव भारतवर्ष से ही ग्रहण किया था। प्लेटो के समय के ग्रीस की अवस्था को देखने से भारतीय वर्ण-व्यवस्था के वास्तविक अभिप्राय पर बहुत प्रकाश पड़ता है। ग्रीस में फैले हुए व्यक्ति और समाज के सङ्घर्ष को शान्त करने के लिए—ग्रीक नागरिकों की बढ़ती हुई महत्वाकांक्षा को नियन्त्रित करके समाज में शान्ति की स्थापना करने के लिए प्लेटो ने ग्रीक समाज में वर्ण-व्यवस्था का प्रचार करना चाहा था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि जिस समय प्लेटो भारतवर्ष में आया था, उस समय के भारतीय समाज ने वर्ण-व्यवस्था के द्वारा ही व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा को नियन्त्रित करके समाज में स्थायी शान्ति की प्रतिष्ठा की थी।

इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि व्यक्तियों की महत्वाकांक्षा का नियन्त्रण करने में उनके साथ किसी भी प्रकार का अन्याय होता था। इसे नियन्त्रण न कह कर, नियमन (Regulation) कहना अधिक उपयुक्त होगा। इस नियमन के द्वारा ही व्यक्तियों की सच्ची उन्नति का मार्ग प्रशस्त किया जाता था। प्राचीन भारत के व्यवस्थापकों ने मनुष्यों की प्रकृति का अध्ययन किया था और उस प्रकृति के अनुसार ही वे उनकी जीविका का प्रबन्ध करते थे। जिस व्यक्ति का स्वभाव सतोगुण-प्रधान था—जो स्वभाव से ही विद्याध्ययन की ओर आकर्षित होता था, जिसके मन में सांसारिक वस्तुओं के लिए अधिक लोभ न था—उसके लिए ब्राह्मण-वृत्ति निश्चित की गई। जिन लोगों की प्रकृति रजोगुण-प्रधान थी—जो कर्म करने के लिए उत्सुक थे, जिन्हें सम्मान और प्रतिष्ठा प्यारी थी—उन लोगों को क्षत्रिय के काम पर नियोजित किया गया। जो लोग तामसी प्रकृति के थे, जिन्हें धन-सम्पत्ति और भोग-विलास में अधिक रुचि थी, उन्हें व्यापार-वाणिज्य आदि करने का अधिकार दिया गया। जिनकी प्रकृति का विकास अभी तक नहीं हुआ था, जिनकी प्रकृति अविकसित होने के कारण निश्चित नहीं की जा सकती थी, उन्हें उक्त तीन प्रकार के मनुष्यों की सेवा करने का अधिकार दिया गया। इन मनुष्यों के साथ रहते-रहते जिस समय उनकी प्रकृति कोई विशिष्ट रूप धारण कर लेती थी, उस समय उनके उपयुक्त जीविका का प्रबन्ध किया जाता था। बालकों की प्रकृति का जब तक पता नहीं लगता था, तब तक वे भी शूद्र-वर्ग में परिगणित किए जाते थे। यदि जीविका के सम्बन्ध में इस प्रकार का नियमन न होता, तो सम्भव था कि जिस व्यक्ति की प्रकृति सतोगुण-प्रधान थी, वह अपने स्वभाव को न पहचान सकने के कारण या क्षणिक प्रलोभन में पड़ कर क्षत्रिय या वैश्य की जीविका ग्रहण कर लेता। इस अप्राकृतिक जीविका के कारण उस व्यक्ति के जीवन के विकाश में बाधा पड़ती और उसका जीवन

दुःखी हो जाता। उसके हाथ में पड़ कर क्षत्रिय अथवा वैश्य का व्यवसाय भी अपने आदर्श से पतित हो जाता। यदि बहुत से व्यक्ति किसी एक ही व्यवसाय को अल्प-परिश्रम-साध्य समझ कर ग्रहण कर लेते तो इससे समाज में घोर अव्यवस्था फैल जाती। जिन मनुष्यों की प्रकृति उस व्यवसाय के अनुकूल नहीं होती, वे उस व्यवसाय में सफल नहीं होते, उनका जीवन दुखी हो जाता और उनके हाथों उस व्यवसाय की प्रतिष्ठा की भी क्षति होती। जिन मनुष्यों की प्रकृति उस व्यवसाय के अनुकूल होती, उन्हें यह असुविधा होती कि उन्हें अपने क्षेत्र में बहुत से प्रतिद्वन्द्वियों का सामना करना पड़ता और इसके फलस्वरूप उनका जीवन भी असफल और दुःखी हो जाता। समाज तथा व्यक्तियों के जीवन को इसी विपत्ति से बचाने के लिए वर्ण-व्यवस्था का निर्माण किया गया था। इस व्यवस्था ने भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों की जीविका का ऐसा सुन्दर प्रबन्ध किया कि जिस बात में व्यक्ति का भला था, उसी बात में समाज का कल्याण; और जिस बात में समाज का कल्याण था, उसी बात में व्यक्ति का अधिक से अधिक हित और उपकार।

भारतीय वर्ण-व्यवस्था की यह विशेषता थी कि वह भिन्न-भिन्न श्रेणी के मनुष्यों को उनकी प्रकृति के अनुकूल जीविका का साधन देकर व्यक्तियों के जीवन को पूर्ण-रूपेण विकसित होने का अवसर देते हुए भी समाज को भिन्न-भिन्न श्रेणियों की जीविका के सङ्घर्ष से बचाती थी। ब्राह्मण-प्रकृति के मनुष्यों को क्षत्रियों की जीविका के ग्रहण करने का कोई अधिकार नहीं था। इसी प्रकार क्षत्रियों को न तो ब्राह्मणों की जीविका का अपहरण करने की स्वतन्त्रता थी और न व्यापार आदि करके वैश्यों के साथ सङ्घर्ष मोल लेने की। वैश्य-प्रकृति के मनुष्य केवल मात्र व्यापार आदि करते थे, उन्हें शासन, शिक्षण या पौरोहित्य आदि करने का अधिकार नहीं था। यदि कोई मनुष्य अपने वर्ण की जीविका छोड़ कर दूसरे वर्ण की जीविका करने लगता था तो वह अपने पूर्व वर्ण से पतित हो जाता था और उस वर्ण का सदस्य होने के नाते उसको समाज में जितने अधिकार प्राप्त होते थे, वे सब अधिकार छीन लिए जाते थे। मनु ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है :—

योऽनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमम्।
स जीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः॥

—अध्याय २, श्लोक १६८

भावार्थ यह कि "जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) वेद नहीं पढ़ता है और अपनी जीविका का क्षेत्र त्याग कर अन्य क्षेत्रों में परिश्रम करता है, वह इसी जीवन में शूद्रत्व को प्राप्त हो जाता है।"

श्रीमद्भगवद्गीता में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन निम्नलिखित शब्दों में किया गया है :—

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥

—अध्याय १८, श्लोक ४७

भावार्थ यह कि "यद्यपि पर-धर्म का आचरण सहज हो, तथापि अपना धर्म सदोष होने पर भी पर-धर्म की अपेक्षा अधिक कल्याणकारक है। स्वभाव-सिद्ध अर्थात् गुण-स्वभावानुसार-निर्मित कर्म करने में पाप नहीं लगता।"

यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि वंश-परम्परा से प्राप्त होने वाले धर्म को अपना धर्म नहीं कहा गया है। अपनी प्रकृति, गुण, स्वभाव से प्राप्त होने वाला धर्म ही अपना धर्म है।

इस आदर्श सामाजिक व्यवस्था के अन्दर सभी वर्णों की उन्नति हुई। ब्राह्मणों ने यज्ञ की विधियों और इन विधियों से उत्पन्न होने वाले रेखागणित, ज्योतिष आदि विज्ञानों में उन्नति की। यज्ञ की विधियाँ धीरे-धीरे जटिल होने लगीं और इस जटिलता की वृद्धि के साथ-साथ समाज में ब्राह्मणों का प्रभुत्व भी बढ़ने लगा। ज्ञान और विद्या में श्रेष्ठ होने के कारण ब्राह्मणों के अधिकार में सभी वर्णों के बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध आगया। क्षत्रियों ने बड़े-बड़े राज्यों की स्थापना करके जी भर कर सुख का भोग किया। इस काल में वैश्यों और शूद्रों को भी अपनी लिप्सा तृप्त करने का पर्याप्त अवसर मिला होगा। पर ऐसा प्रतीत होता है कि आर्य लोग इस व्यवस्था से भी अधिक दिनों तक सन्तुष्ट नहीं रह सके। असन्तोष का क्या कारण था, इसे कहना कठिन है; तथापि एक बात स्पष्ट है। इधर आर्यों की पाशविक वृत्तियाँ शान्त हो रही थीं, उधर समाज में ब्राह्मणों का प्रभुत्व दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा था। उनके यज्ञों की विधियाँ जटिलता की सीमा को भी पार करके

आडम्बर का रूप धारण करती जा रही थीं। इससे बहुतों के, विशेषतः क्षत्रियों के—जिनका मन विषय-भोग से ऊब कर किसी अन्य पदार्थ में सुख का अन्वेषण कर रहा था—मन में यह शङ्का उठने लगी कि इन आडम्बर-मय यज्ञों से क्या लाभ? हम जिन इन्द्र, वरुण, अग्नि, सोम आदि की उपासना करते हैं, इनकी उत्पत्ति कैसे हुई? संसार क्या है? मनुष्यों को सुख-दुःख क्यों मिलते हैं? मृत्यु के बाद मनुष्यों की क्या गति होती है? स्थायी सुख प्राप्त करने का कौन सा मार्ग है? इस प्रकार के अनेक प्रश्नों ने सत्य के सच्चे अन्वेषकों को बेचैन कर दिया। वे संसार का सब काम त्याग कर इन प्रश्नों का उत्तर ढूँढ़ने लगे।

अभी तक आर्य-सभ्यता पशुत्व के क्षेत्र में विचरण कर रही थी। इन प्रश्नों के साथ-साथ आर्यों के हृदय में सच्चे मनुष्यत्व का उदय हुआ। वे सांसारिक भोग-विलास को त्याग कर किसी ऐसे व्यापक सत्य की खोज करने लगे, जिसे प्राप्त करने के बाद संसार में फिर कुछ भी प्राप्त करना शेष न रह जाय। इस अन्वेषण के फल-स्वरूप आर्यों को जिस तत्व का अनुभव हुआ, उसका वर्णन उपनिषदों में किया गया है। उपनिषदों ने तत्कालीन समाज में प्रचलित वृहत् यज्ञों को निरर्थक प्रमाणित किया। उपनिषदों ने कहा कि मनुष्य के हृदय में जब तक वासना या इच्छा का निवास है, तब तक मनुष्य किसी भी प्रकार सुखी नहीं हो सकता। संसार के सभी काम—राज्य-भोग, लोक-सेवा, यज्ञ-यागादि—किसी न किसी प्रकार की इच्छा या वासना से ही किए जाते हैं, अतः वे सच्चे सुख या स्थायी सुख के कारण नहीं हो सकते। स्थायी सुख प्राप्त करने का एक ही मार्ग है और वह है अखिल विश्व के साथ अपनी एकता का अनुभव करना। उपनिषदों के अनुसार समस्त संसार एक है। उसके भिन्न-भिन्न अवयवों में हमें जो भेद दिखाई देता है, उसका कारण हमारा अज्ञान है। अज्ञान का परदा हटते ही मालूम हो जाता है कि संसार में जो कुछ भी है, सब ब्रह्म है। ब्रह्म के अतिरिक्त और कहीं कुछ नहीं है—'सर्वंखल्विदं ब्रह्म'। ब्रह्म से ही संसार की उत्पत्ति होती है, ब्रह्म में ही यह निवास करता है और ब्रह्म में ही इसका प्रलय होता है। कठोपनिषद् का वाक्य है :—

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनाम्
एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः
तेषां शान्तिः शाश्वतीनेतरेषाम्॥

भावार्थ—"जो मनुष्य अनित्य में नित्य का दर्शन करता है, जो मनुष्य उसे जानता है, जो चेतनों का चैतन्य और जीवों का जीवन है, जिस मनुष्य को उसका ज्ञान है, जो एक होते हुए भी अनेक जीवों की इच्छा पूर्ण करता है, उसी को शाश्वत शान्ति प्राप्त होती है, अन्य किसी को नहीं।"

जो मनुष्य इस तत्व का अनुभव कर लेता है, वह संसार के सुख और दुःख, जीवन और मरण, हानि और लाभ, स्वर्ग और नरक, पुण्य और पाप आदि सभी बन्धनों से मुक्त हो जाता है। उसे इस महा सत्य का ज्ञान हो जाता है कि मैं ही ब्रह्म हूँ—'अहं ब्रह्मास्मि'। संसार में सर्वत्र मेरी ही सत्ता का विस्तार है। मेरे अति-रिक्त और किसी भी पदार्थ का अस्तित्व नहीं। मैं ही सूर्य के रूप में प्रकाशित होता हूँ; मैं ही चन्द्र बनकर महि-मण्डल को सुधा-सिक्त करता हूँ; मैं ही पृथ्वी हूँ; मैं ही आकाश हूँ; मैं ही ब्रह्म हूँ और मैं ही अनन्त विश्व हूँ। ज्ञानी पुरुष संसार की सभी वस्तुओं को अपना ही प्रतिबिम्ब समझता है, इसलिए उसमें किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा शेष नहीं रह जाती। उससे भिन्न तो कोई वस्तु है ही नहीं; वह प्राप्त किसे करे? वह सभी वासनाओं से मुक्त हो जाता है। इसी अवस्था को मुक्ति कहते हैं। उपनिषदों की शिक्षा के अनुसार जीवन का अन्तिम ध्येय वासनाओं से मुक्त होना या मुक्ति प्राप्त करना है।

प्राचीन काल में मुक्त पुरुषों का बहुत आदर होता था। वे समाज के सभी नियमों से मुक्त समझे जाते थे। अन्य लोग उनकी सेवा करने और उनसे उपदेश ग्रहण करने में अपना गौरव समझते थे। भारतवर्ष के व्यवस्था-पकों ने देखा कि यदि पात्रापात्र का विचार किए बिना सभी आदमियों को मुक्ति की शिक्षा दी जाने लगे और सभी को अपनी इच्छानुसार संसार त्यागने की स्वत-न्त्रता दे दी जाय तो इससे समाज में घोर अव्यवस्था फैल जायगी। बहुत से आदमी संसार से विराग न होते हुए भी केवल आलस्य के कारण संसार त्याग कर

अकर्मण्य जीवन व्यतीत करने लगेंगे। बहुत से भोले-भाले व्यक्ति उनको भी त्यागी महात्मा समझकर उनकी सेवा करेंगे, भोजन और वस्त्र देकर उनका सत्कार करेंगे और उनके उपदेशानुसार आचरण करेंगे। इससे समाज की नैतिक और आर्थिक दोनों प्रकार की हानियाँ होंगी। समाज को इन हानियों से बचाने के लिए विद्याध्ययन के क्षेत्र में मनुष्य के अधिकार या योग्यता पर बहुत अधिक ज़ोर दिया गया। सभी मनुष्यों को सब प्रकार की विद्याओं के अध्ययन का अधिकार नहीं दिया गया। जो व्यक्ति जिस विद्या का अधिकारी समझा जाता था, उसको उसी विद्या की शिक्षा दी जाती थी। त्याग या मुक्ति की शिक्षा सबके लिए नहीं थी। इसे प्राप्त करने का अधिकारी केवल वही था, जिसके मन में संसार के सभी सुखों और प्रलोभनों के प्रति तीव्र विराग उत्पन्न हो चुका हो। अपात्र को इस विद्या का दान देना बहुत ही गर्हित और निन्दनीय कर्म समझा जाता था। मनु ने अध्यापकों को स्पष्ट शब्दों में आज्ञा दी है कि :—

विद्ययैव समं कामं कर्त्तव्य ब्रह्मवादिना।
आपद्यपि हि घोरायां न त्वेनामिरिणे वपेत्॥

—अध्याय २, श्लोक ११३

अर्थात् "वेदाध्यापक अपनी विद्या के साथ भले ही मर जाय, पर घोर आपत्ति उपस्थित होने पर भी इस विद्या को ऊसर में न बोए; अर्थात् अपात्र को न पढ़ावे।"

यह तो हुई अध्यापकों की बात। अध्येताओं को यह समझाया गया कि प्रत्येक व्यक्ति ऋषियों, देवों और पितरों के प्रति ऋणी है। जो व्यक्ति बाल्यावस्था में ब्रह्मचर्य-धारण पूर्वक विद्याध्ययन करके ऋषियों का ऋण, यौवनावस्था में यज्ञादि के द्वारा देवों का और गृहस्थाश्रम में सन्तानोत्पत्ति के द्वारा पितरों का ऋण परिशोध नहीं करता, उसे संसार त्यागने का कोई अधिकार नहीं है। एक ओर व्यक्ति के सामने जीवन्मुक्ति का आदर्श रख कर उसे अधिक से अधिक स्वतन्त्रता दी गई; इतनी स्वतन्त्रता जिससे अधिक की कल्पना भी नहीं की जा सकती, दूसरी ओर उस स्वतन्त्रता को प्राप्त करने के पहले व्यक्तियों के आचरण को कठोरतम नियमों से आबद्ध कर दिया गया, जिससे भविष्य में प्राप्त होने वाली अपनी स्वतन्त्रता का वह किसी भी प्रकार दुरुपयोग न कर सके। इस सिद्धान्त को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए आश्रमों की स्थापना की गई। प्रत्येक व्यक्ति के लिए यह अनिवार्य कर दिया कि उसे बाल्यकाल में गुरुकुल में रह कर ब्रह्मचर्य-पालन और विद्याध्ययन करना होगा। विद्याध्ययन समाप्त होने पर उसे विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करना होगा। इस आश्रम में भोग-विलास करके जब वह विषय-सुखों की अनित्यता का अनुभव कर लेगा और संसार के सभी विषयों के प्रति उसके मन में तीव्र विराग उत्पन्न हो जायगा, उस समय उसे संसार त्याग कर मोक्ष-साधन करने की आज्ञा मिलेगी। इस अवस्था में कुछ दिनों तक रह कर लोग जब आत्मज्ञान प्राप्त कर लेते थे, तब सन्यास ग्रहण करते थे। इन सभी कर्त्तव्यों का पालन किए बिना और संसार के प्रति सच्चा विराग उत्पन्न हुए बिना किसी के लिए गृहस्थाश्रम छोड़ कर सीधे सन्यासाश्रम में पहुँच जाना असम्भव था।

भारत की प्राचीन सभ्यता का आदर्श मुक्ति थी और उसे प्राप्त करने का साधन वर्णाश्रम-धर्म का पालन। भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली इसी आदर्श पर सङ्गठित हुई थी। शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थी को मुक्ति प्राप्त कर सकने के योग्य बनाना था। पर मुक्त होने के लिए गृहस्थाश्रम से होकर गुज़रना आवश्यक था। इसलिए शिक्षण-संस्थाएँ विद्यार्थियों को न केवल धर्म और सदाचार की शिक्षा देती थीं, वरन् उन्हें गृहस्थाश्रम की सभी व्यावहारिक बातों की शिक्षा भी दिया करती थीं। गुरुकुल में प्रवेश करने के पहले विद्यार्थी का उपनयन-संस्कार होता था। इस संस्कार के सम्पन्न होने के पहले बालकों की गणना शूद्र वर्ण में होती थी। उपनयन-संस्कार के समय बालकों की प्रवृत्ति देखकर उनका वर्ण निश्चित किया जाता था और उसी वर्ण के अनुसार उनकी शिक्षा आरम्भ होती थी। ब्राह्मण का उपनयन साधारणतः ८ वर्ष की अवस्था में हुआ करता था, पर यदि किन्हीं कारणों से विलम्ब हो जाय तो यह संस्कार १६ वर्ष की अवस्था तक सम्पन्न हो सकता था। क्षत्रियों और वैश्यों के लिए उपनयन का समय क्रमशः ११ और १२ वर्ष की अवस्था तक था; पर विशेष दशाओं में दोनों वर्णों के लिए यह अवधि क्रमशः २२ और २४ वर्षों की अवस्था तक बढ़ाई जा सकती थी। क्षत्रियों

और वैश्यों के उपनयन की अवस्थाओं में अधिक भेद नहीं था; पर ब्राह्मणों की शिक्षा इन दोनों वर्णों की अपेक्षा अधिक शीघ्र आरम्भ होती थी। इसका यह कारण प्रतीत होता है कि ब्राह्मण की शिक्षा प्रधानतः साहित्यिक शिक्षा थी। ब्राह्मणों को वेद और शास्त्र का विशेष ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। इसलिए अधिक समय तक उनके गुरुकुल में रहने की आवश्यकता थी। क्षत्रियों और वैश्यों को गुरुकुल में सम्भवतः अधिक दिनों तक नहीं रहना पड़ता था। वे या तो आरम्भ में माता-पिता के साथ रहकर अपना व्यवसाय सीखते थे और पीछे कुछ दिनों के लिए गुरुकुल में जाकर धर्म और सदाचार की शिक्षा प्राप्त कर आते थे या आरम्भ में ही गुरुकुल की शिक्षा समाप्त करके पीछे अपने वर्ण का धन्धा सीखते थे। इसीलिए क्षत्रियों और वैश्यों को अपेक्षाकृत अधिक अवस्था में भी गुरुकुल में प्रवेश करने का अधिकार दिया गया था।

उपनयन-संस्कार के बाद विद्यार्थी गुरु के परिवार में प्रवेश करता था और उस परिवार या कुल का एक सदस्य बन जाता था। इसीलिए भारत के प्राचीन विद्यालयों को गुरुकुल कहा करते थे। विद्यार्थी गुरु के साथ रहता था, गुरु के साथ खाता था, गुरु की आज्ञा मानता था और शक्ति भर गुरु की सेवा किया करता था। विद्यार्थी का जीवन ब्रह्मचर्य और संयममय होता था। उसके जीवन में संयम का इतना अधिक महत्व था कि प्राचीन भारत में विद्यार्थी को 'ब्रह्मचारी' कहा करते थे। ब्रह्मचारी का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी सभी इन्द्रियों को संयत करके अपनी आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति का साधन करे। विद्यार्थियों के लिए मधु, मांस, सुगन्ध, माला, रस, स्त्री-सहवास, उबटन लगाना, आँखों में काजल लगाना, जूता पहनना, छाता लगाना, गाना, बजाना, नाचना, उत्तेजक पदार्थ खाना आदि वर्जित थे। ब्रह्मचारी गुरु के लिए पानी भर लाता था, हवन और भोजन बनाने के लिए लकड़ियाँ एकत्र करता था, अपने हाथ से आश्रम की सफ़ाई करता था तथा कुल या परिवार के लिए अन्य सभी आवश्यक कार्य अपने हाथ से किया करता था। गुरु में ब्रह्मचारियों की प्रगाढ़ श्रद्धा होती थी या यों कहिए कि जिस व्यक्ति में उनकी प्रगाढ़ श्रद्धा होती थी, उसी को वे अपना गुरु चुनते थे। विद्यार्थी अपने गुरु की आज्ञाओं का, चाहे वे कितनी ही कठोर क्यों न हों, बड़ी प्रसन्नता-पूर्वक पालन करते थे। उनका दृढ़ विश्वास होता था कि गुरु जो कुछ भी आज्ञा देंगे, वह हमारे मङ्गल के लिए ही होगी। गु भी विद्यार्थी को अपने पुत्र की भाँति प्यार करते थे। गुरु विद्यार्थियों को किसी आर्थिक या सांसारिक लाभ की दृष्टि से शिक्षा नहीं देते थे। वे समाज में ज्ञान का प्रचार करना अपना पवित्र कर्त्तव्य समझते थे और इसी कर्त्तव्य-भावना से विद्यार्थियों को शिक्षा दिया करते थे। शिक्षक का यह कर्त्तव्य था कि वह विद्यार्थियों को पूर्ण मनोयोग के साथ वेद पढ़ावे और उनसे वेद का कोई भी अंश छिपा न रक्खे। मनु ने कहा है कि गुरु को सब प्रकार से अपने मन को शुद्ध करके ब्रह्मचारी को उस विद्या की शिक्षा देनी चाहिए, जिसका ब्रह्मचारी के जीवन में सबसे अधिक उपयोग हो। विद्यार्थियों को कठोर दण्ड देने की प्रथा न थी। शारीरिक दण्ड (Corporal punishment) तो उन्हें शायद ही कभी दिया जाता था। गौतम की व्यवस्था के अनुसार जब किसी दुष्ट विद्यार्थी को सुधारने का और कोई उपाय नहीं रह जाता, तब उसे रस्सी या पतली छड़ी से सज़ा दी जा सकती थी; पर अन्य किसी भी चीज़ से विद्यार्थी की ताड़ना करना अपराध समझा जाता था और इस अपराध के लिए अध्यापक राजा के द्वार दण्डित हो सकता था। मनु की आज्ञा के अनुसार यदि कोई विद्यार्थी अपराध करे तो उसे रस्सी या बाँस की पतली छड़ी से सज़ा दी जा सकती थी, पर मर्म-स्थान या सूक्ष्मवेदक (Sensitive) अङ्गों पर आघात करना वर्जित था। मनु ने कहा है कि जो व्यक्ति इस नियम को भङ्ग करेगा अर्थात् विद्यार्थी के किसी कोमल अङ्ग पर आघात करेगा, उसे वही सज़ा दी जायगी, जो चोर को दी जाती है।

विद्यार्थियों से किसी प्रकार का शुल्क या फ़ीस नहीं ली जाती थी। सभी द्विज वर्णों के बालकों के लिए शिक्षा, प्रारम्भिक श्रेणियों से लेकर सर्वोच्च कक्षाओं तक, निःशुल्क और अनिवार्य थी। प्राचीन भारत में विद्या का व्यापार नहीं होता था। कोई भी बालक अर्थाभाव के कारण शिक्षा से वञ्चित नहीं रक्खा जाता था। गुरुकुलों के

द्वार धनी और ग़रीब सबके लिए समान भाव से खुले थे। शिक्षक विद्यार्थियों को पढ़ाना अपना कर्त्तव्य समझते थे। अध्यापन द्वारा अर्थोपार्जन करना उनका उद्देश्य नहीं था। शिक्षकों के पालन-पोषण का भार राजाओं, गृहस्थों और धनाढ्य वैश्यों के ऊपर था। ये लोग धन से शिक्षकों की सहायता करते थे और शिक्षकगण निश्चिन्त होकर विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे। विद्यार्थी जब तक विद्याध्ययन समाप्त न कर लेता तब तक उससे किसी भी प्रकार का उपहार या भेंट ग्रहण करना शिक्षक के लिए वर्जित था। यह विद्यार्थी का कर्त्तव्य समझा जाता था कि जिस समय वह विद्याध्ययन समाप्त करके गुरुकुल से विदा होने लगे, उस समय अपनी शक्ति के अनुसार उपहार और भेंट देकर गुरु को सन्तुष्ट करे।

गुरुकुल प्रायः नदियों के किनारे, पहाड़ी देशों में या सुन्दर उपवनों में स्थापित होते थे। जिस प्रकृति-पूजा से आर्यों के प्राचीन धर्म का उद्भव हुआ, उस प्रकृति-पूजा का गहरा असर उनकी शिक्षा-प्रणाली पर भी पड़ा था। भारत के ब्रह्मचारी और अध्यापक गाँवों और नगरों के कोलाहल से दूर—बहुत दूर—प्रकृति की प्रशान्त गोद में निवास करते थे। प्राकृतिक दृश्यों की महानता और पवित्रता एक अज्ञात भाव से उनके चरित्र में महानता और पवित्रता का सञ्चार कर देती थी। पुलिनों के सौन्दर्य और पर्वतों के स्वास्थ्यमय वातावरण से उन्हें अपनी इन्द्रियों को संयत और मन को सबल बनाने में बड़ी सहायता मिलती थी। चरित्र जब एक बार गठित हो जाता है, तब दूषित वातावरण में रहने से भी उसके पतित होने का भय नहीं रहता। भारतीय बच्चों की शिक्षा में इस सिद्धान्त का पूर्णरूपेण उपयोग किया गया था। गृहस्थाश्रम के सब प्रकार के भोग-विलास और संसार के सभी प्रलोभनों से दूर रख-कर उन्हें संयम और त्याग की शिक्षा दी जाती थी। युवावस्था के आगमन तक ये भाव उनके चरित्र में स्थायी रूप से अङ्कित हो जाते थे, जिसके कारण गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर उनकी वासनाएँ मर्यादा के बाँध को तोड़ कर राक्षसी निर्लज्जता और नग्न स्वार्थपरता का उग्र रूप नहीं धारण करती थीं। वे संयम और उदारता-पूर्वक संसार के भोग भोगते थे और समय आने पर प्रसन्नता-पूर्वक उन्हें त्याग कर समाज की निष्काम सेवा या मोक्ष के साधन में निरत हो जाते थे।

उपनिषदों से तत्कालीन पाठ-क्रम पर बहुत प्रकाश पड़ता है। ब्राह्मणों के जीवन में वेद, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा का सबसे अधिक उपयोग था, अतः उन्हें प्रधानतः इन्हीं विषयों की शिक्षा दी जाती थी। छान्दोग्योपनिषद् में लिखा है कि नारद सनत्कुमार के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिए गए और उनसे कहा—"आर्य! मुझे विद्या दीजिए।" सनत्कुमार ने उत्तर दिया—"पहले आप यह बताइए कि आप क्या जानते हैं। इसके बाद मैं बताऊँगा कि इसके बाद क्या जानने योग्य है।" नारद ने कहा—"मैं ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इति-हास, पुराण, व्याकरण, पित्र्य (तर्पण आदि की विधि), राशि (अङ्कगणित), दैव (भविष्य जानने की विद्या), निधि (समय-विज्ञान), वाकोवाक्य (तर्कशास्त्र), एकायन (कर्तव्यशास्त्र), देवविद्या (अक्षर-बोध), ब्रह्मविद्या (उच्चारण, वाक्य-रचना, छन्द-रचना आदि), भूतविद्या (भूत-प्रेतों की विद्या), क्षात्रविद्या (शस्त्र-विद्या), नक्षत्र-विद्या (ज्योतिष), सर्पविद्या, देवजनविद्या (जिनों की विद्या), इत्यादि जानता हूँ।" इस उद्धरण से पता चलता है कि उपनिषद्-काल में ब्राह्मणों को उक्त विद्याएँ पढ़ाई जाती थीं। बृहदारण्यकोपनिषद् की सूची भी इससे मिलती-जुलती ही है। उसमें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक (पद्यरचना), सूत्र (गद्यरचना), अनुव्याख्यानस (टीका), व्याख्यानस (भाष्य), आदि का उल्लेख पाया जाता है।

यह पहले कहा जा चुका है कि क्षत्रियों और वैश्यों के लिए वेद और धर्मशास्त्र के ज्ञान में उतना पारङ्गत होने की आवश्यकता नहीं थी, जितना ब्राह्मणों के लिए। ऐसा मालूम होता है कि जैसे-जैसे समय बीतता गया, वैसे-वैसे क्षत्रियों और वैश्यों के लिए वेदों की शिक्षा का समय कम होता गया, पर धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए परम आवश्यक था। वैश्यों को साधारण तौर से और क्षत्रियों को विशेष प्रकार से धर्मशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। समाज के द्वारा शास्त्रों की आज्ञा के पालन कराने का भार क्षत्रियों पर था, अतः उनके लिए धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना

अत्यन्त आवश्यक था। प्राचीन भारत में राजा का अधिकार केवल समाज पर शासन करने का था, उसे शासन के सिद्धान्त या नियम निर्धारित करने का कोई अधिकार नहीं था। ऋषि या ज्ञानी महात्मागण समाज के आचरण के लिए जो नियम बना देते थे, उन्हीं नियमों के अनुसार राजा समाज का शासन किया करता था। इन नियमों के संग्रह को 'धर्मशास्त्र' कहते थे। अतः राजाओं या उनके कर्मचारियों को प्रजा का शासन करने में पद-पद पर धर्मशास्त्रों की आज्ञाओं की अपेक्षा करनी पड़ती थी। उनके लिए धर्मशास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करना उतना ही आवश्यक था, जितना शस्त्र-सञ्चालन और युद्ध की विद्या में निपुण होना। प्राचीन भारत में राजनीति धर्मशास्त्र का एक अङ्ग थी और धर्म के आधार पर ही नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र (शासन-विज्ञान) का निर्माण हुआ था। मुक़द्दमों का फ़ैसला भी धर्मशास्त्र के अनुसार होता था। अतः न्यायाधीशों के लिए भी धर्मशास्त्र का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक था। युद्ध-विद्या में कुशल होना क्षत्रिय का प्रधान गुण था; अतः क्षत्रिय बालकों की शिक्षा का अधिकांश समय शस्त्र-सञ्चालन, घोड़े, हाथी, रथ की सवारी आदि में व्यतीत होता था। प्राचीन भारत की सेना के चार अङ्ग होते थे, (१) हाथी, (२) घोड़े, (३) रथ और (४) पैदल; इसीलिए उसे चतुरङ्गिणी (चार अङ्ग वाली) कहते थे। क्षत्रिय-कुमारों को युद्ध के इन सभी साधनों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ता था। ऋग्वेद तथा महाभारत में ऐसा वर्णन आया है कि क्षत्रियों के लड़के अभ्यास करने के लिए परस्पर युद्ध करते थे। रामचन्द्र के विषय में वाल्मीकि-रामायण में कहा गया है कि वे हाथी और घोड़ों पर चढ़ सकते थे, रथों का सञ्चालन कर सकते थे, शस्त्रविद्या का अध्ययन करने में सदा दत्तचित्त रहते थे और राजकार्य में राजा को सम्मति भी दिया करते थे। दशरथ के सभी राजकुमार वेदाध्ययन में निरत रहते थे, धनुष-बाण चलाने में कुशल थे और अपने पिता की सहायता के लिए सदा प्रस्तुत रहते थे।

मौर्यकाल में राजकुमारों की शिक्षा के मुख्य तत्व वही थे, जो वैदिक काल में; तथापि मौर्यकालीन शिक्षा-प्रणाली वैदिक शिक्षा-प्रणाली से अधिक उन्नत मालूम होती है। मौर्यों के समय तक राजनीति-विज्ञान का बहुत विकास हो चुका था और क्षत्रियों के लिए राजनीतिक दाँव-पेंचों को समझना बहुत ज़रूरी था। कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि राजकुमारों को प्रधानतः चार विषयों की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। वे चार विषय हैं—(१) आनविक्षिकी, (२) तीनों वेद, (३) वार्ता और (४) दण्ड नीति। आनविक्षिकी में सांख्य, योग और लोकायात दर्शन सम्मिलित थे। वार्ता का अर्थ कृषि, पशु-पालन, व्यापार आदि का ज्ञान था। दण्डनीति शासन-विज्ञान को कहते थे; इसमें फ़ौजदारी क़ानून भी शामिल था। कौटिल्य के कथनानुसार इन चार विषयों में भी दण्डनीति का स्थान राजकुमारों की शिक्षा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है; क्योंकि दण्ड के द्वारा ही समाज में शान्ति या व्यवस्था की रक्षा की जा सकती है। दण्ड का सम्बन्ध सदाचार से है और सदाचार का निर्णय धर्मशास्त्र के अनुसार होता है। अतः राजा को धर्मशास्त्र का भी ज्ञान रखना चाहिए। मनु की व्यवस्था कौटिल्य की व्यवस्था से बहुत ही मिलती-जुलती है :—

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भाश्च लोकतः॥

—अध्याय ७, श्लोक ४३

भावार्थ—"राजा को तीनों वेदों के जानने वालों से तीनों वेद, सनातन दण्डनीति के जानने वालों से सनातन दण्डनीति, तार्किकों से तर्क-विद्या, आत्मविदों से आत्मविद्या और सांसारिक लोगों से संसार के भिन्न-भिन्न धन्धों और व्यापारों का रहस्य समझ लेना चाहिए।"

एक आदर्श नरपति के लिए शायद इससे बढ़ कर अच्छी शिक्षा-प्रणाली और कोई हो नहीं सकती! राजा समस्त समाज का शासक था, इसलिए उसे समाज में रहने वाले सब श्रेणियों के मनुष्यों की जीविका का साधारण ज्ञान और दण्डनीति या धर्मशास्त्र और युद्ध-विद्या का विशेष ज्ञान दिया जाता था। इस आदर्श शिक्षा-प्रणाली को देखने से प्राचीन भारत के शिक्षकों की विशाल बुद्धि का थोड़ा-थोड़ा सा अनुमान लगाया जा सकता है। राजकुमारों की शिक्षा का सम्पूर्ण रहस्य उनके सामने रक्खे जाने वाले इस आदर्श में निहित था कि राजा का कर्त्तव्य समाज की रक्षा और सेवा करना है; उसका कर्त्तव्य निरीह प्रजा

से कर वसूल करके उसके ख़र्च पर भोग-विलास करना और प्रजापालन से विमुख होना कदापि नहीं हो सकता। इसी शिक्षा-प्रणाली का फल था कि भारतवर्ष की प्रजा हज़ारों वर्षों तक एकच्छत्र शासन में भी प्रजातन्त्र शासन के सुख भोग सकी और प्रजातन्त्र शासन की अपेक्षा अधिक शान्ति और सुख के साथ रह कर अपने जीवन को अनन्त सुख, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त ज्ञान की उपासना में व्यतीत कर सकी।

क्षत्रियों की भाँति वैश्यों की शिक्षा का प्रबन्ध भी ब्राह्मणों के हाथ में था। पर वैश्यों के लिए जिन विषयों के ज्ञान प्राप्त करने का विधान था, उन्हें देखते हुए यह कहना पड़ता है कि वे अधिक दिनों तक गुरुकुलों में विद्याध्ययन नहीं करते होंगे। मनु ने वैश्य का कर्त्तव्य बताते हुए लिखा है :—

न च वैश्यस्य कामः स्यान्न रक्षेयं पशूनिति।
वैश्ये चेच्छति नान्येन रक्षितव्याः कथंचन॥

—अध्याय ९, श्लोक ३२८

भावार्थ—"वैश्य को कभी अपने मन में यह भाव नहीं लाना चाहिए कि 'मैं पशु-पालन नहीं करूँगा'; और यदि वैश्य पशुओं का पालन करने के लिए तैयार हो तो अन्य किसी भी वर्ण को पशु-पालन नहीं करना चाहिए।"

मनु के व्यवस्थानुसार वैश्य को मणि, मोती, मूँगा, लोहा, वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ और मसालों के मूल्य और देश-कालानुसार उसमें होने वाले परिवर्तन को जानना चाहिए। वैश्य को यह जानना चाहिए कि खेत में किस समय कौन सा बीज बोना चाहिए। उसे खेत के गुण-दोष का ज्ञान होना चाहिए और सब चीज़ों के तौलने की रीति भी जाननी चाहिए। वैश्य को घटिया और बढ़िया माल की पहचान होनी चाहिए। उसे यह जानना चाहिए कि किस देश में कौन सी चीज़ सस्ती और कौन सी चीज़ महँगी है, किस व्यापार में नफ़ा होगा और किसमें नुक़सान, किस उपाय से पशुओं की वृद्धि की जा सकती है, किस नौकर को कितना वेतन देना चाहिए, किस वस्तु को कैसे स्थान में रखने से वह ख़राब नहीं होगी, बाज़ार में किस चीज़ की माँग है, इत्यादि। उसे भिन्न-भिन्न देशों के मनुष्यों की भाषा भी जाननी चाहिए। इस विधान से स्पष्ट है कि अपने कर्त्तव्यों का यथोचित रूप से पालन करने के लिए वैश्यों के लिए खेती करने के तरीक़े, पशुओं का पालन करने की विधि, व्यापार के रहस्य, व्यापारिक भूगोल, व्यापारिक अङ्क-गणित, भिन्न-भिन्न देशों की भाषाएँ आदि जानना आवश्यक था। निस्सन्देह इन विषयों का ज्ञान बालकों को घर पर रह कर, माता-पिता के साथ कार्य करके प्राप्त करना पड़ता होगा; पर सदाचार तथा धर्म की शिक्षा के लिए उन्हें गुरुकुलों में अवश्य जाना पड़ता था। जिन वर्णों का उपनयन-संस्कार होता था, उनके लिए गुरुगृह में जाकर वेदाध्ययन करना अनिवार्य था। वैश्य लोग द्विज थे और उनके बालकों का उपनयन-संस्कार होता था। वास्तव में तीनों द्विज वर्णों की शिक्षा में कोई भेद नहीं था। तीनों वर्णों का धर्म एक ही था—मुक्ति प्राप्त करना। गृहस्थाश्रम में रह कर जो कर्म किए जाते थे, वे इस धर्म के साधन मात्र थे।

शिक्षण-संस्थाओं में सबसे पहले विद्यार्थियों के चरित्र पर ध्यान दिया जाता था। उन्हें स्वास्थ्य के नियम, संयम और शिष्टाचार सिखाया जाता था। इस शिक्षा से जब उनकी बुद्धि कुछ परिष्कृत, तीक्ष्ण और स्थिर हो जाती थी, तब उन्हें धर्म—मानव-धर्म—की शिक्षा दी जाती थी। 'धर्म' का अर्थ प्राचीन काल में आजकल की भाँति सङ्कुचित सम्प्रदाय-वाद—आर्य धर्म, अनार्य धर्म, बौद्ध-धर्म, हिन्दू-धर्म, शैव-धर्म, शाक्त धर्म आदि—नहीं था। प्राचीन आर्यों का धर्म सब प्रकार की सङ्कीर्णताओं से मुक्त था। वह बहुत विशाल और अत्यन्त महान था। उसमें मनुष्य-मात्र के लिए स्थान था। संसार का कोई भी मनुष्य—चाहे वह परम ज्ञानी हो या उजड्ड मूर्ख, चक्रवर्ती सम्राट् हो या राह का भिखारी—इस धर्म की सीमा से बाहर नहीं जा सकता था। उपनिषदों की शिक्षा में उस धर्म का थोड़ा सा वर्णन हो चुका है। आर्यों का धर्म उन्हें यह बताता था कि संसार मिथ्या है और ब्रह्म सत्य। संसार की क्षण-भङ्गुरता और उससे प्राप्त होने वाले सुख-दुःखों की अनित्यता का अनुभव करके मनुष्य को संसार का त्याग कर देना चाहिए। और उस वस्तु की, उस अमर तत्व की, उस अविनाशी ब्रह्म की प्राप्ति का उपाय करना चाहिए, जिसकी माया का एक छोटा सा कौतुक यह संसार है। विश्व के स्वामी को

प्राप्त कर लेने से विश्व की और किसी भी वस्तु को प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। जो मनुष्य उस परम पद को प्राप्त कर लेता है, वह स्वयं विश्व का स्वामी हो जाता है। उसी समय यह कल्पना चरितार्थ होती है कि 'मनुष्य अखिल विश्व का स्वामी है' (Man is the Master of the Universe)। अखिल विश्व का स्वामित्व प्राप्त करना ही आर्यों का धर्म था। इसी धर्म की शिक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को दी जाती थी। यहाँ तक तीनों वर्णों की शिक्षा एक थी। भिन्न-भिन्न वर्णों की शिक्षा में भेद केवल इतना था कि भिन्न-भिन्न प्रकृति के मनुष्यों के लिए धर्म की साधना के निमित्त भिन्न-भिन्न साधनों की आवश्यकता होती है। ब्राह्मण पठन-पाठन, यजन याजन आदि के द्वारा धर्म का साधन कर सकता था तो क्षत्रिय को उसी धर्म की साधना के लिए लाठी, तलवार, यश, कीर्ति आदि की आवश्यकता थी। वैश्य रुपए-पैसे, धन-दौलत की प्राप्ति और भोग से अपने मन को शान्त करके उसे धर्म की साधना में लगा सकता था। इसीलिए भिन्न-भिन्न वर्णों के मनुष्यों को उनकी रुचि, स्वभाव या गुण के अनुसार भिन्न-भिन्न जीविकाओं की शिक्षा दी जाती थी। वर्ण-व्यवस्था का भी यही कारण था। तीनों वर्णों की शिक्षा में तत्वतः कोई भेद नहीं था; भेद था केवल उसके बाहरी स्वरूप में।

शिक्षा समाप्त होने के बाद ब्रह्मचारियों का समावर्त्तन संस्कार होता था। इस समय आचार्य ब्रह्मचारियों को उपदेश देते थे—"सत्य बोलना! धर्म का पालन करना! वेदाध्ययन की उपेक्षा न करना! दक्षिणा देकर गुरु को सन्तुष्ट करने के बाद वंश की वृद्धि करना! सत्य से विचलित न होना! धर्म से विचलित न होना! शुभ कर्मों में आलस्य न करना! सन्त पुरुषों के सत्कार में त्रुटि न करना! वेद के अध्ययन-अध्यापन में प्रमाद न करना!" इत्यादि। इस संस्कार के बाद ब्रह्मचारियों को स्नातक (विद्या में स्नान किया हुआ) कहते थे और वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के अधिकारी समझे जाते थे। अधिकांश स्नातक विवाह करके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। पर जिन स्नातकों के मन में अध्ययन-काल में ही संसार के प्रति तीव्र विराग उत्पन्न हो जाता था, उन्हें गृहस्थाश्रम में न जाकर सीधे वाणप्रस्थाश्रम में प्रवेश करने की आज्ञा मिल जाती थी।

यहाँ पर शूद्रों और स्त्रियों की शिक्षा के सम्बन्ध में भी कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। प्राचीन भारत में शूद्रों का कोई अलग वर्ण नहीं था। जिन मनुष्यों की बुद्धि नितान्त अविकसित थी—चाहे वे ब्राह्मण माता-पिता से उत्पन्न हुए हों या चाण्डाल दम्पत्ति से—वे सभी शूद्र समझे जाते थे। बालकों की गणना, जब तक उनकी बुद्धि विकसित नहीं होती थी, तब तक शूद्रों में होती थी। कर्म-पतित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य भी शूद्र ही समझे जाते थे। आजकल की सभी अस्पृश्य जातियाँ पूर्व-काल के ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों की ही सन्तान हैं, जो किसी कारण से अपने वर्ण से पतित कर दी गई थीं और अब स्वार्थी, भीरु और अकर्मण्य मनुष्यों के द्वारा प्रचारित "जन्मना वर्णः" की शिकार होकर चिरकाल के लिए हिन्दू-धर्म और आर्य-सभ्यता को कोस रही हैं! प्राचीन भारत में 'जन्मना वर्णः' का सिद्धान्त प्रचलित न था। वर्णाश्रम-धर्म की सारी व्यवस्था ही कर्म के ऊपर निर्भर है। श्रीमद्भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं:—

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टंगुणकर्मविभागशः॥

इस श्लोकार्द्ध का अर्थ लोकमान्य बाल गङ्गाधर तिलक की टीका के अनुसार यह है:—

"(ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इस प्रकार) चारों वर्णों की व्यवस्था गुण और कर्म के भेद से मैंने निर्माण की है।" इसमें जन्म या वंश का उल्लेख कहीं नहीं आया। महाभारत में लिखा है:—

शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम्।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः॥

—वनपर्व, अध्याय ३१२, श्लोक १०३

भावार्थ—"हे यक्ष! सुनो; इसमें कोई शङ्का नहीं कि द्विजत्व का कारण—वर्ण का निर्णायक—कर्म या जीविका ही है। कुल, विद्याभ्यास या वेद-ज्ञान से वर्ण का निश्चय नहीं हो सकता।"

भागवत का श्लोक है:—

यस्य यल्लक्षणंप्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यदन्यत्रापि दृश्येत तत् तेनैव विनिर्दिशेत्॥

—स्कन्द ८, अध्याय ११

भावार्थ—"यदि किसी व्यक्ति में उसके वर्ण के अतिरिक्त किसी अन्य वर्ण के लक्षण दृष्टिगोचर हों तो उन्हीं

लक्षणों के अनुसार उसके वर्ण का निर्देश होना चाहिए।"

प्राचीन ग्रन्थों के इन वचनों के देखने से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्राचीन भारत में व्यक्तियों की सामाजिक स्थिति में परिवर्त्तन होने की गुञ्जायश अर्वाचीन भारत की अपेक्षा कहीं अधिक थी। व्यक्तियों के लिए आत्म-विकास के मार्ग चारों ओर से बन्द न थे। शूद्र अपने गुण, कर्म और स्वभाव में उन्नति करके वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण के पदों को प्राप्त कर सकता था। शूद्रों के वर्ण-परिवर्त्तन के सम्बन्ध में मनु ने कहा है :—

शुचिरुत्कृष्ट शुश्रुषुर्मृदुवागनहंकृतः।
ब्राह्मणाद्याश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते॥

—अध्याय ९, श्लोक ३३५

अर्थात्—"शरीर और मन को पवित्र रखने वाला, अपने से श्रेष्ठ जाति की सेवा करने वाला, मृदुभाषी, अहङ्कार-रहित, विशेषकर नित्य ब्राह्मण का आश्रित शूद्र अपने से उत्कृष्ट जाति को प्राप्त होता है।"

इस श्लोक को देख कर शूद्रों के वर्ण-परिवर्त्तन के सम्बन्ध में कोई शङ्का नहीं रह जाती। भारत के प्राचीन समाज में शूद्रों का भी एक विशिष्ट स्थान था और वह स्थान ऐसा था, जहाँ रहने से शूद्रों की उन्नति अवश्यमेव और बहुत शीघ्र होती थी। शूद्र के कर्त्तव्य की व्याख्या मनु ने इस प्रकार की है : —

विप्राणां वेदविदुषां गृहस्थानां यशस्विनाम्।
शुश्रूषैव तु शूद्रस्य धर्मो नैश्रेयसः परः॥

—अध्याय ९, श्लोक ३३४

भावार्थ—"शूद्र को ऐसे ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए जो वेद का जानने वाला अर्थात् विद्वान् हो; और ऐसे गृहस्थ की सेवा करनी चाहिए जो यशस्वी अर्थात् धर्मात्मा हो। (प्राचीन भारत में धर्म के बिना यश प्राप्त करना असम्भव था)। विद्वान् ब्राह्मणों और यशस्वी गृहस्थों की सेवा करना ही शूद्र के लिए मोक्षप्रद धर्म है।"

इस श्लोक में 'वेदविदुषां' और 'यशस्विनां' विशेषण बड़े ही महत्व के हैं। इन्हीं दो विशेषणों से श्लोक का वास्तविक अभिप्राय प्रकट होता है। शूद्र को ऐसे ब्राह्मणों की सेवा करने का उपदेश दिया गया, जो वेदज्ञ, धर्मात्मा और ज्ञानी हों; क्योंकि ऐसे ब्राह्मणों के पास रहने से शूद्र की बुद्धि बढ़ेगी, वह जीवन के उद्देश्य और सिद्धान्तों को समझने लगेगा। जिस समय उसकी बुद्धि इतनी विकसित और परिपक्व हो जायगी कि वह स्वतन्त्र होकर समाज में किसी उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य का सञ्चालन कर सके, उस समय उसकी प्रकृति के अनुकूल तीन वर्णों में से किसी एक वर्ण में उसे प्रविष्ट कर दिया जायगा। यशस्वी गृहस्थ की सेवा करने के उपदेश का भी यही अभिप्राय था। मूर्ख ब्राह्मण या दुष्ट गृहस्थ की सेवा करने का उपदेश नहीं दिया गया; क्योंकि उनकी सेवा करने से शूद्र की बौद्धिक, सामाजिक और आध्यात्मिक उन्नति में सहायता नहीं मिलती। वास्तव में शूद्र का सारा जीवन ही अध्ययनमय था। सत्सङ्गति में रहने के कारण उसकी सभी शक्तियों को विकसित और प्रस्फुटित होने का पर्याप्त सुअवसर मिलता था।

यह तो हुई शूद्रों की सामाजिक स्थिति की बात। इसके अतिरिक्त भी उनकी शिक्षा का बहुत ही उत्तम प्रबन्ध था। पुराणों की रचना मुख्यतः शूद्रों को शिक्षा देने के लिए की गई थी। किम्बदन्ती प्रचलित है कि बालक, स्त्री, कर्म-पतित ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य और शूद्र वेद पढ़ने के अधिकारी नहीं हैं। अतएव इनके कल्याण के लिए पुराणों की रचना की गई। इतिहास के बहुत से विद्यार्थी हमारे इस कथन को सुनकर चौंक पड़ेंगे! वे कहेंगे कि पुराणों की रचना ३री या ४थी शताब्दी में गुप्त सम्राटों के राजत्व-काल में हुई थी; फिर इन पुराणों के द्वारा उपनिषद्-काल में शूद्रों को शिक्षा कैसे दी जाती थी? आजकल पाए जाने वाले पुराण-ग्रन्थों की रचना चाहे जिस समय हुई हो, पर पुराण-विद्या बहुत ही प्राचीन है। पुराणों में बड़े-बड़े सिद्धान्तों का वर्णन कहानी के रूप में इतने सरल प्रकार से किया गया है कि वह अविकसित बुद्धि के मनुष्यों—बालकों, स्त्रियों, कर्म-पतित ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों और शूद्रों—की समझ में आसानी से आ जाय। इसीलिए पुराणों में ऐसे रूपकों की भरमार है, जिन्हें समझना, बहुत दिनों से पुराणों की कथाओं के सार्वजनिक स्थानों में कहे जाने की प्रथा के बन्द हो जाने के कारण, आजकल के विकसित बुद्धि वाले ब्राह्मणों के लिए भी मुश्किल हो गया है। इन रूपकों का निर्माण केवल मात्र शूद्र-बुद्धि के मनुष्यों को शिक्षा देने के

अभिप्राय से ही किया गया था। पुराणों की व्याख्या जब तक हम इस सिद्धान्त के प्रकाश में नहीं करेंगे तब तक ब्रह्मा का अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्त होना, समुद्र का मथा जाना, अगस्त्य के द्वारा समुद्र का शोषित होना, ब्रह्मा के चार मुँह, विष्णु भगवान् का क्षीरसागर में शेषनाग की पीठ पर शयन करना आदि पौराणिक रूपकों का वास्तविक अभिप्राय समझ में नहीं आ सकता। इन्हीं रूपकों और कहानियों के द्वारा प्राचीन काल में शूद्रों को कठिन से कठिन और ऊँचे से ऊँचे सिद्धान्तों का ज्ञान बड़ी सरलता से करा दिया जाता था।

वैदिक समाज में स्त्रियों के महत्त्व और उनकी विद्वत्ता को देखते हुए यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियों के विद्याध्ययन के सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की निषेधाज्ञा नहीं थी। जब हम देखते हैं कि प्राचीन आर्यों ने विद्या की अधिष्ठात्री देवी के पद पर सरस्वती को प्रतिष्ठित किया है, तब तो हम किसी निषेधाज्ञा की कल्पना भी नहीं कर सकते! प्राचीन भारत की स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में रेवरेण्ड के लिखता है :—

"The education of girls in India was, and still is, not unlike the education of the boys who were to be craftsmen, in that it was entirely domestic and vocational, in the sense that they were being prepared for that which was considered a woman's principal work the duties of the household.

There are not wanting evidences that women had a much higher status and more independence in early society than they came to have later. The position of the women of the Aryan invaders of India was one of authority and honour, and marriage sometimes took place by free choice of man and maid. The custom of infant marriage and enforced widowhood were not prevalent among the Aryans of Vedic times. The authorship of some Vedic Hymns is ascribed to women, and in the deep discussion on philosophical truths which are related in the Upnishads, women are mentioned as taking part. Thus Gargi Vachaknavi joins in the discussion, and Maitreyi, wife of Yajnavalkya, was 'conversant with Brahman,' and heared from her husband philosophical doctrines. It is also described what a man should do if he wished that a learned daughter should be born to him."

भावार्थ—"प्राचीन भारत में लड़कियों को केवल घरेलू काम-धन्धों की शिक्षा दी जाती थी और आजकल भी यही प्रथा प्रचलित है। पर एक दृष्टि से लड़कियों की शिक्षा लड़कों की शिक्षा के समान ही थी, क्योंकि लड़के गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने पर अपने वर्ण का व्यवसाय करते थे और लड़कियों का प्रधान कर्त्तव्य घर का प्रबन्ध करना था।

इस बात के प्रमाणों की कमी नहीं है कि प्राचीन समाज में स्त्रियों का स्थान पीछे के समय की अपेक्षा बहुत ऊँचा था और उन्हें कहीं अधिक स्वतन्त्रता थी। भारत के आर्य-आक्रामकों की स्त्रियों का पद अधिकार और सम्मान से युक्त था और पुरुष तथा स्त्री का विवाह कभी-कभी उनकी स्वतन्त्र इच्छा के अनुसार होता था। वैदिक युग के आर्यों में बाल-विवाह और स्त्री की इच्छा के विरुद्ध उससे ज़बरदस्ती वैधव्य-व्रत के पालन कराने की प्रथा प्रचलित न थी। कहा जाता है कि वेद के कुछ मन्त्रों की रचयिता स्त्रियाँ हैं और उपनिषदों में वर्णित गम्भीर दार्शनिक तत्त्वों के वाद-विवाद में भी उनके भाग लेने की बात प्रसिद्ध है। गार्गी वाचक्नवी ऐसे विवादों में भाग लेती थी और याज्ञवल्क्य की स्त्री मैत्रेयी ब्रह्मविद् थी तथा अपने पति के साथ दार्शनिक सिद्धान्तों की चर्चा करती थी। इस बात का भी उल्लेख पाया जाता है कि यदि किसी को विदुषी पुत्री उत्पन्न करने की इच्छा हो तो उसे क्या करना चाहिए।"

भारतवर्ष में यह शिक्षा-प्रणाली बहुत दिनों तक प्रचलित रही। भारतीय सभ्यता में अनेक उलट-फेर हुए। आर्य-धर्म में विकृति उत्पन्न होने पर बौद्ध-धर्म का उदय हुआ। बौद्ध-धर्म के पराभव के बाद पौराणिक सम्प्रदायों ने ज़ोर पकड़ा। पौराणिक सम्प्रदायों के पारस्परिक कलह के कारण जब उनकी शक्ति का ह्रास हुआ, तब देश में भक्तिवाद का प्रचार हुआ। पर इतने परिवर्तनों के होते हुए भी शिक्षा-प्रणाली ज्यों की त्यों बनी रही। उसके स्वरूप में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। इसका कारण था; भारतीय सभ्यता में जितने भी परिवर्तन हुए, वे सभी बाह्य परिवर्तन थे। भारतवर्ष

की संस्कृति में कोई तात्त्विक या मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ। वैदिक युग में भारतवासियों ने अपने जीवन का जो आदर्श निश्चित किया थ ही आदर्श हज़ारों वर्षों के बाद आज बीसवीं शताब्दी में भी बना आ है। उपनिषदों ने जिस त्याग की शिक्षा दी, उसी । प्रचार बुद्ध ने किया। बुद्ध ने जिस निर्वाण का आदर्श उपस्थित किया, उसी की रक्षा करने के लिए शङ्कराचार्य का अवतार हुआ। बुद्ध और शङ्कर दोनों ही त्याग के आदर्श के उपासक थे। नानक और कबीर ने उसी त्याग का गुणगान किया और उसी त्याग की एक कला प्राप्त करके महात्मा गाँधी आधुनिक संसार के सर्वश्रेष्ठ पुरुष के पद पर आरूढ़ हो गए हैं। शताब्दियों पर शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं, पर भारतवर्ष ने त्याग के आदर्श का त्याग नहीं किया। यही कारण है कि भारतीय रङ्गमञ्च पर अनेक धर्मों और साम्राज्यों के उत्कर्ष और विनाश की यवनिकाओं के उत्थित और पतित होते हुए भी शिक्षा-प्रणाली अपने रूप में ज्यों की त्यों बनी रही।

मुस्लिम-काल में भारतीय शिक्षा को कुछ क्षति अवश्य पहुँची; पर वह क्षणिक थी। मुसलमान विजेताओं ने आरम्भ में हिन्दुओं की सार्वजनिक संस्थाओं पर भी आक्रमण किए; हिन्दुओं के मन्दिर तोड़े गए, उनके विद्यालय नष्ट किए गए और उनके पुस्तकालय जलाए गए। सरकार की ओर से फ़ारसी और उर्दू के मदरसे खोले गए और संस्कृत तथा हिन्दुस्तानी पाठशालाओं को मिलने वाली सरकारी सहायता बन्द की गई। पर ये अत्याचार थोड़ी देरी के लिए थे। और इन्होंने सोई हुई हिन्दू-जाति को जगाने में बहुत बड़ा काम किया। इधर हिन्दुओं की मोह-निद्रा भङ्ग हुई और उधर मुस्लिम-सम्राटों के राज्य की नींव के दृढ़ होते ही उनके राज्य में शान्ति का विस्तार हुआ। मुग़ल-बादशाहों के राज्यकाल में भारतीय सभ्यता में पुनरुज्जीवन के लक्षण दिखाई पड़े। इस काल में उत्तर भारत में तुलसी और सूर के समान महाकवि उत्पन्न हुए। भारतीय संस्कृति के साथ मुस्लिम-संस्कृति ने मिल कर कला के क्षेत्र में एक नवीन जगत् की सृष्टि की। नानक और कबीर, दादू और पल्टू, मीराबाई और मलूकदास, तुकाराम और नामदेव ने भारतवर्ष की आत्मा को हिन्दू-मुस्लिम कलह से मुक्त करके उसे पुनः आध्यात्मिक शान्ति के राज्य में पहुँचाने का आयोजन किया। इन महापुरुषों के महान उद्योग का पौधा फूलने और फलने ही वाला था कि भारत की राष्ट्रीयता को एक महा भयङ्कर व्याधि ने ग्रस लिया। जिस समय भारत की नवीन शक्तियाँ मराठा और सिक्ख-साम्राज्यों के रूप में आत्म-प्रकाश का मार्ग ढूँढ़ रही थीं, उसी समय भारतवर्ष पर अङ्गरेज़ों का अधिकार हुआ और उक्त दोनों शक्तियाँ अपने शैशवकाल में ही निर्जीव होगईं! छै शताब्दियों तक मुस्लिम सल्तनत के अधीन रहने पर भी भारतवर्ष गुलामी के पञ्जे में नहीं फँसा था, पर जिस दिन भारत में अङ्गरेज़ी शासन का सूत्रपात हुआ उसी दिन हुआ भारतीय स्वतन्त्रता के अपहरण की क्रिया का आरम्भ; और उसी दिन आरम्भ हुआ भारत के व्यापार, भारत के उद्योग-धन्धे, भारत की समृद्धि, भारतीय सभ्यता और भारतीय शिक्षा के सर्वनाश का क्रमबद्ध उद्योग!

अगले अङ्क में हम यह दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि हमारे श्वेताङ्ग महाप्रभुओं के द्वारा किस प्रकार हृदय-हीन, निन्दनीय और क्रूर उपायों से भारत की आदर्श शिक्षा-प्रणाली का सर्वनाश किया गया।

आराधना

[रचयिता—श्री० सोहनलाल जी द्विवेदी]

दिवस में भी करके दृग बन्द, निरखता प्रियतम का श्रृङ्गार।
खोलता पलक इसलिए नहीं, कहीं हट जाय न प्राणाधार॥

उद्धार

[ले० श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

"बाबू जी, दो रुपए दे देते तो बड़ी दया होती।"

बाबू जी ने भृकुटी चढ़ा कर कहा—क्या करेगा दो रुपए—आठ दिन बाद तो तनख़्वाह ही मिलेगी।

"बाबू जी, कल सलोनों है, साल भर का त्योहार है—ख़र्च की ज़रूरत पड़ेगी।"

"तुम तो ब्राह्मण हो महाराज! तुम्हारा कल पैदा का दिन है कि ख़र्च का? ख़र्च का दिन तो हमारा है, पचीस-तीस के मत्थे जायगी—सलोनों आती है कि आफ़त। आगे जन्माष्टमी है। फिर दशहरा, फिर दीवाली। नाक में दम है। न जाने हिन्दुओं में इतने त्योहार किस अहमक़ ने बनाए!"

ब्राह्मण देवता बाबू जी की बातों पर ध्यान न देकर बोले—अरे बाबू जी, पैदा कहाँ! जो कुछ आप दे देंगे वही पैदा है। दो-एक जगह से चार-छः आने और मिल जायँगे। और यह तो कहीं शाम तक मिलेंगे—ख़र्च की ज़रूरत तो सवेरे से ही पड़ेगी।

"तो दो रुपए ख़र्च काहे में करोगे?"

"एक रुपया तो घर-गिरस्ती में लग जायगा। सिवइयाँ बनेंगी—दूध आवेगा, सक्कर (शकर) आवेगी। और एक रुपया बहिन को देना पड़ेगा—वह कल राखी बाँधेगी।"

बाबू जी नाक पर से ऐनक उतार कर उसे धोती के छोर से पोंछते हुए बोले—बहिन? तुम्हारे कोई बहिन भी है क्या?

"हाँ, एक विधवा बहिन है। पारसाल विधवा हुई थी। दो महीने हुए उसकी ससुराल वालों ने यहाँ भेज दिया। अब वह यहीं रहेगी। ससुराल वाले अपने यहाँ रखने को राज़ी नहीं। यह ख़र्चा और बढ़ गया—ग़रीबी में आटा गीला। आपके यहाँ से पन्द्रह रुपए महीना मिलता है। उसमें हम चार प्राणियों का गुज़र ही कठिनता से होता था—अब यह बहिन और बढ़ गई। जब से यह आई तब से बड़ी तङ्गी रहने लगी है।"

बाबू जी पुनः ऐनक चढ़ाते हुए बोले—तो तुम उसे अपने यहाँ क्यों रखते हो, उसकी ससुराल क्यों नहीं भेज देते?

"जब वह अपने यहाँ रखने पर राज़ी ही नहीं होते तो कैसे भेज दूँ!"

"कोई बाल-बच्चा नहीं है क्या?"

"उँ-हूँ!" महाराज ने सिर हिलाकर उत्तर दिया।

"तभी! बाल-बच्चा होता तो ज़रूर रखते।"

"तब तो झख मार कर रखना पड़ता।"

"तो उनसे उसके गुज़ारे के लिए कुछ महीना लेओ।"

"बाबू जी की बातें—कौन ससुरा महीना देता है?"

"तो उसका विधवा-विवाह क्यों नहीं कर देते—अब तो विधवा-विवाह होने लगे हैं।"

महाराज नेत्र विस्फारित करके बोले—अरे बाबू जी, ऐसा कहीं हो सकता है?"

"क्यों? हो क्यों नहीं सकता?

"नाम भी ले लूँ तो भाई-बिरादरी वाले लोटा भर पानी भी देना बन्द कर दें। हमारे यहाँ ऐसा काम कभी हुआ नहीं।"

"अरे यह सब कहने की बातें हैं।"

"कहने की बात नहीं बाबू जी, बिल्कुल सच बात है। हम लोगों में अभी विधवा-विवाह चालू नहीं हुआ है।"

"चालू कैसे हो? कोई साहस करके आगे बढ़े तो चालू हो।"

"साहस कोई बड़ा आदमी ही कर सकता है। हम ग़रीब आदमी ऐसा साहस करें तो नक्कू बन जायँ।"

"तो उसका गुज़र कैसे चलेगा?"

"क्या बतावें, भगवान् जाने आजकल ऐसी तङ्गी है कि क्या कहें।"

"अच्छा एक काम करो।"

"बताइए!"

"उसे विधवा-आश्रम में दाख़िल करा दो।"

"वहाँ क्या होता है?"

"वहाँ विधवाओं को बड़े आराम से रक्खा जाता है। उन्हें सीना-पिरोना सिखाया जाता है और खाना-कपड़ा दिया जाता है।"

"अच्छा!"

"हाँ, जब वह इस योग्य हो जाती हैं कि कुछ काम करके स्वयम् अपने लिए कुछ पैदा कर सकें तो उनसे काम लिया जाता है।"

"हाँ, सुना मैंने भी था; पर ठीक हाल मालूम नहीं था—यदि ऐसा हो तो बड़ा अच्छा है। परन्तु कोई खटके की बात न हो।"

"खटके की बात कुछ नहीं है। वहाँ सब तरह की हिफ़ाज़त रहती है। बाहर का कोई आदमी जाने नहीं पाता। औरतें ही औरतें रहती हैं। सब मिल-जुल कर पढ़ती-लिखती हैं। काम सीखती हैं। विधवा-आश्रम केवल विधवाओं के उपकार के लिए खोला गया है।"

"उसका ख़र्च कहाँ से चलता है?"

"कुछ तो दान और चन्दे से चलता है और कुछ स्त्रियाँ स्वयम् जो काम करती हैं उसकी आमदनी से।"

"ऐसा है तब तो बड़ा अच्छा है।"

"ऐसा ही है। तुम उसमें अपनी बहिन को भर्ती करा दो। वहाँ बड़े आराम से रहेगी और सिलाई-विलाई का काम सीखकर चार पैसे कमाने के लायक़ हो जायगी।"

"तो बाबू जी, मैं तो जानता नहीं कि कैसे क्या होता है।"

"उसका सब प्रबन्ध हम कर देंगे। विधवा-आश्रम के मैनेजर हमारे मिलने वाले हैं। हम उनसे कह देंगे तो सब ठीक हो जायगा।"

"अच्छी बात है, बहिन से पूछूँगा, जो वह राज़ी होगी तो भर्ती करा दूँगा।"

"राज़ी कैसे नहीं होगी, आख़िर तुम उसका पालन-पोषण कहाँ से करोगे?"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ बाबू जी, दो-चार महीने की बात होती तो झेल ले जाता, परन्तु सदा के लिए इतना बोझा नहीं उठाया जा सकता।"

"बिल्कुल ठीक बात है। तुम पन्द्रह रुपए में क्या-क्या करोगे। इसीलिए तो कहता हूँ कि उसे विधवा-आश्रम में भेज दो। वह चाहे राज़ी हो, चाहे नाराज़। पहले चाहे नाराज़ भी हो; परन्तु जहाँ दो-चार दिन वहाँ रही और वहाँ उसका जी लग गया, फिर वह तुम्हें आशीर्वाद देगी। वहाँ के जैसा आराम उसे तुम्हारे यहाँ कहाँ मिल सकता है? खाने का आराम, कपड़े का आराम, खेलने-कूदने को दस हमजोलियाँ। इससे अधिक और क्या चाहिए?"

"अच्छी बात है, बाबू जी, मैं ज़रूर उसे वहाँ भर्ती करा दूँगा।"

"तो जब इच्छा हो मुझसे कहना, मैं सब प्रबन्ध कर दूँगा।" यह कहकर बाबू जी उठकर कमरे के भीतर जाने लगे। ब्राह्मण देवता दाँत निकाल कर बोले—बाबू जी, रुपए मिल जाते तो बड़ी दया होती।

"ओहो! रुपए देना तो भूल ही गया।"—इतना कहकर बाबू जी ठिठक गए। उन्होंने टेंट में से दो रुपए निकाल कर महाराज के हाथ पर धर दिए और भीतर चले गए। महाराज रुपयों को उँगलियों से बजाते हुए दूसरी ओर चले।

२

यज्ञदत्त एक ग़रीब ब्राह्मण हैं। उनके परिवार में इस समय पाँच प्राणी हैं। एक तो वह स्वयम्, उनकी पत्नी, वृद्धा माता, एक अष्ट वर्षीय पुत्र, तथा एक उन्नीस-बीस वर्ष की विधवा भगिनी है। यज्ञदत्त बाबू परमेश्वरी-दास वकील के यहाँ पन्द्रह रुपए मासिक वेतन पर नौकरी करते हैं—बस यही उनकी जीविका है।

श्रावणी के दो दिन पश्चात् रात में यज्ञदत्त अपनी पत्नी से बोले—क्या कहें, रामदेई के आ जाने से एक आदमी का ख़र्च बढ़ गया।

पत्नी बोली—सो तो बढ़ ही गया है। उसकी ससुराल वाले निगोड़े तो अब उसे बुलावेंगे नहीं।

"वह तो साफ़-साफ़ कह गए हैं कि अब नहीं बुलावेंगे।"

"काहे को बुलावेंगे—अब उन्हें कौन गरज है।"

"एक सलाह बताओ।"

"पूछो!"

"रामदेई को विधवा-आश्रम में भर्ती करा दें तो कैसा?"

"वहाँ क्या होता है?"

यज्ञदत्त ने जो कुछ वकील साहब से सुना था वह सब बता दिया। सब सुनकर उनकी पत्नी बोली—ऐसा हो तब तो बड़ा अच्छा है।"

"ऐसा ही है।"

"यह तो बड़ा पुन्न का काम होता है।"

"आजकल लोग विधवाओं के उद्धार का बड़ा ध्यान रखते हैं। इसीलिए ये विधवा-आश्रम खोले गए हैं।"

"तो रामदेई को वहीं भेज दो। वहाँ रहेगी और कुछ काम-काज सीख जायगी।"

"यही तो मैं भी सोचता हूँ। वहाँ रहकर सिलाई-बिलाई का काम सीख गई तो फिर किसी की मोहताज तो न रहेगी।"

"ठीक है।"

"अच्छी बात है, तुमने सलाह दे दी। अब मैं उसे भेज दूँगा।"

"माता जी से भी सलाह ले लो।"

"वह तो यही कह देंगी कि तुम जो ठीक समझो, करो।"

"हाँ, कह तो यही देंगी।"

"तो फिर सलाह लेने की कौन ज़रूरत है?"

"आख़िर उन्हें सूचना तो देनी ही पड़ेगी।"

"हाँ, सो वह सब हो जायगा। अलबत्ता रामदेई से पूछना पड़ेगा कि वह जाने पर राज़ी है या नहीं?"

"उस बेचारी को क्या? जहाँ भेज देओगे, चली जायगी।"

यज्ञदत्त एक दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोले—क्या कहें, बेचारी पर ऐसी गाज गिरी। भगवान् ही को यह मन्ज़ूर था।

"हाँ और क्या, यह तो बनी-बनाई बात है।"

"सवेरे रामदेई से पूछ कर देख लेना कि वह क्या कहती है।"

"अच्छी बात है।"

दूसरे दिन यज्ञदत्त ने वकील साहब से कहा—बाबू जी, आपने मेरी बहिन को विधवा-आश्रम भिजवाने के लिए कहा था।

वकील साहब बोले—हाँ, हाँ।

"तो फिर अब उसका इन्तज़ाम करा दीजिए।"

"तुम्हारी बहिन राज़ी हो गई?"

"राज़ी न होगी तो करेगी क्या? यहाँ खाने का ठिकाना भी तो नहीं है।"

वकील साहब ने एक पत्र लिख कर यज्ञदत्त को दिया और कहा—यह पत्र ले जाओ, मैनेजर को दे देना।

"वह कहाँ रहते हैं?"

वकील साहब ने पता बता दिया। यज्ञदत्त पत्र लेकर मैनेजर के पास पहुँचा। एक छोटे से कमरे में एक मेज़ लगी थी—मेज़ के चारों ओर चार-पाँच कुर्सियाँ धरी थीं।

मैनेजर साहब अर्द्धवयस्क आदमी थे। नीचे से ऊपर तक खद्दर धारण किए हुए गम्भीरता की मूर्ति बने बैठे थे। यज्ञदत्त ने उन्हें सलाम करके पत्र दिया। मैनेजर साहब ने पत्र पढ़ा। पढ़कर यज्ञदत्त से बोले—तुम्हारी बहिन है?

यज्ञदत्त दीन-भाव से बोला—हाँ सरकार!

"उम्र क्या होगी?"

"यही कोई उन्नीस-बीस बरस की है।"

"हूँ। कुछ सिलाई-बिलाई का काम भी जानती है?"

"सो तो नहीं जानती। वकील साहब कहते थे कि आपके यहाँ सब सिखाया जाता है।"

"हाँ सिखाया जाता है। मैंने इसलिए पूछा कि यदि सीखी-सिखाई होती तो आश्रम को कुछ सहायता मिलती।"

यज्ञदत्त दाँत निकाल कर बोला—अजी इस योग्य वह कहाँ है।

मैनेजर ने कहा—अच्छी बात है। हम उसे विधवा-आश्रम में ले लेंगे।

"तो मैं उसे कब लाऊँ?"

"जब तुम्हारी इच्छा हो।"

"तो कल किसी समय ले आऊँगा।"

"कल ले आओ चाहे आज ले आओ।"

"आज शाम को ले आऊँ ?"

"आज ही ले आओ।"

"अच्छी बात है, आज ही ले आऊँगा।"

शाम को यज्ञदत्त अपनी भगिनी को साथ लेकर मैनेजर के पास पहुँचे। मैनेजर ने एक बार रामदेई को सिर से पैर तक देखा। रामदेई रूपवती थी। मैनेजर के मुख पर सन्तोष तथा प्रसन्नता के चिन्ह प्रस्फुटित हुए। परन्तु दूसरे ही क्षण वह पुनः गम्भीर हो गया। उसने पहले तो एक छपा हुआ फ़ार्म उठाकर उसमें रामदेई का नाम, पिता का नाम इत्यादि अनेक बातें यज्ञदत्त से पूछ-पूछ कर लिखीं, तत्पश्चात् यज्ञदत्त से उस पर हस्ताक्षर कराए। इसके उपरान्त उसने मेज़ पर रक्खी हुई घण्टी बजाई। कमरे की बग़ल में एक द्वार था। उस द्वार से एक अर्द्धवयस्क स्त्री निकल कर कमरे में आई। यह स्त्री भी खद्दरधारिणी थी और आँखों पर ऐनक चढ़ाए थी।

मैनेजर ने उससे कहा—"इन्हें ले जाओ।" यह कह कर उसने रामदेई की ओर इशारा किया।

उस स्त्री ने रामदेई की ओर देखकर बड़े स्नेहपूर्वक कहा—आओ बेटी, चलो।

रामदेई यज्ञदत्त को अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखती हुई बोली—भइया, मेरी खोज-खबर लेते रहना, भूल न जाना।

यज्ञदत्त के नेत्रों में भी आँसू आ गए। उसने आँखें पोंछते हुए कहा—हाँ, हाँ, मैं आता रहूँगा।

स्त्री ने बड़े ही मृदुस्वर में कहा—बेटी घबराओ नहीं, यहाँ तुम्हें कोई कष्ट नहीं होगा—बड़े आराम से रहोगी। तुम्हारे भाई जी भी तुमसे मिलते-जुलते रहेंगे।

यज्ञदत्त ने मैनेजर से पूछा—बाबू जी, कभी-कभी यह घर भी जा सकेगी ?

मैनेजर साहब भृकुटी चढ़ाकर बोले—नियम तो यह है कि जो यहाँ एक बार प्रविष्ट हो गई वह जब तक आश्रम को बिल्कुल छोड़ना न चाहे तब तक बाहर नहीं जा सकती। आप लोग यहीं आकर मिल-जुल सकते हैं।

"अच्छा तो मैं यहीं आ जाया करूँगा। मैंने इसलिए पूछा था कि कभी किसी त्योहार पर एकाध दिन के लिए घर हो आती।"

"इसका वादा हम नहीं कर सकते—जैसा मौक़ा होगा। यदि इनका व्यवहार यहाँ अच्छा रहा और हमको इन पर इतमीनान रहा तो इजाज़त दे दी जायगी।"

"अच्छी बात है।"

रामदेई अश्रुपूर्ण नेत्रों से भाई को देखती हुई स्त्री के साथ चली।

हठात् यज्ञदत्त बोल उठा—अरे यह गठरी तो लेती जा।

मैनेजर ने पूछा—इस गठरी में क्या है ?

"इसके कपड़े हैं।"

रामदेई ने गठरी हाथ में ले ली और द्वार के भीतर जाकर अदृश्य होगई।

३

रामदेई के आश्रम में प्रविष्ट होने के दो दिन पश्चात् रात में ६ बजे के लगभग मैनेजर साहब अपने दफ़्तर में बैठे हुए कुछ चिट्ठी-पत्री देख रहे थे। इसी समय एक व्यक्ति दफ़्तर में प्रविष्ट हुआ। उसने मुस्कराते हुए मैनेजर से पूछा—कहिए, क्या हो रहा है ?

मैनेजर साहब हँस कर बोले—आइए, इन्सपेक्टर साहब—मिज़ाज अच्छे हैं ?

"आपकी दुआ है"—कहते हुए इन्सपेक्टर साहब एक कुर्सी पर बैठ गए।

"कहिए कहाँ से आ रहे हो ?"—मैनेजर ने पूछा।

"घर से आ रहा हूँ। खाना खाकर उठा था, जी में आया कि आपकी तरफ़ चलूँ। क्या हाल-चाल है ?"

"अच्छे हाल-चाल हैं।"

"कोई नया पञ्छी आया है ?"

मैनेजर साहब मुस्करा कर बोले—यह तो चमन है, यहाँ पक्षी आते-जाते रहते ही हैं।"

"तो यह बुलबुले-शैदा भी हाज़िर है—इस पर भी नज़रे-इनायत होजाय।"

मैनेजर साहब ने इन्सपेक्टर की आँखों को देखते हुए कहा—इस समय रङ्ग में हो !

"और क्या, अब इस वक़्त भी किसी के बाप का इजारा है ?"

"इस वक़्त क्या, किसी वक़्त भी किसी के बाप का इजारा नहीं है।"

"सो बात नहीं है। ड्यूटी पर तो मैं कभी पीता

नहीं। कोई आला अफ़सर ताड़ जाय तो अमालनामा ख़राब होजाय।"

"ड्यूटी पर पीने की आवश्यकता ही क्या है?"

"यही तो बात है। इसका लुत्फ़ तो इसी वक्त है। इस वक्त कोई खटका नहीं, फ़िक्र नहीं।"

"इसमें क्या सन्देह है।"

थोड़ी देर तक दोनों चुप बैठे रहे। हठात् इन्सपेक्टर साहब बोल उठे—तो फिर क्या हुक्म है—कुछ इनायत होगी?

"आप भी क्या बातें करते हैं! इनायत आपकी या हमारी?"

"इस वक्त तो आपकी ही इनायत होनी चाहिए।"

"अभी तो आप चले ही आ रहे हैं, ज़रा देर दम ले लीजिए।"

"उम्मीद दिलाओ तो जितनी देर कहो दम ले लूँ। और अगर ख़ाली दम ही देते हो तो सलाम—बन्दा रुख़सत होता है।"

मैनेजर साहब हँसकर बोले—क्या कही है?

"मैंने तो जो कहना था सब कह दिया, अब आप कहिए क्या कहते हैं?"

"अरे यार बैठो भी—तुम तो घोड़े पर सवार होकर आए हो।"

"ख़ैर, अब बैठूँगा—आपकी निगाहों में मेरी उम्मीद पूरी होने की अदा दिखाई पड़ रही है।"

"अच्छा बैठो, अभी आता हूँ।"—यह कहकर मैनेजर साहब भीतर पहुँचे। एक कमरे में वही खद्दर-धारिणी स्त्री बैठी हुई थी, उसके हाथ में एक पुस्तक थी। पुस्तक को वह उच्च स्वर में पढ़ रही थी। उसके पास रामदेई तथा अन्य दो युवतियाँ बैठी हुई थीं।

मैनेजर ने उसे अलग बुलाकर कहा—वह हरामज़ादा इन्सपेक्टर आया है। शराब पिए हुए है।

"तो फिर?"—स्त्री ने सशङ्कित होकर पूछा।

"रामदेई को छिपा दो—उस पर उसकी नज़र पड़ गई तो ठीक न होगा। और कल जो दो औरतें आई हैं, उन्हें भी छिपा दो।"

"और?"

"अब और क्या—बाक़ी को रहने दो। वे सब तो राह पर लग गई हैं।" इतना कहकर मैनेजर साहब दफ़्तर में लौट आए। इन्सपेक्टर साहब बोले—कहो दोस्त, क्या ख़बर लाए? यार अच्छी ख़बर सुनाना, कहीं कोई मनहूस बात न बक उठना।

मैनेजर साहब मुस्कराते हुए बोले—ठहरिए, ज़रा छुरी तले दम लीजिए।

"हाँ, मगर गले पर छुरी न फेर देना।"

थोड़ी देर तक इन्सपेक्टर साहब और मैनेजर साहब में इसी प्रकार की बातें होती रहीं। इसके पश्चात् मैनेजर साहब उठे और इन्सपेक्टर से बोले—चलिए, भीतर चलें।

इन्सपेक्टर प्रसन्न-मुख होकर उठ खड़ा हुआ।

४

"शाम के पाँच बज चुके थे। इसी समय एक व्यक्ति मैनेजर के पास आया। मैनेजर ने उसे देखते ही पूछा—कहो क्या समाचार हैं?

वह व्यक्ति बोला—एक आदमी एक स्त्री ख़रीदना चाहता है।

"कौन है, कहाँ का रहने वाला है?"

"इधर पञ्जाब की तरफ़ का है।"

"सो तो होगा ही—पञ्जाब तो स्त्रियों का बाज़ार ही है।"

"तो हुक्म हो तो उसे लाऊँ।"

"हाँ-हाँ, ले आओ।"

वह व्यक्ति चला गया और आध घण्टा पश्चात् एक पञ्जाबी को साथ लिए हुए लौटा। मैनेजर ने पहले उससे शिष्टाचार की बातें करके पूछा—कहिए, क्या हुक्म है?

पञ्जाबी ने कहा—एक औरत चाहिए—जवान हो और सूरत-शक्ल की अच्छी हो।

मैनेजर ने कहा—आप देख लीजिए—जो आपको पसन्द हो, वह ले लीजिए।

"अच्छा दिखाइए।"

"दिखाने की फ़ीस तो आपको मालूम होगी?"

वह व्यक्ति, जो पञ्जाबी को लाया था, बोल उठा—मैंने इनसे कह दिया था कि दिखाने की फ़ीस एक रुपया लगती है।

पञ्जाबी ने जेब से एक रुपया निकाल कर मैनेजर के सामने रख दिया। मैनेजर ने कहा—माफ़ कीजिएगा,

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई स्कूल तथा इन्टरमीजिट कॉलेज के सङ्गीत-क्लास की कुछ छात्राएँ

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

दुबे जी की चिट्ठियाँ

[ले० पं० विजयानन्द (दुबे जी)]

दुबे जी की चुटीली चिट्ठियों ने हिन्दी-संसार तथा सामाजिक क्षेत्र में एक बार ही क्रान्ति मचा दी है। हास्य-रस के प्रधान लेखकों की आलोचना करते हुए प्रसिद्ध राष्ट्रीय पत्र 'कर्मवीर' ने लिखा है :—

श्री० विजयानन्द दुबे के सामाजिक विनोद बहुत चुटीले और शिष्ट हुआ करते हैं!

'चाँद' के पाठकों से इन विनोदपूर्ण, किन्तु मर्मभेदी कटाक्षों के सम्बन्ध में विशेष कहना व्यर्थ है। इस पुस्तक में लगभग १५ चिट्ठियाँ तो ऐसी हैं, जो 'चाँद' में प्रकाशित हो चुकी हैं, तथा १५ ऐसी चुटीली चिट्ठियाँ भी हैं, जो 'चाँद' में प्रकाशित नहीं हुई हैं। पुस्तक की पृष्ठ-संख्या लगभग ५०० तथा सजिल्द पुस्तक का मूल्य लगभग ४) रु० होगा, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, ऊपर सुन्दर प्रोटेक्टिङ्ग कवर भी होगा। प्रत्येक चिट्ठी में समाज के एक पहलू पर विचार किया गया है—पत्र इतने विनोदपूर्ण हैं कि हँसते-हँसते आप दोहरे हो जायँगे। भोजन के बाद रात्रि में ऐसी पुस्तकें पढ़ना स्वास्थ्य एवं मस्तिष्क—दोनों के लिए बहुत लाभदायक सिद्ध हुआ है!

विनोद और शिक्षा

का इतना सुन्दर समावेश आपको किसी पुस्तक में नहीं मिल सकता, इसे स्मरण रखिए!

☞ व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, चन्द्रलोक, इलाहाबाद

यह क़ायदा इसलिए रक्खा गया है कि बहुत से आदमी सिर्फ़ औरतें देखने के लिए आते हैं और कहते यह हैं कि हमें विवाह करना है—वह करना है, यह करना है।

पञ्जाबी बोल उठा—ठीक है, ऐसा क़ायदा होना ही चाहिए।

मैनेजर पञ्जाबी को भीतर एक कमरे में ले गया। पञ्जाबी को कमरे में बैठाकर मैनेजर थोड़ी देर के लिए एक ओर चला गया और फिर लौट आया। लगभग पन्द्रह मिनिट के पश्चात् वही खद्दरधारिणी स्त्री छः-सात युवतियों को साथ में लिए हुए उस कमरे में आई। युवतियाँ सब क़तार बाँध कर खड़ी हो गईं। पञ्जाबी ने सबको ध्यानपूर्वक देखा। देखकर उसने एक युवती की ओर उँगली उठाई। मैनेजर ने कहा—"अच्छा, अब दफ़्तर में चलिए!" दोनों दफ़्तर में आ गए। मैनेजर ने कहा—अब बताइए, आप क्या देंगे?

पञ्जाबी बोला—आप बताइए, आपका माल है।

मैनेजर कुछ क्षणों तक सोचकर बोला—तीन सौ रुपए होंगे और पचीस रुपए दान के।

"तीन सौ रुपए बहुत हैं—और यह दान के पचीस कैसे?"

"बात यह है कि हम अपने रजिस्टर में यह दिखाएँगे कि उसका विवाह कर दिया गया और विवाह में आश्रम को पचीस रुपए दान-स्वरूप मिले।"

पञ्जाबी मुस्करा कर बोला—अच्छा, यह बात है?

"और क्या, ऐसा न करें तो भण्डाफोड़ न हो जाय।"

"मैं समझ गया। ख़ैर, वह पचीस तो मैं दे दूँगा—मगर तीन सौ बहुत हैं।"

"आप बताइए आप क्या देंगे?"

"मैं तो डेढ़ सौ दूँगा।"

"डेढ़ सौ में तो नहीं होगा।"

इसी प्रकार दोनों में बड़ी देर तक बातचीत होती रही। अन्त में दो सौ पर मामला तय हुआ।

मैनेजर ने कहा—अच्छा, आप रात में आकर ले जाइएगा—रुपए लेते आइएगा।

पञ्जाबी स्वीकार करके चला गया।

पञ्जाबी के चले जाने के पश्चात् वह व्यक्ति, जो पञ्जाबी को साथ लाया था, बोला—लाइए, मेरा कमीशन दिलवाइए।

"पहले रुपए तो मिल जाने दो।"

"वह तो मिल ही जायँगे।"

"यह बात ग़लत है। जब रुपए हमारे हाथ में आ जायँ और वह औरत सकुशल चली जाय तब ले लेना।"

"अच्छी बात है—तभी सही।"

मैनेजर ने कहा—इधर तुम कोई औरत नहीं लाए।

"तलाश में हूँ, मिल गई तो ले आऊँगा।"

"स्टेशन पर जाया करो, वहाँ बहुधा भूली-भटकी आ जाती हैं। अच्छा जाओ, कल मिलना।"

उस व्यक्ति को विदा करके मैनेजर भीतर पहुँचा और अपनी परिचारिका से बोला—उसे तैयार रखना।

"वह तो अभी से तैयार बैठी है।"

"तब ठीक है। हाँ, वह रामदेई रास्ते पर आई कि नहीं?"

"अभी तो नहीं आई। कल मैंने उससे पूछा था कि यदि तुम विवाह करना चाहो तो तुम्हारा विवाह करा दें, पर वह राज़ी नहीं होती। जान पड़ता है अपने भाई के भय से राज़ी नहीं होती।"

"यदि वह राज़ी हो जाय तो अच्छी रक़म मिले।"

"हाँ, यह बात तो पक्की है।"

"चेष्टा किए जाओ।"

"सो तो कर रही हूँ।"

"अभी वह 'पास' तक तो हुई नहीं।"

"पास हो जाय तब तो सब काम ही न बन जाय।"

"वैसे तो वह ज़बरदस्ती पास हो जाती, परन्तु वह इसी शहर की रहने वाली है—उसका भाई उससे मिलने-जुलने आता रहेगा, और वह वकील साहब की मार्फ़त आई है—यही खटके की बात है।"

"हाँ और क्या। परन्तु यदि राह पर न आई तो?"

"तो दो-एक महीने में कोई तोहमत लगाकर निकाल बाहर करेंगे। यहाँ मुफ़्त की रोटियाँ तोड़ने के लिए थोड़े ही रक्खी हैं। परन्तु राह पर आवेगी क्यों नहीं? अपनी दो-एक चेलियों को लगा दो, वे उसे पढ़ा-पढ़ा कर ठीक करें।"

"सो तो कर रही हूँ। दो चेलियों को उसके साथ कर दिया है। वह उसी के पास रहती हैं। रात में भी उसी के कमरे में सोती हैं।"

"तो बस ठीक है!"

५

रात के दस बज चुके हैं। रामदेई अपने कमरे में चारपाई पर लेटी है। उसके पास ही दूसरी चारपाई पर एक अन्य स्त्री लेटी है। दोनों में परस्पर वार्त्तालाप हो रहा है। दूसरी स्त्री रामदेई से कह रही है—बहिन, तुम यहाँ नाहक़ आईं। जब तुम्हारा भाई मौजूद है, तब तुम्हें यहाँ आने की क्या ज़रूरत थी?

रामदेई ने कहा—यहाँ काम सीखने आई थी।

"यहाँ काम सीखोगी? यहाँ जो काम सिखाया जाता है वह तुम कर सकोगी?"

"यहाँ ऐसा कौन काम सिखाया जाता है जिसे मैं न कर सकूँगी?"

"यहाँ! बताऊँ? यहाँ सिखाया जाता है व्यभिचार, दग़ाबाज़ी। यह जो भगवती है न—यह तीन दफ़े बेची जा चुकी है। जहाँ जाती है वहाँ से महीने दो महीने पश्चात् भाग आती है। इस प्रकार यह तीन दफ़े बेची जा चुकी है और तीनों दफ़े भाग आई है। इसी वास्ते इसका इतना मान है।"

"जब ऐसी बात है तो तुम यहाँ क्यों रहती हो?"

"रहूँ न तो जाऊँ कहाँ? कहीं ठिकाना भी है। तुम्हारा ठिकाना है इससे तुमसे कहती हूँ। मेरा कहीं ठिकाना हो तो मैं एक छिन भी यहाँ न रहूँ। यहाँ सब कर्म होते हैं। पुलिस वाले यहाँ आते हैं; मैनेजर के दोस्त लोग अलग आते हैं, और जो लोग मैनेजर को रुपए दे सकते हैं वे अलग आते हैं।"

"तो आते हैं तो क्या हुआ?"—रामदेई ने भोलेपन के साथ कहा।

वह स्त्री हँसकर बोली—तुम इतनी भोली हो! यहाँ वे आते हैं बुरा काम करने के लिए।

"अच्छा!"

"हाँ! दो-तीन आदमी और दो-तीन स्त्रियाँ ऐसी हैं जो इधर-उधर से स्त्रियों को बहका कर लाती हैं। यहाँ आने पर पहले उन्हें पास किया जाता है, फिर गाहक लगने पर बेंच दिया जाता है और कहा यह जाता है कि ब्याह कर दिया गया।"

"पास करना किसे कहते हैं?"

"जो स्त्री पर-पुरुष से व्यभिचार करने पर राज़ी हो जाती है वह स्त्री पास हो जाती है, फिर उसकी ओर से कोई खटका नहीं रहता।"

रामदेई ने अत्यन्त भयभीत होकर कहा—क्या यह बात है?

"हाँ, यह बात है। मुझे तुमसे प्रेम हो गया है इससे ये बातें बताती हूँ। जो मैनेजर या देवी जी सुन पावें तो मेरी खाल उड़ा दें।"

"यह देवी जी मैनेजर साहब की कौन हैं?"

"यह उनकी सब कुछ हैं। नाम की देवी जी हैं—नहीं तो इनसे कोई कर्म बचा नहीं है।"

"तब तो यहाँ बड़ा पाप होता है। बाहर वाले तो समझते हैं कि यहाँ बड़ा उपकार का काम होता है।"

"दूर के ढोल सुहावने होते ही हैं, भीतर का हाल कौन जानता है?"

"परन्तु मुझसे तो ये लोग बड़ा अच्छा व्यवहार करते हैं।"

"तुम इसी शहर की हो, तुम्हारा भाई है। इससे डरते हैं कि कहीं भेद न खुल जाय। तुमसे जो कराया जायगा, तुम्हारी राज़ी से—तुमसे ज़बरदस्ती कोई काम नहीं करा सकते।"

"तो क्या ज़बरदस्ती भी की जाती है?"

"ज़बरदस्ती! लावारिस औरतों को यहाँ बेतों से मार-मार कर ठीक किया जाता है।"

"हे भगवान्!"—रामदेई ने काँप कर कहा।

"यह जो भगवती है न, जब यह आई थी तो पहले इसने भी बड़े नख़रे किए थे, परन्तु जब इसपर मार पड़ने लगी तब ठीक हो गई और अब तो यह यहाँ की मुखिया सी बनी बैठी है। नई औरतें जो आती हैं उन्हें यही ठीक करती है।"

"और तुम? तुम अपना हाल तो कहो!"

उसने एक दीर्घ-निश्वास छोड़कर कहा—मैं भी वैसी ही हूँ। मुझ पर भी सब बीत चुकी है। अब मैं भी पक्की हो गई। मैनेजर और देवी जी का मुझपर बड़ा विश्वास है। भगवती और मैं तुम्हें ठीक करने पर तैनात की गई हैं।"

"अच्छा!"

"हाँ, इसीलिए तो हम तुम्हारे कमरे में रक्खी गई हैं।"

"ओ हो, अब मैं समझी—तभी भगवती मुझे विवाह

करने के लिए कहा करती है। और न जाने किन-किन पुरुषों की तारीफ़ करती रहती है कि वह बड़ा सुन्दर है, बड़ा मालदार है। और भगवान जाने क्या-क्या कहा करती है। जब ऐसी बात है तो तुम्हें यहाँ न रहना चाहिए।"

"रहें न तो जायँ कहाँ? और अब तो बहिन, हमारे सब कर्म हो चुके—अब हमारे लिए तो यहीं स्वर्ग-नरक है।"

"तुम्हें और भगवती को अभी तक क्यों नहीं बेचा?"

"मैंने बताया न कि भगवती को तीन बेर बेचा, पर वह तीनों बेर भाग कर यहीं आ गई।"

"क्यों?"

"उसको सिखाया यही गया है। इसीलिए तो उसका इतना विश्वास और आदर है।"

"और तुम्हें नहीं बेचा?"

"एक विश्वास की स्त्री यहाँ भी तो चाहिए, इसी लिए नहीं बेचते। मैं तो भगवान् से चाहती हूँ कि मुझे बेच दें—यहाँ से पिण्ड तो छुटे।"

"और यहाँ क्या-क्या होता है?"

"अब सब तो बता चुकी। हाँ, गर्भ यहाँ गिराये जाते हैं। कुछ रुपए देकर यहाँ कोई भी स्त्री आकर गर्भ गिरवा सकती है।"

"राम-राम! यहाँ तो बड़ा पाप होता है। मैं तो बहिन, चाहे भीख माँग खाऊँ; पर यहाँ न रहूँगी।"

इसी समय भगवती आ गई। अतएव उनका वार्त्तालाप समाप्त हो गया।

* * *

रामदेई विधवा-आश्रम से विदा हो रही थी। उसका भाई उससे मिलने आया था। उससे उसने सब वृत्तान्त कहकर आश्रम में रहना अस्वीकार किया। यज्ञदत्त ने भी उसे वहाँ रखना अनुचित समझा।

चलते समय रामदेई शिवदुलारी को, जिसने उसे सब बातें बताई थीं, अलग ले जाकर बोली—बहिन, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया, मैं तुम्हारा यह एहसान जन्म भर न भूलूँगी। और यदि भगवान् ने मुझे कभी इस योग्य बनाया तो मैं तुम्हें यहाँ से निकाल लूँगी।

वह बोली—मुझे भी इस बात की बड़ी ख़ुशी है कि कम से कम एक काम तो मैंने अच्छा किया—मेरे जीवन में केवल एक यही बात ऐसी है जिससे यह आशा होती है कि कदाचित् भगवान् मेरे पापों को क्षमा कर दें।

रामदेई उससे गले मिलकर अश्रुपूर्ण नेत्रों से विदा हुई।

यज्ञदत्त ने वकील साहब से यह सब हाल कहा। वकील साहब बोले—ओफ़ ओह! किसका विश्वास करें। शहर के लोग इस आश्रम को आदर्श समझते हैं। यज्ञदत्त! अब तुम मेरा कहना मानो—अपनी बहिन का विवाह कर दो। इन बातों को जान-बूझ कर भी यदि तुम ऐसा न करो तो बड़े ग़ज़ब की बात है।

"क्या कहूँ बाबू जी, अब मेरी भी यही इच्छा है; परन्तु नाते-रिश्तेदारों से डरता हूँ।"

"व्यर्थ डरते हो, नाते-रिश्तेदार इस समय काम आते हैं। उनमें से कोई ऐसा है जो तुम्हारी बहिन का पालन-पोषण करे?"

"बाबू जी की बातें, कोई बात तक तो पूछता नहीं—पालन-पोषण करना तो बहुत दूर की बात है।"

"तो बस तुम भी उनकी परवा मत करो—अब वह समय नहीं रहा कि यदि वह तुम्हारा बहिष्कार कर देंगे तो तुम्हें कहीं ठिकाना न रहेगा।"

"अच्छी बात है, सोचूँगा।"

छः महीने के पश्चात् वकील साहब के उद्योग से रामदेई का विवाह कर दिया गया। रामदेई ने सबसे पहला कार्य यह किया कि अपने पति से कह कर शिवदुलारी को आश्रम से निकाल लिया। अब वह शिवदुलारी को अपने पास रखकर उसका भरण-पोषण करती है। शिवदुलारी उसका गृहस्थी का सब काम करती है।

रामदेई बहुधा कह उठती है—शिवदुलारी, तेरे कारण मेरा जीवन सुधर गया।

शिवदुलारी उत्तर देती है—बहिन, इसी कारण तो भगवान् ने मेरा भी उद्धार कर दिया—नहीं तो उसी नरक में पड़ी रहती।

वैदिक-यज्ञ

[ले० आचार्य श्री० चतुरसेन जी शास्त्री]

मेरी धारणा है कि राजनैतिक उद्देश्य से वैदिक यज्ञों का आरम्भ हुआ। सबसे प्रथम—जब आर्य लोगों ने भरतखण्ड में अपनी सभ्यता का विस्तार किया था—तब सभ्यता के उन्नत होने के साथ-साथ ही छोटे-छोटे माण्डलिक राज्य बन गए। कुछ सुदृढ़ परिवार अपने आस-पास के मनुष्यों और स्थानों के स्वामी बन बैठे। परन्तु इस प्रकार के माण्डलिक राज्य प्रायः अशान्त और उत्तरदायित्व-शून्य थे एवं सङ्गठन-रहित थे। परस्पर उनकी स्पर्द्धा चलती थी।

तत्कालीन मनस्वी लोगों ने इस सामाजिक सङ्गठन की त्रुटि को समझा और उन्होंने प्रबल मण्डलाधिकारियों को प्रोत्साहित करके अयोग्य और कमज़ोर राज्यों को अपने अधीन बना लेने को धर्म का स्वरूप दिया। राजसूय यज्ञ और अश्वमेध यज्ञों का आरम्भ यहीं से हुआ। राजसूय यज्ञ में राजा आस-पास के यथासम्भव राजाओं पर व्यर्थ ही चढ़ाई करके उन्हें परास्त कर अपने अधीन बनाते, उनसे कर लेते और फिर अपने यज्ञ में बुलवा कर उन पर अपना प्रभुत्व जनता पर प्रकट करते। इन यज्ञों का वास्तव में वही प्रभाव होता था जो अङ्गरेज़ों के उन दरबारों का—जो दिल्ली में लॉर्ड कर्ज़न और सम्राट् जॉर्ज पञ्चम की अध्यक्षता में हुए थे। और जिसमें समस्त राजाओं को अप्रकट रूप से अङ्गरेज़ी साम्राज्य की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी थी। लॉर्ड कर्ज़न का १६ राजाओं से अपना छुग़ा उठवाना भी पिछले राजसूय यज्ञों के पराजित राजाओं की याद दिलाता था।

राजनैतिक सङ्गठन की दृष्टि से ये यज्ञ और अकारण विजय-पराजय आवश्यक थी। और यही कारण था कि प्रतापी राजा लोग बारम्बार ऐसे यज्ञ करते थे। एक तरफ़ इन यज्ञों में जहाँ कमज़ोर राजाओं का सर्वस्व हरण किया जाता था वहाँ ब्राह्मणों और ऋत्विजों को सर्वस्व दान भी किया जाता है। अनेक राजाओं ने सर्वस्व दान करके मृत्पात्र घर में रहने दिए थे। दान का माहात्म्य बहुत चढ़ा-बढ़ा था और ऋषि या ब्राह्मण को दान देने में बर्बाद होने पर भी लोग अपनी बड़ी शेख़ी समझते थे।

इन सबका परिणाम यह हुआ कि यज्ञ कराने वाले और दान लेने वाले ब्राह्मणों का समुदाय दिन-दिन बढ़ता गया। बड़ी-बड़ी आजीविका के धन्धों का सदा प्रचार बढ़ा करता है। यज्ञ कराने का पेशा ब्राह्मणों के लिए सबसे मज़ेदार पेशा बन गया। बड़े-बड़े प्रतापी राजा ग़रीब गाय की तरह आज्ञा मानते, सर्वस्व दान देते, और ईश्वर की तरह पूजते थे। बस, यज्ञ का माहात्म्य बढ़ा। पर जिस तरह एक कम्पनी के सफलता प्राप्त करते ही सैकड़ों नक़ली कम्पनियाँ खुल जाती हैं, वही दशा यज्ञों की हुई। जहाँ साम्राज्य-कामना से बड़े-बड़े यज्ञ होते थे, वहाँ सदेह मुक्ति, सर्पनाश, शत्रुनाश, पुत्रोत्पादन, वर्षा, रोगनाश आदि दुनिया भर के प्रत्येक कामों के लिए यज्ञ होने लगे। ब्राह्मण महाशयों ने यज्ञ को कामधेनु बना दिया। अच्छी दक्षिणा मिलने पर यज्ञ द्वारा प्रत्येक अच्छे-बुरे कर्म कराए जा सकते थे। मेघनाद के और रावण के प्रतिहिंसा-मूलक यज्ञ; जन्मेजय का सर्प-यज्ञ; त्रिशङ्कु का यज्ञ—ये सब इसी प्रकार के यज्ञ थे। धीरे-धीरे इन यज्ञों में पशुवध का प्रसङ्ग चला, और वेदों का संहिता भाग जब इन सब ऊल-जलूल कृत्यों के लिए यथेष्ट नहीं प्रमाणित हुआ, तब इन यज्ञ-पुरोहितों ने वेदों के ब्राह्मण भागों का निर्माण कर लिया।

इस सबका यह परिणाम हुआ कि पवित्र वेदों का ज्ञान, जो मनुष्य की आत्मा को सत्य-मार्ग दिखाता था, लुप्त हो गया। लोगों ने वेदों का मन्त्रार्थ जानना छोड़ दिया। केवल मन्त्रों को कण्ठ रखना, मन्त्रों में शक्ति और चमत्कार समझना, मन्त्रों का पाठ करके यज्ञ का विधि-विधान करा देना, यही कर्म-काण्ड प्रबल हो गया।

ज्ञान प्राप्त करके मुक्ति का मार्ग ढूँढ़ने की अपेक्षा कर्म-काण्ड द्वारा मुक्ति पाने की सरल चेष्टा लोग करने लगे। क्योंकि इस मार्ग में धन-दक्षिणा ख़र्च करने से ही अमीरों और राजाओं को मुक्ति मोक्ष मिलने लगी। ज्ञान-काण्ड में तो योग के अष्टाङ्ग का अभ्यास करना पड़ता था।

जिन दिनों ब्राह्मण-ग्रन्थों की रचना हुई उन दिनों यज्ञों के माहात्म्य का बड़ा भारी ज़ोर था। फिर भी अनेक ऋषि और मनस्वी इस पाखण्ड और हिंसा के अनाचार से अत्यन्त ही नाराज़ थे। और वे विरोध भी करते थे। और एक सम्प्रदाय था जो यज्ञ-कर्म से श्रद्धा-रहित हो गया था।

मुण्डकोपनिषद् १—२०० में कहा गया है।

प्लवाह्येते अद्रृढा यज्ञ रूपा।
अष्टादशोक्तमवयवयेषु कर्म।
एतच्छ्रेयोयेऽभिनन्दन्तिमूढाः
जरांमृत्युंपुनरेवापियान्ति।

अर्थात्—जिनमें निकृष्ट कर्म कहे गए हैं, वे अष्टादश जनयुक्त (१६ ऋत्विक्, १ यजमान, १ यजमान-पत्नि) यज्ञरूप प्लव समूह शिथिल हैं। जो मूढ़ इनको कल्याण-कर समझ कर इनका अभिनन्दन करते हैं, वे पुनर्वार जरा-मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकार यज्ञ की निन्दा-सूचक अन्य भी श्रुतियाँ पाई जाती हैं। इन थोथे आडम्बरमय कर्म-काण्डियों की अवहेलना ऋग्वेद में देखी जाती है। (१०-८२-७)

न तंविदाथ य इमा जजान
अन्यद् युष्माकमन्तरं बभूव।
नीहारेण प्रावृता जल्प्या
असुतृप उक्थशासश्चरन्ति॥

अर्थात्—ये उस सृष्टिकर्त्ता को नहीं जानते, तुमसे इनमें अन्तर है। नीहार द्वारा ये आच्छन्न हैं, केवल उच्चारण करके ही तृप्त होकर विचरण करते हैं।

सांख्य दर्शनकार महर्षि कपिल ने तीव्र उक्तियों द्वारा इस कर्म-पाखण्ड का विरोध किया और केवल ज्ञान को मुक्ति का मार्ग बताया। कपिल ने वेदों ही के आधार पर ज्ञान-काण्ड को सिद्ध किया है।

गीता में (२। ४२, ४३, ४४) में इसी कर्म-काण्ड को लक्ष्य करके वेदों की निन्दा की गई है।

यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्था नान्यदस्तीति वादिनः॥
त्रैगुण्य विषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
व्यायात्मानः स्वर्गपरा जन्म कर्म फलप्रदाम्।
क्रिया विशेष बहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति।

"हे पार्थ! वेदों के मन्त्र-पाठ में भूले हुए और यह कहने वाले मूढ़ व्यक्ति कि इसके सिवाय और कुछ नहीं है, बात बढ़ाकर ऐसा कहते हैं कि तरह-तरह के यज्ञ आदि कर्म करने से फिर जन्मरूपी फल और भोग तथा ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है ....इसलिए हे अर्जुन! वेदों में त्रैगुण्य की बातें भरी पड़ी हैं। तुम गुणातीत हो जाओ।"

श्रीमद्भागवत् में हिंसा वर्जित कर्म-विधि को सात्विकी कहा है।

द्रव्य यज्ञैर्भक्ष्यमाणं द्रृष्ट्वाभूतानि बिभ्यति।
एष मा करुणो हन्यादतज्ञोह्यसुतृप ध्रुवम्॥

यज्ञों का और उसकी पद्धतियों का ऋग्वेद में बहुत ही कम अस्पष्ट ज़िक्र है। यज्ञों का ज़ोर यजुर्वेद के काल में हुआ है। ऋग्वेद की रचना के प्रारम्भिक दिनों में भारतवर्ष में बस्ती बहुत ही कम थी। पीछे कहा गया है कि ऋग्वेद के सूत्रों में केवल पञ्जाब का ही उल्लेख है। उसके आगे के भारतवर्ष का कुछ भी समाचार नहीं है। उसमें सब युद्ध, सामाजिक संस्कारों और यज्ञों के स्थान केवल सिन्ध नदी और सरस्वती के तट हैं।

जिस यजुर्वेद में यज्ञों की परिपाटी का विस्तृत उल्लेख है—बल्कि यों कहना चाहिए कि शुक्ल यजुर्वेद का नामकरण और प्रथक्करण ही यज्ञों के लिए हुआ है—उसमें समाज-शास्त्र का बड़ा ही गहन वर्णन है। इसमें सन्देह ही नहीं कि यजुर्वेद के काल में समाज बहुत-कुछ सुगठित हो गया था, नगर बस गए थे और वर्णों का सङ्गठन हो रहा था। ख़ास कर ब्राह्मण और क्षत्रिय ये दो वर्ण बड़ी तेज़ी से सङ्गठित हो रहे थे।

ऋग्वेद के सूक्त और यजुर्वेद तथा उसके शतपथ आदि ब्राह्मण-ग्रन्थों को गम्भीरतापूर्वक मनन करने से पता चलता है कि यजुर्वेद के काल में आर्य-जीवन

में से वह सादगी और पवित्रता नष्ट हो गई थी। और उन सरल सूक्तों का अर्थ और उद्देश्य लोग भूल गए थे और अब का मुख्य धर्म अग्निहोत्र के प्रातः सायङ्काल के साधारण नित्य-कर्म से लेकर बड़े-बड़े विधान के राजसूय यज्ञों और अश्वमेध यज्ञों तक, जो कई-कई वर्षों में समाप्त होते थे, बन गया था। यज्ञों के नियम, छोटी-छोटी बातों का गुरुत्व, उद्देश्य, और तुच्छ रीतियों के नियम, ये ही अब लोगों के धार्मिक हृदयों में भरे थे। ये ही थोथे विचार अब राजाओं और राजगुरुओं के विचार के विषय थे। और इन्हीं का ब्राह्मणों की अनथक गाथाओं में उल्लेख है।

यह पीछे बताया गया है कि ऋग्वेद में केवल पञ्जाब का ज़िक्र है। परन्तु ब्राह्मणों में आधुनिक दिल्ली के आस-पास के देश में प्रबल कुरुओं का—आजकल के क़न्नौज के निकट में प्रतापी पञ्चालों का, आजकल के उत्तरी प्रान्त में विदेहों का, अवध में कौशलों का और बनारस के निकट काशियों का उल्लेख बारम्बार मिलता है। वास्तव में देखा जाय तो इन्हीं लोगों ने यज्ञ के आडम्बरों और पाखण्डों को इतना बढ़ाया था। इनमें जनक, अजातशत्रु, जन्मेजय और परीक्षित की भाँति प्रतापी और विद्वान् राजा थे। जहाँ ऋग्वेद में सुदास राजा का ज़िक्र आता है, वहीं ब्राह्मणों में हमें इन्हीं राजाओं का बारम्बार हाल मिलता है—मालूम होता है, ब्राह्मणों के काल में प्राचीन पञ्जाब भूला हुआ था—पञ्जाब के किसी भी राजा का ब्राह्मणों में ज़िक्र नहीं है।

यजुर्वेद, जो यज्ञों का मूल स्तम्भ है, उसका नवीन संस्करण जनक के दर्बारी विद्वान् याज्ञवल्क्य वाजसनेय ने किया है। उसी के नाम से शुक्ल यजुर्वेद—वाजसनेयी संहिता कहाती है। ये याज्ञवल्क्य जनक की सभा के प्रधान पुरोहित थे। इन्होंने पुराने क्रम को सुधारने और मन्त्रों को व्याख्या से अलग करने के लिए ही एक नया वाजसनेयी सम्प्रदाय स्थापित किया था। और फल-स्वरूप एक नई संहिता और एक नवीन प्रसिद्ध ब्राह्मण शतपथ का निर्माण हुआ। याज्ञवल्क्य ने यजुर्वेद का जो नवीन संस्करण सम्पादन किया था, वह शायद उनके जीवन-काल में सम्पूर्ण नहीं हुआ था। उसे अनेक मनुष्यों ने बहुत दिन में पूर्ण किया था।

इन मनुष्यों का समुदाय एक सम्प्रदाय का रूप पकड़ गया था और बहुत काल तक वह अपनी भिन्न परिपाटी पर यज्ञ-कार्य करता रहा। इन सब बातों से यह परिणाम निकलता है कि वैदिक यज्ञों का विधान वास्तव में ऋग्वेद के काल का अत्यन्त प्राचीन विधान नहीं—प्रत्युत् उससे बहुत आधुनिक काल का है; जब कि सुदास के युद्धों के बाद कुरु और पाञ्चाल दिल्ली तथा क़न्नौज तक भाग आए थे और प्रबल राज्य बना चुके थे, और काशी तथा विदेहों के तथा कौशलों के राज्य भी विस्तार पा गए थे। ये यज्ञ राजाओं को किस तरह उपाधि दान देते थे—इसका वर्णन ऐतरेय ब्राह्मण के एक वाक्य से देते हैं :—

"तब पूर्व दिशा में विदेहों ने सारे संसार का राज्य पाने लिए ३१ दिन तक इन्हीं तीनों ऋक्, यजु की ऋचाओं और उन गम्भीर शब्दों से, जिनका वर्णन अभी किया जा चुका है, उस इन्द्र का प्रतिष्ठापन किया। इसीलिए पूर्वी जातियों के सब राजाओं को देवताओं के इस आदर्श के अनुसार सारे संसार के महाराजा की भाँति राजतिलक दिया जाता है। और वे सम्राट् कहलाते हैं।"

जब ब्राह्मण लोग क्रिया-संस्कारों को बढ़ाए जाते थे, और प्रत्येक क्रिया के लिए स्वतन्त्रतानुसार कारण बतलाए जाते थे, तब क्षत्रिय लोग, जिनके सम्मुख राज्य-व्यवस्था की कठिन समस्याएँ थीं—और जो अधिक विचारशील और अनुभवी हो गए थे—ब्राह्मणों के इस थोथे पाण्डित्य-दर्प से ऊब गए थे। विचारवान् और सच्चे लोग यह विचारने लग गए थे कि क्या धर्म केवल इन्हीं क्रिया-संस्कारों और विधियों को सिखला सकता है? वे लोग यद्यपि इन क्रिया-संस्कारों के आडम्बरों का खुला विरोध नहीं कर सकते थे—और वे इन संस्कारों को वैसे ही आडम्बर से करते भी थे—परन्तु उन्होंने अधिक पुष्ट विचार प्रचलित किए और आत्मा के उद्देश्य और ईश्वर के विषय में खोज की। ये नए और कृतोद्यम विचार ऐसे वीरोचित, पुष्ट और दृढ़ थे कि ब्राह्मण लोगों ने, जोकि अपने ही विचार से अपने को बुद्धिमान् समझते थे, अन्त को हार मानी और क्षत्रियों के पास इस नए समुदाय के पाण्डित्य को समझने आए। उपनिषद् इस कथन के पुष्टि-स्वरूप हैं। कभी-कभी

राजाओं से और इन पुरोहितों से कर्म-काण्ड के विषय पर भी विवाद होता था, जिसका एक मनोरञ्जक उदाहरण शतपथ ब्राह्मण (११ म, ४, ५।११।६।२१) में है।

"विदेह के जनक की भेंट कुछ ऐसे ब्राह्मणों से हुई जो अभी आए थे। ये श्वेतकेतु, आरुणेय, सोमशुष्क, सत्ययज्ञि और याज्ञवल्क्य थे। उसने उनसे पूछा :—

"तुम लोग अग्निहोत्र जानते हो ?

"तीनों ब्राह्मणों ने अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार उत्तर दिया। पर किसी का उत्तर ठीक न था। याज्ञवल्क्य का उत्तर यथार्थ बात के बहुत निकट था। परन्तु वह भी पूर्णतया ठीक नहीं था। जनक ने उनसे कहा—'तुम लोग कुछ नहीं जानते।' और वह रथ पर चढ़ कर चला गया।

"ब्राह्मणों ने कहा—'इस राजन्य ने हमारा अपमान किया है।' याज्ञवल्क्य रथ पर चढ़ कर राजा के पीछे गया, और उससे शङ्का निवारण की। तब से जनक ब्राह्मण कहा जाने लगा।"

वास्तव में इन निरर्थक अग्निहोत्रों का वर्णन ऐसा विस्तृत हो गया था, और क्रियाएँ इस तरह बढ़ गई थीं कि याज्ञवल्क्य जैसे ब्राह्मण को भी याद न रहीं—शायद इसी गड़बड़ाध्याय को मिटाने के लिए उसे शुक्ल यजुर्वेद का सम्प्रदाय बनाना पड़ा, और उसका स्वतन्त्र-ब्राह्मण शतपथ बनाने में अपना तमाम जीवन नष्ट करना पड़ा।

इन पुरोहितों को धीरे-धीरे दक्षिणा का लालच बढ़ रहा था और वे अपने सादे तपस्वी जीवन से पतित हो रहे थे। छान्दोग्य उपनिषद् (५।१३।१७।१६।७।२४), शतपथ ब्राह्मण (३।२।४८), तैत्तिरीय उपनिषद् (१।५।१२ आदि) में धन, सोना, चाँदी, जवाहरात, घोड़ा, गाड़ी, गाय, खच्चर, दास, दासी, खेत, घर और हाथियों का ज़िक्र है। यज्ञों में सोना दान करना उचित समझा जाता था। चाँदी के दान देने का बहुत ही निषेध था। ब्राह्मण-ग्रन्थों में इसका भी अनोखा कारण बताया जाता है।

"जब देवताओं ने अग्नि को सौंपा हुआ धन उससे फिर माँगा तो अग्नि रोई और उसके जो आँसू बहे वे चाँदी हो गए। इसी कारण यदि चाँदी दक्षिणा में दी जाय तो उस घर में रोना मचेगा।"

और एक घटना का हाल सुनिए—

"जनक विदेह ने एक अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें याज्ञिकों को बहुत सी दक्षिणा दी गई। उसमें कुरुओं और पाञ्चालों के ब्राह्मण आए थे। जनक यह जानना चाहते थे कि उनमें से कौन अधिक पढ़े हैं। अतएव उन्होंने हज़ार गौओं को घिरवाया और प्रत्येक के सींगों में १८ मोहर बाँधी। तब जनक ने उन सभों से कहा—'ब्राह्मणो ! तुममें जो सबसे बुद्धिमान् हो वह इन गौओं को हाँक ले जाय।' इस पर उन ब्राह्मणों का साहस न हुआ। पर याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा—'वत्स ! इन्हें हाँक कर घर ले जाओ।' उसने कहा—'सामन की जय'—और वह उन्हें हाँक कर घर ले गया।

"इस पर ब्राह्मणों को बड़ा क्रोध आया। वे घमण्डी ब्राह्मण उससे प्रश्न पर प्रश्न पूछने लगे, पर याज्ञवल्क्य ने अकेले उन सबका मुक़ाबला किया। होत्री, अश्वल, जारत-करव, आरतभाग, मृत्यु लाहचार्याम, उषस्तचाक्रायन, केहाल कौशिनतकय, उद्दालक, आरुणी तथा अन्य लोग याज्ञवल्क्य से प्रश्न पर प्रश्न करने लगे। पर याज्ञवल्क्य ने सबको निरुत्तर किया।

"गार्गी खड़ी हुई और बोली—'हे ब्राह्मण ! तू क्या सबसे विद्वान् है ?' याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया—'मुझे गौ की आवश्यकता थी—मैंने उन्हें ले लिया।' गार्गी ने कहा—'हे याज्ञवल्क्य ! जिस प्रकार कि काशी अथवा विदेहों के किसी योद्धा का पुत्र अपने ढीले धनुष में डोरी लगाकर अपने हाथ में दो नुकीले—शत्रु को बेधने वाले—तीर लेकर युद्ध करने खड़ा होता है उसी प्रकार मैं भी दो प्रश्नों को लेकर तुमसे लड़ने खड़ी होती हूँ—मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।'"

ये वर्णन उन प्राचीन मन्त्र-द्रष्टा ऋषियों और इन यज्ञ के व्यवसायी पुरोहितों में जो अन्तर है उसे स्पष्ट करते हैं। इन्हीं याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं। यह बात बिल्कुल साफ़ है कि इन लोगों में यद्यपि विद्या और योग्यता थी, तथापि इनका नैतिक पतन हो चुका था और ये श्रीमन्त और विलासी हो गए थे।

बड़े-बड़े यज्ञ प्रायः वसन्त ऋतु में (चैत्र-वैशाख के महीनों में) होते थे। ऐतरेय ब्राह्मण के चौथे भाग को पढ़ने से इस विषय का अधिक स्पष्टीकरण हो जाता है।

ऊपर बताया गया है कि अनेक विद्वान् पुरुष, ज्ञानी और सच्चे महात्मा लोग, यज्ञों से विरक्त होने लगे थे। इससे पाखण्डी तथा स्वार्थियों के हाथ में यज्ञाडम्बर आया। तब यज्ञों में एक सबसे बड़ा दोष उत्पन्न हो गया। अर्थात् यज्ञों में पशु-बध करना और मांस की आहुति देना प्रचलित हुआ।

ऐतरेय ब्राह्मण (१ । १५) में लिखा है कि किसी राजा या प्रतिष्ठित मेहमान का सत्कार किया जाय तो बैल या गाय मारी जानी चाहिए। आधुनिक संस्कृत में मेहमान का एक नाम 'गोघ्न' 'गाय का मारने वाला' भी है।

श्याम यजुर्वेद के ब्राह्मण में यह ब्योरेवार लिखा है कि छोटे-छोटे यज्ञों में विशेष देवताओं को प्रसन्न रखने के लिए किस प्रकार का पशु मारना चाहिए। गोपथ ब्राह्मण में बताया गया है कि उस पशु का भिन्न-भिन्न भाग किसे मिलना चाहिए। पुरोहित लोग जीभ, गला, कन्धा, नितम्ब, टाँग इत्यादि पाते थे। यजमान पीठ का भाग लेता था। और उसकी स्त्री को पेडू के भाग से सन्तोष करना पड़ता था !!*

शतपथ ब्राह्मण (३ । १ । २ । २१) में इस विषय में एक मनोहर विवाद है कि पुरोहित को बैल का मांस खाना चाहिए या गाय का? अन्त में परिणाम निकाला गया है कि दोनों ही मांस न खाने चाहिएँ। फिर भी याज्ञवल्क्य कहते हैं कि "यदि नर्म हो तो हम उसे खा सकते हैं।" †

शतपथ ब्राह्मण (१ । २ । ३ । ७ । ८) में पशु को यज्ञ में बलिदान देने के विषय में एक अद्भुत वाक्य है।

"पहले देवताओं ने मनुष्य को बलि दिया। जब वह बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने घोड़े में प्रवेश किया। तब उन्होंने घोड़े को बलि दिया। जब घोड़ा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने बैल में प्रवेश किया। तब उन्होंने बैल को बलि दिया तो यज्ञ का तत्व उसमें से निकल गया और उसने भेड़ में प्रवेश किया। जब भेड़ की बलि दी गई तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल कर बकरे में प्रवेश हो गया। तब उन्होंने बकरे को बलि दिया। जब बकरा बलि दिया गया तो यज्ञ का तत्व उसमें से भी निकल गया और तब उसने पृथ्वी में प्रवेश किया। तब उन्होंने पृथ्वी को खोदा और उसे चावलों और जौ के रूप में पाया।........जो मनुष्य इस कथा को जानता है उसे (चावल आदि) का द्रव्य देने से उतना ही फल होता है जितना कि इन पशुओं के बलि करने से।"*

ब्राह्मण-ग्रन्थों के बाद सूत्र-काल में वैदिक बलिदानों के सम्बन्ध की रीतियों के विस्तार-पूर्वक वर्णनों के संक्षिप्त ग्रन्थ जो बनाए गए वे स्रौत-सूत्र कहे जाते हैं। उन स्रौत सूत्रों में ऋग्वेद के दो, सामवेद के तीन, कृष्ण यजुर्वेद के चार और शुक्ल यजुर्वेद के पूरे-पूरे प्राप्त हैं। बौद्ध-काल तक ये सूत्र बनते रहे हैं, जब कि यज्ञ की हिंसा-ज्वाला अन्धाधुन्ध धधक रही थी।

इस मांस-भक्षण का प्रभाव उपनिषदों तक में हो गया। बृहदारण्यक उपनिषद् ८ । ४ । १८ में लिखा है कि जो कोई यह चाहे कि मेरा पुत्र विद्वान्, विजयी और सर्व वेदों का ज्ञाता हो वह बैल का मांस चावल के साथ पका कर घी डाल कर खाय। †

---

* अथातः सवनीयस्यपशोर्विभागं व्याख्यास्यामः, उद्धृत्यावदानानि, हनूसजिह्वे प्रस्तोतुः, कण्ठः सकाकुदः प्रति हर्तुः। श्येनं पक्ष उद्गातुर्दक्षिणं पार्श्वं सांसमध्वर्योः, सत्यमुपगात्रीणां सव्योंसः प्रति प्रस्थातुर्दक्षिणा श्रोणिरथ्यास्त्री ब्रह्मणो वरूसक्थ्यं, ब्राह्माच्छासितः उरुः पोतुः सव्या श्रोणि होतुरपरसकथं मैत्रावरुणस्योरुरच्छ्वाकस्य, दक्षिणादोर्नेष्टः सव्यान्सदस्यस्य सदञ्चानूकं च गृहपतेर्जाघ्नी पत्न्यास्तासां ब्राह्मणेन प्रतिग्राहयति, वनिष्टुर्हृदयं वृक्कौ चाङ्गुलल्यानि दक्षिणो बाहु राग्नीधस्य सव्य आत्रेयस्य दक्षिणौ पादौ गृहपतेर्व्रतप्रदस्यसव्योपादौ गृहपत्न्या व्रत प्रदायाः......... ।

(गोपथ ३ । १८)

†......सधेन्वै चानडुहश्च नाश्नीयाद्धेनवनडुहौ वा इद॰सर्वं बिभ्रितस्ते देवा अब्रुवन् धेनवनडुहो वा इद॰ सर्वं बिभ्रितोहन्त यदन्येषां वयसां वीर्यंतद्धेनवनडुहयोर्दधाभेति...... तदुहोवाच याज्ञवल्क्योश्नाम्येवाह॰म सलं चेद्भवतीति

(शत० ३ । १ । २ । २१)

* अग्निं मन्थन्ति सोमे राजत्यागते।

† अथ य इच्छेत् पुत्रो मे पण्डितो विजिगीतः समितीगमः शुश्रूषितां वाच भीषता जायेत् सर्वान्वेदाननुब्रवीत सर्वं मायुरिया-

स्रौत्र सूत्रों में दो प्रकार के यज्ञों का वर्णन है। एक हविर्यज्ञ—जिनमें चावल, दूध, घी, मांस आदि का अर्घ दिया जाता है। दूसरा सोमयज्ञ, जिसमें सोमरस का अर्घ दिया जाता है।

हविर्यज्ञ ये हैं—१ अग्न्याधान; २ अग्निहोत्र; ३ दश-पूर्णप्राश; ४ अग्रयण; ५ चातुर्मास; ६ निरुध पशुवध्न; ७ सौत्रामणि।

सोमयज्ञ ये हैं १—अग्निष्टोम; २ अत्यग्निष्टोम; ३ उक्थ्य; ४ षोडसिन; ५ वाजपेय; ६ अतिरात्र; ७ आप्तोयाम।

इसके सिवा अन्य छोटी-छोटी क्रियाएँ जैसे—अष्टका, जो जाड़े में की जाती थी। पार्वण—जो शरद-पूर्णिमा को होती थी। श्राद्ध—पितरों को बलिदान। आग्र-हायणी—जो अगहन में की जाती थी। चैत्री—जो चैत्र में की जाती थी। आश्वयुगी—जो असौज में की जाती थी। इनमें की बहुत सी धार्मिक क्रियाएँ और उनकी तिथि आजकल त्योहार बन गए हैं। इन पूजा और यज्ञों को, जोकि सर्व-साधारण के लिए थे, सबसे बढ़ कर धर्म कहा गया है। स्वर्ग-प्राप्ति के लिए ये क्रियाएँ एकमात्र द्वार मानी जाती थीं।

गौतम कहते हैं—वह मनुष्य जो इन पवित्र कर्मों को करता है, परन्तु जिसकी आत्मा में भलाइयाँ नहीं हैं, तो उसे स्वर्ग नहीं मिलेगा।.......................
......परन्तु वह, जो इन कर्मों में से केवल कुछ कर्मों को भी यथार्थ में करता हो, और जिसकी आत्मा में उत्तम भलाइयाँ मौजूद हैं; तो वह स्वर्ग में निवास करेगा। (८।२४।२५)

पूर्व मीमांसा में यज्ञों पर बहुत वाद-विवाद किया गया है। उसमें तीन रीतियों का उल्लेख किया गया है। अर्थात् पवित्र अग्नि को स्थापित करना, हवन करना और सोम तैयार करना। ये प्रश्नोत्तर और उन पर होने वाले विवाद अद्भुत हैं।

कुछ यज्ञों में ऐसा विधान है कि यजमान अपनी सब सम्पत्ति यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों को दे दे। यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि क्या राजा को भी अपनी सब, भूमि चरागाह, सड़क, झील, तालाब ब्राह्मणों को दे देनी चाहिए। इसका उत्तर दिया गया कि भूमि राजा की सम्पत्ति नहीं होती और इसलिए वह उसे नहीं दे सकता। राजा, केवल देश पर राज्य कर सकता है, परन्तु देश उसकी सम्पत्ति नहीं है। क्योंकि यदि ऐसा होता तो उसकी प्रजा के घर, भूमि आदि उसी की सम्पत्ति हो जाते। किसी राज्य की भूमि को राजा नहीं दे सकता, परन्तु यदि राजा ने कोई घर वा खेत मोल लिया हो तो वह उन्हें दे सकता है।

इसी प्रकार अग्नि में अपना (?) बलिदान करने का प्रश्न, दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए यज्ञ करने का प्रश्न और ऐसे ही अनेक प्रश्नों पर बड़ी बुद्धिमानी के साथ विचार किया गया है।

पूर्व मीमांसा में लिखा है कि बड़े यज्ञों में कार्य-कर्त्ता लोगों की पूरी संख्या १७ होती है। १ यजमान और १६ पुरोहित। परन्तु छोटे अवसरों पर केवल चार ही ब्राह्मण होते हैं।

बलिदान की संख्या यज्ञ के अनुसार होती थी। अश्वमेध में सब प्रकार के बलि अर्थात् पालतू और जङ्गली जानवर, थलचर, जलचर, उड़ने वाले, तैरने वाले, रेंगने वाले जानवरों को मिला कर ६०९ से कम न होने चाहिए।

ऐसा प्रतीत होता है कि ज्यों-ज्यों हिंसा बढ़ी त्यों-त्यों यज्ञ की हिंसा का विरोध और उसके प्रति घृणा का प्रदर्शन भी होने लगा था। महाभारत में लिखा है :—

"वेद में जो लिखा है कि 'अज' से यज्ञ करें, सो अज का अर्थ बीज है—बकरा नहीं।"*

"गाएँ अवध्य हैं, इन्हें नहीं मारना चाहिए।"†

"हिंसा धर्म नहीं है।"‡

दिति मा॰ सौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तंमश्नियातामीश्वरौ नयीतवा औक्षणेन वा आर्षभणवा।

(बृह० उ० ८।४।१८)

* अजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुतिः।
अज सञ्ज्ञानि बीजानि छागन्नो हन्तु महथ।

(महा० अनुशा०)

† अघ्नया इति गवां नाम, क एतान् हन्तुमर्हति।

‡ न हिंसा धर्म उच्यते।

"वह कोई धर्म ही नहीं, जहाँ पशु मारे जायँ।"*

चार्वाक सम्प्रदाय वालों ने—जिनका प्रादुर्भाव उन्हीं दिनों हुआ था, जब कि ख़ूब पशु-हिंसा चल रही थी—उपहास से लिखा था :—

"पशु के मारने से ही यदि स्वर्ग मिलता है तो यजमान अपने पिता को ही क्यों नहीं मार कर हवन कर डालता ?"†

मत्स्यपुराण अध्याय १४३ में यज्ञ के विषय में मनोरञ्जक वर्णन पाया जाता है :—

"ऋषि पूछने लगे कि स्वायंभुव मनु के समय त्रेता-युग के प्रारम्भ में यज्ञ का प्रचार कैसे हुआ ? सतयुग के साथ उस युग का सन्धि-काल समाप्त होने के पश्चात्, त्रेतायुग प्रवृत्त होने पर (?) कैसी व्यवस्था शुरू हुई ? ग्राम, पुर, नगर आदि की रचना होने के पश्चात्, कृषि आदि से औषधियों की उत्पत्ति होने के अनन्तर, जीवन साधन के नाना काम-धन्धे शुरू होने के पीछे उन वेदोक्त मन्त्रों से यज्ञ का प्रचार किस ढङ्ग से शुरू हुआ ?

"यह सुन कर सूत जी बोले—वैदिक मन्त्रों का विनियोग यज्ञ-कर्म में करके विश्व-भुक इन्द्र ने यज्ञ का प्रचार किया। देवताओं का सङ्गठन किया—सब यज्ञ के साधन इकट्ठे किए और अश्वमेध का प्रारम्भ हुआ। इसमें अनेक महर्षि भी आए थे। इस यज्ञ में अनेक ऋत्विज अनेक प्रकार के हवि अग्नि के अर्पण करने लगे। जब सुस्वर साम गान होने लगा—और पशुओं का आलम्भन चलने लगा, यज्ञ का सेवन करने वाले देवगण जब आहूत हुए—उस समय दीन पशुगणों को अवलोकन करके महर्षिगण उठे और इन्द्र से पूछने लगे कि तुम्हारी यज्ञ-विधि क्या है ?

"यह तो बड़ा अधर्म है कि धर्म के नाम से अधर्म हो रहा है। यह पशु-हनन विधि तो अनुचित है। तूने यह धर्म का नाश करने के लिए ही पशु मार कर अधर्म शुरू किया। यह धर्म नहीं है—अधर्म है। तुझे यज्ञ करना है तो यज्ञीय धान्य के बीजों से ही यज्ञ करो।" इस प्रकार ऋषियों ने कहा, परन्तु इन्द्र ने नहीं माना।

"तब इन्द्र और ऋषियों में बड़ा विवाद छिड़ गया। यज्ञ जङ्गम वस्तुओं से हो या स्थावरों से ? यही विवाद था। जब ऋषि थक गए तब वे दुखी होकर सम्राट् वसु के पास गए।

"ऋषि बोले—हे उत्तानपाद के वंशधर ! तूने कैसी यज्ञ-विधि देखी है, सो कह !

"राजा वसु बोले—द्विजों को मेध्य पशुओं से तथा फल-मूलों ही से यज्ञ करना उचित है। यज्ञ का स्वभाव ही हिंसा है। यह मैंने देखा है।

"राजा का यह भाषण सुनकर ऋषियों ने उसे श्राप दिया—'तेरा अधःपात हो,' इससे उसका अधः-पतन हुआ।"

यही कथा कुछ फ़र्क़ से वायुपुराण में भी है। इससे पता लगता है कि कुछ विद्वान् लोग इन पशु-वधों से अत्यन्त घृणा करने लगे थे। ये पुराण ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग के हैं।

महाभारत शान्तिपर्व (३४१) में भी ऐसी ही मज़ेदार एक कथा है—"इन्द्र ने भूमि पर आकर यज्ञ किया। जब पशु की ज़रूरत हुई तब बृहस्पति ने कहा—'पशु के लिए आटा लाओ'—यह सुन कर मांस के लालची (पशु-गृद्धा !) देवता बारम्बार बृहस्पति से कहने लगे कि बकरे के मांस से हवन करो।

"तब ऋषि बोले—यज्ञों में बीजों से (धान्यों से) यज्ञ करना चाहिए। 'अज' बीज का नाम है। बकरा मारना सज्जनों का काम नहीं। यह श्रेष्ठ कृतयुग है। इसमें पशु कैसे मारा जायगा ?

"तब सबने सम्राट् उपरिचर वसु को मध्यस्थ कर कहा—'हे महाराज ! यज्ञ बकरे के मांस का करना चाहिए या कि बनस्पतियों का ? कृपा करके आप फ़ैसला कीजिए।' राजा बोला—पहले यह बताओ, किसका क्या मत है ?

"ऋषि बोले—धान्य हवन हमारा पक्ष है। और पशु-हनन देवों का।

"वसु ने कहा—तब बकरे के मांस से ही हवन करना चाहिए। इस पर ऋषियों ने उसे श्राप दिया और उसका अधःपतन हुआ।

---

* नैषधर्मः सतां देवा यत्र वध्येत वै पशुः ।

† पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति ।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते ।

"अब वसु ने यज्ञ ठाना। उसमें बृहस्पति उपाध्याय था। प्रजापति के पुत्र सदस्य थे। एकत, द्वित, त्रित धनुष, रैभ्य, अर्वावसु, परावसु, मेधातिथि, ताँड्य, शान्ति, देवशिरा, कपिल, आद्यकठ, तैत्तिरी, कण्व, देवहोत्र, ये सोलह ऋत्विज थे। इस यज्ञ में पशुवध नहीं किया गया। यह यज्ञ अहिंसक और शुद्ध था। इससे फिर उसका अभ्युदय और उन्नति हुई।"

—महाभारत शान्ति० अ० ३३६

महाभारत में इस बात पर भी प्रकाश डाला है कि यज्ञों में पशुहिंसा वैदिक काल से बहुत पीछे चली थी।

"यह कृत-युग है, इसमें यज्ञ में पशु अहिंस्य हैं। क्योंकि इसमें चारों कलाओं से पूर्ण धर्म है। इसके बाद त्रेतायुग होगा, उसमें त्रयी विद्या होगी और यज्ञ-पशु प्रोक्षित होकर मारे जावेंगे।"

—महाभारत शान्ति० अ० ३४०

श्रीमद्भागवत् में एक स्थल (४। २५। ७। ८) पर एक यज्ञ के विषय में लिखा है—"हे राजन्! तेरे यज्ञ में जो सहस्रों पशु तेरी निर्दयता से मारे गए वे तेरी उस क्रूरता का स्मरण करते हुए क्रोधित होकर तीक्ष्ण हथियारों से तुझे काटने को बैठे हैं।"

इस दयाहीन ने यज्ञ में जो पशु मारे थे वे ही क्रुद्ध होकर, उसका यह अयोग्य कर्म स्मरण करते हुए, उसको कुल्हाड़ों से छिन्न-भिन्न करने लगे।

निस्सन्देह इन पाप-रूप यज्ञों का नाश करने में महापुरुष बुद्ध भगवान् ने अत्यन्त पुरुषार्थ किया था। फिर भी बलिदानों की प्रथा हिन्दू-समाज से अभी निर्मूल नहीं हुई है। इस समय भी कुछ अन्ध-धर्मी हत्यारे लोग इन हत्यापूर्ण अत्यन्त घृणित कर्मों को यज्ञों और धर्मकृत्यों के नाम से पुकारते हैं। कुछ दिन हुए, पूने के प्रसिद्ध मराठी पत्र 'केसरी' में एक ऐसे ही लेख का विवरण छपा था, जिसे हम पाठकों के ज्ञानार्थ ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं। यह लेख दक्षिण के किन्हीं ब्राह्मण-धुण्डिराज गणेश वापट दीक्षित सोमयाजी का लिखा हुआ था।—

"गत फ़रवरी मास में मैंने औंध में अग्निष्टोम नामक सोमयज्ञ किया था। और उसमें पशु हनन करके उसके अङ्गों की आहुतियाँ दी थीं। इस पशु-हनन के सम्बन्ध में वैदिक धर्म की आज्ञा न जानने वालों (?) ने बहुत-कुछ लेख अख़बारों में लिखे थे। × × ×

"ब्राह्मणादि त्रैवर्णियों के वर्णाश्रम-विहित कर्तव्यों में यज्ञ-कर्म मुख्य हैं। यज्ञ में हवन मुख्य है। और हवन में अनेक देवताओं के उद्देश्य से मन्त्र-पठनपूर्वक विविध पदार्थों की आहुतियाँ दी जाती हैं। जैसे आज्य, चरु, पुरोडाश, सोमरस ये द्रव्य हैं। तथा अज, मेष आदि पशुओं के अवयवों का मांस भी है।

"भारतीय युद्ध के पश्चात् जैन और बौद्धों ने वैदिक धर्म पर बड़ा भारी हमला किया, जिससे वैदिक यज्ञ-संस्था को बड़ा धक्का लगा। तथापि तत्पश्चात् गुप्तवंशीय राजा लोग—शातकर्णी, चालूक्य, पुलकेशी आदि राजाओं ने अश्वमेध जैसे यज्ञ (जिनमें ३०० पशुओं का हवन विहित है) किए और वैदिक परम्परा को स्थिर किया। राजा जयसिंह ने भी अश्वमेध यज्ञ किया था। यज्ञीय हिंसा हिंसा नहीं है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा है कि :—

माहिंस्यात्सर्वाणिभूतनि अन्यत्र तीर्थेभ्यः।

"शाङ्कर-भाष्य में कहा है—'तीर्थं नाम शास्त्रानुज्ञा विषय, ततोऽन्यत्रेत्यर्थः।' शास्त्र की आज्ञानुसार जो कर्म किया जाता है वही तीर्थ है। इस प्रकार के कर्मों को छोड़कर अन्य कर्म में हिंसा नहीं करना चाहिए। तात्पर्य, श्रीशङ्कराचार्य भी यज्ञीय हिंसा के विरोधी नहीं थे।

"देवताओं के उद्देश्य से यज्ञ-प्रसङ्ग में वेदोक्त विधि से जो पशु-हनन होता है, उसका नाम हिंसा नहीं है। अपना पेट भरने के लिए मांस खाने की इच्छा से जो पशु-हनन होता है वह हिंसा है। वेदोक्त पशु-हिंसा में देवताओं के लिए मांसाहुतियाँ समर्पित करना ही मुख्य उद्दिष्ट होता है। हुत-शेष मांस का भक्षण करना भी विधि-विहित है। अतः शास्त्राज्ञा-रक्षण करने की इच्छा से ही (?) इस हुत-शेष मांस का भक्षण किया जाता है।

"वर्णाश्रम-विहित होने ही से यज्ञीय पशु-हिंसा की जाती है। सोमयाग में पशु-हिंसा के बिना कर्म पूर्ण ही नहीं हो सकता। जो निन्दक अविचार से तथा वेद-शास्त्र की मर्यादा का उल्लेखन करके इस प्रकार के सोमयागादि वैदिक कर्मों का उपहास करते हैं, उनसे यज्ञकर्ता लोग कम अहिंसावादी हैं, ऐसा नहीं कहा जा

सकता। अहिंसा परम धर्म अवश्य है, पर उसमें भी अपवाद है। क्षत्रिय जिस प्रकार मृगया और युद्ध में हिंसा करते हैं, उसी प्रकार यज्ञकर्ता यज्ञ में विधि के कारण पशु-हनन करते हैं।

"यज्ञ में जिस रीति से पशु-हनन होता है, वह शस्त्र-वध की अपेक्षा कम दुखदायी है।

"उत्तर दिशा की ओर पैर करके पशु को भूमि पर लिटाना चाहिए। पश्चात् श्वासादि प्राणवायु बन्द करके नाक-मुख आदि बन्द करे, इत्यादि सूचनाएँ शापिता को कही हैं :—

उदीचीनां अस्य पदो निदधात्।
अन्तरेवोष्माणं वारयतात्॥
—ऐ० ब्रा० ६-७

अमायु कृएवंतं संज्ञयतात्।
—तै० ब्रा० ३-६

"अर्थात्—पशु का हनन उसे न्यून से न्यून दुःख देते हुए करना चाहिए।

"जो लोग मांस-भक्षण के लिए पशु को मारते हैं, वे अधिक दुःख देते हैं। जैसे मुर्गी को उबलते पानी में रखना और गौ आदि की हत्या शस्त्र से करना, इत्यादि। अतः यज्ञीय पशु-हनन, अन्य वधों से कम दुखदायी है। × × ×"

इस लेख पर 'केसरी' सम्पादक ने कड़ी टीका की थी। पाठक यज्ञों के स्वरूप को बहुत-कुछ समझ गए होंगे—ऐसी आशा है।*

* लेखक की अप्रकाशित पुस्तक "तब, अब, क्यों और फिर" का एक अध्याय, जो शीघ्र ही 'चाँद' कार्यालय द्वारा प्रकाशित होने वाली है।

शिशु

[रचयिता—श्री० बाबूलाल जी भार्गव 'कीर्ति']

शशि से शीतलता को लेकर,
ले ताराओं से लघु रूप।
दामिनि से अनुपम आभा ले—
रचा तुम्हारा मधुर स्वरूप।
था न विधाता के भी पास—
तुमको गढ़ने का सामान॥

ले गुलाब से मनमोहकता,
कुन्द-कली से मधुमय हास।
नव-शिरीस से सौकुमार्य ले,
पारिजात से ले उल्लास—
हुआ तुम्हारा शिशु! निर्माण।
विहगों से लेकर कल गान॥

परियों से चञ्चलता लेकर,
मृगछौनों से भोलापन।
राजहंस से चाल छीन कर,
शिखियों से लेकर नर्तन।
इन्द्र-धनुष से लेकर रङ्ग।
विधि ने तुममें भरी उमङ्ग॥

एकत्रित कर बिखराया सा—
देख सृष्टि का सारा सार।
गढ़ कर मोहक मूर्ति तुम्हारी,
हुआ सफल विधि का व्यापार।
शिशु मेरे भोले नादान।
अमर रहे तेरा गुण-गान॥

चीनी (शक्कर) का व्यवसाय

[ले० श्री० बाबूलाल सिंह जी]

(शेषांश)

मल्टीप्ल एफ़ेक्ट में गाढ़ा किया हुआ रस वायु-शून्य पात्र में जाता है, जिसको वैकुअम पैन (Vacum pan) (चित्र १) कहते हैं। यह लोहे का एक बेलनाकार खोखला पात्र होता है, जिसके ऊपर और नीचे का भाग गावदुम होता है। इसमें ताम्र की कई जिलेबियाँ होती हैं, जिनके द्वारा पैन में स्टीम जाता है। किसी-किसी पैन में उसके नीचे के भाग में मल्टीप्ल एफ़ेक्ट की नाईं पीतल की नलियाँ होती हैं, जिनके चारों ओर स्टीम रहता है। इसके पेंदे में एक बड़ा छिद्र होता है जो आवश्यकतानुसार खोला वा बन्द किया जा सकता है। इसके भीतर वायु न रहने के कारण रस साधारण वायवीय चाप (Atmospheric pressure) से कहीं कम चाप पर उबाला जाता है। रस उबलते समय इससे जो वाष्प निकलता है उसे पम्प द्वारा निकाल दिया जाता है जिससे इसमें शून्यता बनी रहे। इसी वैकुअम पैन में स्टीम द्वारा रस गाढ़ा होकर चीनी के दाने बनते हैं। इसमें चीनी के दानों के साथ-साथ शीरे का अंश (Molasses) भी रहता है। इस चीनी और शीरा मिश्रित पदार्थ को 'राब' कहते हैं। पैन जब राब से भर जाता है तो नीचे के छिद्र का ढक्कन हटा दिया जाता है जिससे राब लोहे के एक बेलनाकार लम्बे पात्र में, जिसको क्रिस्टलाइज़र (चित्र २) कहते हैं, गिर जाता है। इसमें राब कई घण्टों तक ठण्ढा किया जाता है, जिससे चीनी के दाने पुष्ट और दृढ़ हो जाते हैं। तत्पश्चात् राब केन्द्र विमुख यन्त्र में, जिसको सेन्ट्रीफ़ूगल मशीन (चित्र ३) कहते हैं, मथा जाता है, जिससे चीनी के दाने भीतर रह जाते हैं और शीरा बाहर निकल जाता है। सेन्ट्रीफ़ूगल मशीन लोहे का ३०-४० इञ्च व्यास का एक बेलनाकार यन्त्र है, जिसके भीतर ताम्र की जाली होती है। इसी जाली द्वारा शीरा बाहर निकल जाता है। यह अत्यन्त द्रुत वेग से घूमता है, अर्थात् प्रति मिनट १२०० चक्कर लगाता है। इससे निकली हुई चीनी कुछ गीली होती है, इसलिए इसे सुखाने के लिए ढोलने में भेजते हैं, जो ढोल की नाईं होता है। यह प्रायः २० फ़ीट लम्बा होता है और इसका व्यास प्रायः ६ फ़ीट होता है। इसमें सदा गर्म हवा जाती रहती है जिससे चीनी सूख जाती है। सूखी हुई दानेदार चीनी को तौल कर बोरे में भर, बिक्री के लिए रख छोड़ते हैं अथवा आवश्यकतानुसार उसे चक्की में पीस भी देते हैं।

सेन्ट्रीफ़ूगल मशीन से निकला हुआ शीरा पम्प द्वारा टङ्कियों में जाता है, जिसमें यह जल और स्टीम की सहायता से पतला कर लिया जाता है और पुनः पैन में उबाल कर उसमें से चीनी निकाल ली जाती है। इस प्रकार शीरे से दो-तीन बार चीनी निकाली जाती है—जब तक लाभपूर्वक कम व्यय से निकल सके। कारख़ानों अथवा व्यापार में मितव्ययिता और कार्य-क्षमता ये ही दो पदार्थ हैं जिन पर मनुष्यों का विशेष ध्यान होना चाहिए। इन्हीं दो पदार्थों के अभाव से व्यापार अथवा कारख़ाने में प्रधानतया घटी लगती है। अन्त में बचा हुआ शीरा बिक्री के निमित्त बड़ी-बड़ी टङ्कियों में जमा किया जाता है। इसके अनेक प्रयोग होते हैं। यथा—इससे मदिरा बनती है, देहातों में मिठाइयों को पाग दिया जाता है, तम्बाकू में डाला जाता है, पशुओं को खिलाया जाता है, खाद के काम में आता है और इससे यवक्षार (Potash) भी निकाला जाता है।

चीनी कई प्रकार से प्रस्तुत होती है, किन्तु साधारणतः ये क्रियाएँ अवश्य रहती हैं—ऊख की पेराई, रस की सफ़ाई, रस को गाढ़ा कर पैन में राब बनाना, राब से शीरा पृथक् कर चीनी निकालना। विशेषतः रस की सफ़ाई की प्रणाली में ही अधिक भिन्नता होती है और शेष सब एक हैं। कहीं-कहीं चूना-मिश्रित रस

में गन्धक का धुआँ न देकर अङ्गारिकाम्ल (Carbonic Acid Gas) प्रयोग किया जाता है। गुड़ से चीनी बनाने की प्रणाली भी प्रायः इसी भाँति है। गुड़ को गर्म पानी में घोल कर उसमें चूना मिलाया जाता है। इसमें गन्धक का धुआँ और अङ्गारिकाम्ल साधारणतया नहीं पड़ता—कहीं-कहीं गन्धक का धुआँ दिया जाता है। संक्षेप में चीनी प्रस्तुत करने की प्रणाली निम्न नक़्शे से ज्ञात हो जायगी :—

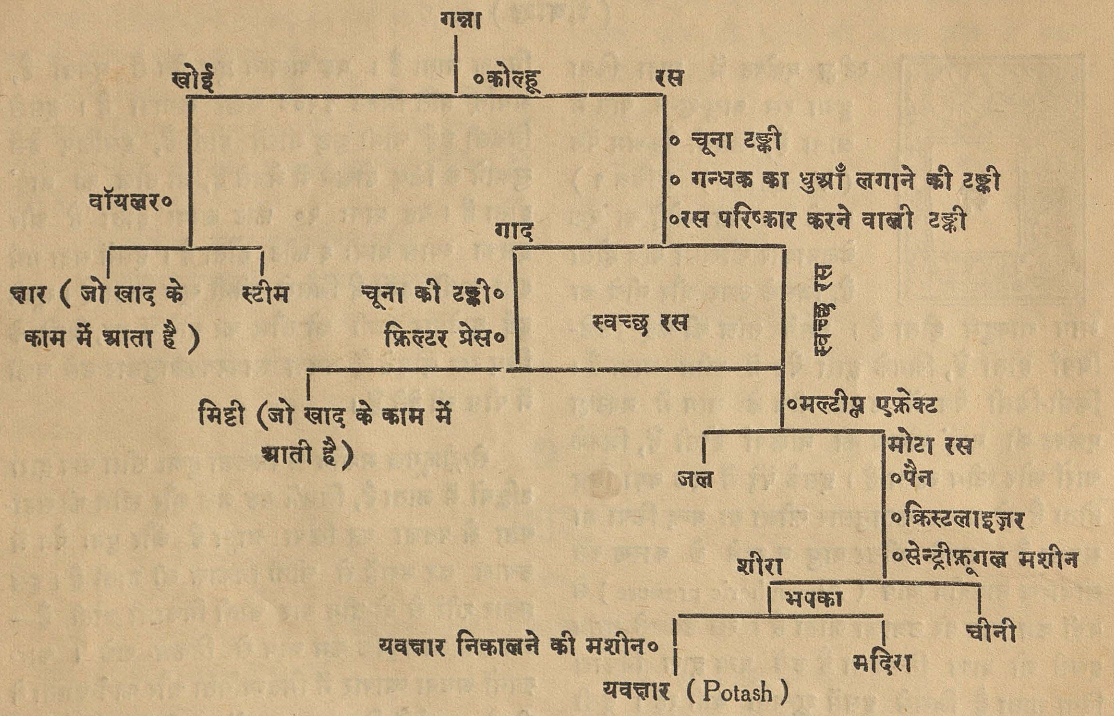

पिछले कुछ वर्षों के भीतर संसार के समस्त चीनी उत्पन्न करने वाले देशों में गन्ने और चुक़न्दर की चीनी किस परिमाण में प्रस्तुत की गई, उसकी तालिका नीचे देते हैं :—

वर्ष	गन्ने की चीनी (टनों में)	चुक़न्दर की चीनी (टनों में)	योग (टनों में)
१९१३-१४	...	...	१,८७,३८,३२६
१९२४-२५	१,५५,३२,५५६	८०,९३,४५३	२,३६,२६,००९
१९२५-२६	१,६१,०६,४५५	८२,७८,३५५	२,४३,८४,८१०
१९२६-२७	१,५४,५२,०००	७७,६५,०००	२,३२,१७,०००

उपरोक्त तालिका से विदित होता है कि १९२५-२६ में संसार में सबसे अधिक चीनी बनी। इतनी चीनी आज तक कभी नहीं बनी। अतएव १९२५-२६ ई० चीनी-जगत् के लिए स्मरणीय है। यदि इस साल की चीनी को एक स्थान पर ढेर कर दिया जाय तो यह एक छोटी-मोटी पहाड़ी बन जायगी जो लगभग ८२५ फ़ीट ऊँची, ८२५ फ़ीट चौड़ी और ८२५ फ़ीट लम्बी होगी, और जिसका घन-फल ५६,१५,१५,६२५ घन-फ़ीट होगा। १९१३-

१४ से १९२६-२७ तक तेरह वर्ष में प्रायः ४४,७८,६७४ टन चीनी की वृद्धि हुई। १९१४-१८ के महासमर के पश्चात् दिनोंदिन चीनी की दर गिरती गई, क्योंकि युद्ध में धन के नाश होने के कारण संसार की क्रय-शक्ति घट गई और चीनी खपत से अधिक बनने लगी।

प्रत्येक महाद्वीप में बनने वाली चीनी का परिमाण

देश		१९२४-२५ टन		१९२५-२६ टन		१९२६-२७ टन
अमेरिका	...	८८,७७,३२९	...	ब६,६९,३६४	...	८३,७७,५००
एशिया		५५,६५,३९०	...	६१,३६,३६०	...	५९,४०,०००
ऑस्ट्रेलिया और पौलीनेसिया		५,३६,४९०	...	६,१२,३४४	...	५,१०,०००
अफ़्रिका	...	५,४५,२६०	...	६,७९,३८७	...	६,१७,०००
यूरोप	...	८,०८७	...	९,०००	...	७,५००
गन्ने की चीनी	...	१,५५,३२,५५६	...	१,६१,०६,४५५	...	१,५४,५२,०००
चुक़न्दर की चीनी	...	८०,९३,४५३	...	८२,७८,३५५	...	७७,६५,०००
योग	...	२,३६,२६,००९	...	२,४३,८४,८१०	...	२,३२,१७,०००

अब हम कुछ अङ्क ऐसे देते हैं, जिनसे पाठकों को भारतवर्ष के चीनी-व्यवसाय की दशा का पूरी तरह से ज्ञान हो जायगा और वे यह भी समझ सकेंगे कि इस सम्बन्ध में संसार में हमारी स्थिति क्या है?

समस्त भारतवर्ष में (१९२५-२६ में) देशी खण्ड-सारों को छोड़कर ४२ चीनी के कारख़ाने चल रहे थे, जिनका ब्यौरा नीचे दिया जाता है:—

प्रान्त	केवल गन्ना से	गन्ना और गुड़ दोनों से	केवल गुड़ से
बिहार व उड़ीसा	३	९	२
युक्त-प्रान्त	१	९	७
मद्रास	१	२	३
बम्बई	२	×	×
बर्मा	१	×	×
पञ्जाब	×	×	२
योग	८	२०	१४

भारत के समस्त कारख़ानों में पिछले कुछ वर्षों में गन्ने और गुड़ से कुल कितनी चीनी बनाई गई, इसका ब्यौरा नीचे दी गई तालिका से विदित होगा। दूसरी तालिका से प्रत्येक प्रान्त में बनने वाली चीनी और उस सम्बन्ध की अन्य सब बातें ज्ञात होंगी:—

वर्ष	गन्ना से मन	गुड़ से मन	योग चीनी मन
१९१९-२०	६,२८,९२०	१२,११,२७४	१८,४०,१९४
१९२०-२१	६,६९,२९१	१३,२४,६४६	१९,९३,९३७
१९२१-२२	७,५३,६३८	१३,०३,४३३	२०,५७,०७१
१९२२-२३	६,५१,४१५	१३,६८,१२६	२०,१९,५४१
१९२३-२४	१०,४४,८५६	१५,३८,३०४	२५,८३,१६०
१९२४-२५	९,२१,९५०	९,१६,१२१	१८,३८,०७१
१९२५-२६	१४,१४,५२३	१०,४७,४२०	२४,६१,९४३

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के कारख़ानों में (देशी खण्डसारों को छोड़ कर) गन्ना, गुड़, चीनी और शीरे की तालिका

प्रान्त	वर्ष	गन्ना पेरा गया मन	गुड़ गलाया गया मन	गन्ना की चीनी मन	गुड़ की चीनी मन	कुल चीनी मन	गन्ना का शीरा मन	गुड़ का शीरा मन	कुल शीरा मन
बिहार व उड़ीसा	१९२३-२४	अप्राप्त	४,९६,७४६	अप्राप्त	२,१५,९८४	अप्राप्त	अप्राप्त	१,८१,९८०	अप्राप्त
	१९२४-२५	५५,३८,४१८	गुड़ नहीं गलाया गया	४,४०,९६६	गुड़ से चीनी नहीं बनी	४,४०,९६६	२,०५,६४१	गुड़ से शीरा नहीं बना	२,०५,६४१
	१९२५-२६	९०,८७,९८८	२,०८,९०७	७,२५,७३५	९८,८३०	८,२४,५६५	३,६८,९९५	८३,६७३	४,५२,६६८
	१९२६-२७	९४,५१,३४३	अप्राप्त	८,१९,९२०	अप्राप्त	अप्राप्त	३,९४,४७५	अप्राप्त	अप्राप्त
युक्त-प्रान्त	१९२३-२४	अप्राप्त	१७,५५,११४	अप्राप्त	८,१६,०९७	अप्राप्त	अप्राप्त	७,५२,६१६	अप्राप्त
	१९२४-२५	३२,१६,१८९	१२,०४,७६२	२,३२,७१७	५,४१,६३८	७,७४,३५५	१,५९,७१५	५,११,२६५	६,७०,९८०
	१९२५-२६	६५,७०,६५०	१०,८७,८२७	५,२२,१३५	५,३२,३३५	१०,५४,४७०	२,९७,७३७	४,४२,०१५	७,३९,७५२
	१९२६-२७	८९,०८,५८२	अप्राप्त	७,०६,९५२	अप्राप्त	अप्राप्त	४,३३,७५६	अप्राप्त	अप्राप्त
मद्रास और पञ्जाब	१९२३-२४	×	१०,५९,७४६	×	५,०६,६२३	×	×	३,९४,९०२	×
	१९२४-२५	×	६,५८,४८०	×	३,७४,४८३	×	×	२,१३,०१४	×
	१९२५-२६	×	७,१५,१९४	×	४,१६,२५५	×	×	२,१५,७९९	×
बम्बई और मद्रास	१९२३-२४	अप्राप्त	×	×	×	×	अप्राप्त	×	×
	१९२४-२५	३०,४८,५३५	×	२,४८,२६७	×	×	१,३२,६७४	×	×
	१९२५-२६	१८,५४,६३३	×	१,६६,६५२	×	×	७१,६९३	×	×
बम्बई, मद्रास और बर्मा	१९२६-२७	१८,४७,३२८	अप्राप्त	१,८९,५५४	अप्राप्त	अप्राप्त	६३,८१६	अप्राप्त	अप्राप्त

उपरोक्त तफ़सील से ज्ञात होता है कि भारत में गुड़ से चीनी बनाने में किसी प्रकार की उन्नति नहीं, बल्कि दिनोंदिन कमी होती जा रही है। सचमुच गुड़ से चीनी बनाने के व्यापार का भविष्य अच्छा नहीं दीख पड़ता, क्योंकि चीनी की दर बाहर के अन्य-अन्य देशों पर निर्भर रहती है। गुड़ केवल भारतवर्ष ही में होता है, इसलिए इसकी दर में और चीनी की दर में कुछ सम्बन्ध नहीं। चीनी इतनी सस्ती और गुड़ इतना महँगा! १९२४-२५ में भारत में गुड़ से चीनी बनाने की २९ फ़ैक्टरियाँ थीं, जिनमें केवल १३ चलती रहीं और १६ गुड़ के महँगे और चीनी के सस्ती होने से बन्द पड़ी रहीं। उत्तरी बिहार में जो चीनी का केन्द्र है, इसी कारण सभी फ़ैक्टरियाँ बन्द रहीं। युक्त-प्रान्त और पश्चिमी

मास	सिसवा बाज़ार में एक मन गुड़ का औसत दर			कलकत्ता में जावा एक मन चीनी का औसत दर		
	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
दिसम्बर १९२४	५	५	०	१२	९	९
जनवरी १९२५	५	९	०	१२	९	०
फ़रवरी ,,	६	०	६	१२	६	६
मार्च ,,	६	८	९	१२	३	०
अप्रेल ,,	६	६	०	१२	७	९
मई ,,	६	१०	०	११	११	९

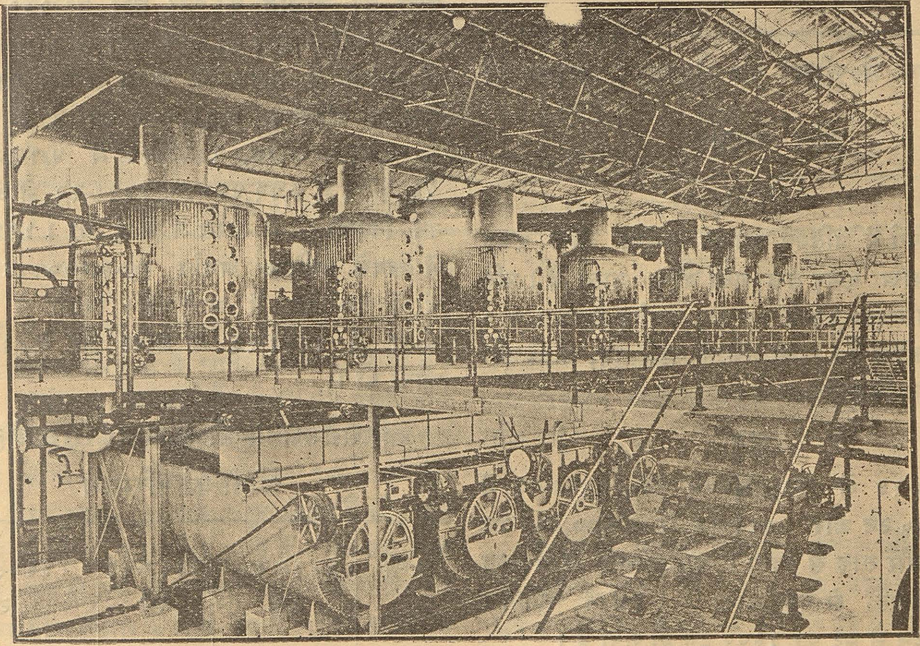

चित्र-नं० १—वैकुअम पैन, मल्टीपुल एवैपोरेटर और क्रिस्टलाइज़र

बिहार में, जो गुड़ का केन्द्र है, बहुत कम गुड़ हुआ—केवल छः लाख टन हुआ। इसलिए गुड़ का दाम बहुत अधिक रहा और चीनी सस्ती रही। इसका ख़ुलासा नीचे के टेबल से हो जायगा।

सिसवा बाज़ार हिन्दुस्तान में गुड़ की सबसे बड़ी मण्डी है, और यहीं से अधिकांश कारख़ाने वाले गुड़ ख़रीदते हैं। १९२५-२६ ई० में १९२४-२५ से ३,७५,००० टन अधिक गुड़ हुआ और इसलिए इसका मूल्य भी कम

रहा जो नीचे की तालिका से ज्ञात हो जायगा। अतएव इस वर्ष प्रायः सभी गुड़ की फ़ैक्टरियाँ चलीं :—

मास	सिसवा बाज़ार में गुड़ का औसत दर			कलकत्ता में जावा चीनी का औसत दर		
	रु०	आ०	पा०	रु०	आ०	पा०
दिसम्बर १९२५	३	१२	९	१०	८	९
जनवरी १९२६	३	१४	६	१०	१५	६
फ़रवरी ,,	४	३	६	११	७	९
मार्च ,,	४	५	०	११	५	६
अप्रैल ,,	४	८	०	११	१०	३

भारतवर्ष में चीनी की पैदावार, आमदनी और चालान

गन्ना

भारतवर्ष में प्रतिवर्ष लगभग पचीस लाख एकड़ से तीस लाख एकड़ तक गन्ना बोया जाता है। प्रति एकड़ साधारणतः १२ से १५ टन अर्थात् लगभग ४०० मन गन्ना होता है। इसी गन्ने से यहाँ गुड़, चीनी और शीरा प्रस्तुत किया जाता है।

गुड़

१९२३-२४ में ३१,०३,००० टन; १९२४-२५ में २४,४६,००० टन और १९२५-२६ में २७,७७,००० टन गुड़ गन्ना और ताड़ से बना। समुद्र पार अन्य-अन्य देशों में भी यहाँ से गुड़ जाता है। इसका परिमाण २०,००० टन से घट कर १९०० टन हो गया है।

चीनी

ऊपर दिखाया जा चुका है कि भारतवर्ष की फ़ैक्टरियों में १९२३-२४ में २५,८३,१६० मन अर्थात् ९४,८०० टन, १९२४-२५ में १८,३८,०७१ मन अर्थात् ६६,३०० टन, और १९२५-२६ में २४,६१,९४३ मन अर्थात् ९०,४४६ टन चीनी बनी। यहाँ की प्रस्तुत चीनी विदेश को कहीं नहीं जाती। हाँ, थोड़ी सी लङ्का में जाती है। १९२४-२५ में ४,५५,३७५ रु० की १०२८ टन चीनी गई और १९२५-२६ में केवल २,१८,६२५ रु० की ६०० टन चीनी गई।

भारतवर्ष में जितनी चीनी प्रस्तुत होती है, उसकी सात गुनी चीनी विदेश से आती है और इसमें से प्रतिशत ९० हिस्सा ऐसी जगह से आती है जहाँ भारत का छठवाँ अंश गन्ना बोया जाता है। ऐसे देश होने का सौभाग्य क्यूबा (Cuba) के बाद केवल जावा ही को है, जहाँ १९२५-२६ में २२,८०,५०० टन चीनी बनी और केवल ४,४१,६४४ एकड़ गन्ना बोया गया था अर्थात् प्रति एकड़ ५$\frac{1}{6}$ टन चीनी का परता पड़ा। उस साल जावा ने २०,६९,९५० टन चीनी अन्य-अन्य देशों को चालान की और वहाँ पर १७९ फ़ैक्टरियाँ चलती रहीं। इधर छः सात वर्षों के बीच १९२५-२६ में विदेशों से भारत में सबसे अधिक चीनी आई, जिसका परिमाण ७,३२,६०० टन है। १९२४-२५ में ६,७१,००० टन, १९२३-२४ में ४,११,५०० टन, १९२२-२३ में ४,४२,४०० टन, १९२१-२२ में ७,१७,६०० टन विदेशी चीनी भारत में आई थी। १९१३-१४ ई० में सबसे अधिक अर्थात् ८,०३,००० टन विदेशी चीनी इस देश में आई थी। विदेश से आई हुई चीनी में १९२५-२६ में जावा की ६,५९,१०० टन चीनी थी।

भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जावा से आई हुई चीनी का परिमाण

प्रान्त	१९२३-२४ टन	१९२४-२५ टन	१९२५-२६ टन
बङ्गाल	१,५४,५००	२,३०,२००	३,०१,८०० (४७%)
बम्बई	९९,६००	६३,४००	१,३९,८०० (२१%)
कराँची	८७,९००	१,३७,६००	१,५१,८०० (२३%)
मद्रास	९,२००	२७,१००	२४,३०० (४%)
बर्मा	२०,०००	२४,०००	३३,५०० (५%)

विदेश से भारत में आई हुई समस्त चीनी का परिमाण

नाम स्थान (जहाँ से चीनी आई)	१९१३-१४ (महासमर के पूर्व) टन	१९२१-२२ टन	१९२२-२३ टन	१९२३-२४ टन	१९२४-२५ टन	१९२५-२६ टन
जावा	५,८३,०००	६,२३,३००	३,७१,१००	३,६८,३००	४,८०,१७३	६,५६,११६
मॉरिशश ...	१,३९,६००	६१,६००	३१,४००	१,३००	१,३२,९२८	१९,०९८
स्ट्रेटसेटल्मेण्टस् ...	२,९००	५,१००	२,६००	२,९००	२,९४०	२,१८९
चीन व हॉङ्गकॉङ्ग	१,५००	४,४००	४,४००	५,८००	२,६३४	२,२१७
मिश्र	१००	२००	१,०००	७००	१८७	२७७
जापान	१००	६००	१००	४६	... ...	३०
जर्मनी	७००	१००	९,०००	५,१००	२१,७२७	१,३७३
ज़ेकोस्लोवाकिया	... ...	... ...	... ...	५,२००	५,०३२	१०,१७७
ऑस्ट्रिया हँगरी ..	७४,०००	... ...	... ...	१७,८००	१३,४१२	२०,७८२
नेदरलैण्डस् ...	... ...	२,०००	२,९००	३००	१३९	७६०
बेलज़ियम	... ...	१२,८००	४,९००	२,१००	६,५४५	६,८३७
अमेरिका	... ...	२,८००	१०,३००	२००	... ...	१,९००
अन्य-अन्य देश ...	१,१००	४,७००	४,७००	१,८००	५,१८८	१०,८१६
योग	८,०३,०००	७,१७,६००	४,४२,४००	४,११,५००	६,७०,९६५	७,३२,५७२
मूल्य (लाख रुपयों में)	१४,२९	२६,७८	१४,८५	१४,७८	२०,३७	१५,२०

ऊपर की तालिका से यह प्रकट होता है कि भारतवर्ष में सबसे अधिक परिमाण में चीनी जावा से आती है। तत्पश्चात् मॉरिशश, जर्मनी और ऑस्ट्रिया हँगरी तथा अन्य देशों से। इससे यह भी मालूम होता है कि जब तक जावा की चीनी प्राप्त होती रहेगी तब तक भारत वहीं से चीनी लेगा, कारण कि जावा बहुत निकट है और वहाँ की चीनी भारतीय पसन्द भी करते हैं। जब तक जावा वैज्ञानिक रूप से गन्ने की बोआई करता रहेगा तब तक उसको भारतीय बाज़ार के लिए किसी विदेशी प्रतियोगी का भय नहीं, क्योंकि चीनी बनाने में वहाँ अन्य देशों से अधिक व्यय नहीं होता।

विदेश से आई हुई चीनी का कुछ अंश फिर टर्की, अदन, अरब, पर्शिया, लङ्का, मिश्र, केनिया, जञ्जीबार, पेरश आदि स्थानों को जाता है। १९२३-२४ में १,६०,६७,००० रुपए की २५,८०० टन विदेशी चीनी बाहर भेजी गई। १९२४-२५ में ९१,५०,००० रुपए की २२,००० टन, और १९२५-२६ में ५०,००,००० रुपए की १६,४०० टन चीनी दूसरे देशों को गई। १९२५-२६ में २५,९६२ टन चीनी क़न्धार, काश्मीर और तिब्बत की ओर गई।

खपत

कलकत्ता, बम्बई, कराँची, मद्रास और रङ्गून के मुख्य-मुख्य बन्दरों में १९२५ की पहली अप्रैल को १,०१,१५० टन चीनी थी और १९२६ की ३१ वीं मार्च को ४३,४६० टन थी।

१९२५-२६ में चीनी का आयात

१ ली अप्रैल १९२५ की पूँजी (Stocks)	१,०१,१५० टन
भारतवर्ष में बनी (स्वदेशी चीनी)	१,१६,३०० ,,
विदेशी चीनी	७,३२,६०० ,,
जमा	९,५०,०५० टन

१९२५-२६ में चीनी का निर्यात और बचत

अन्य-अन्य देशों में गई हुई विदेशी चीनी	१६,३९० टन
अन्य-अन्य देशों में गई हुई स्वदेशी चीनी	६०० „
रेल द्वारा बाहर गई हुई चीनी	२६,५६० „
३१ मार्च १९२६ की पूँजी (Stocks)	४३,४६० „
जमा	८७,०१० टन

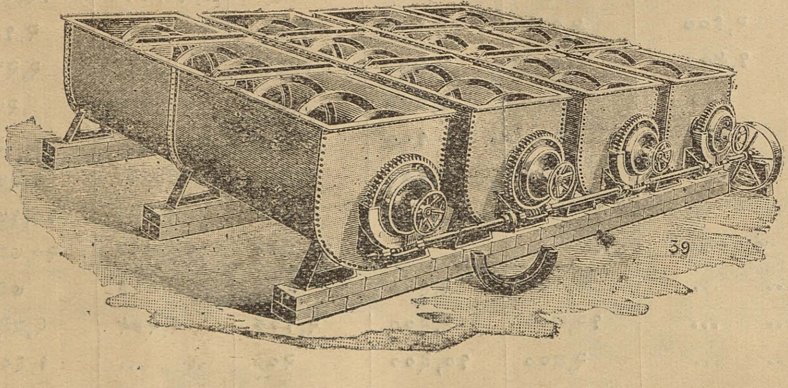

चित्र-नं० २—क्रिस्टलाइज़र

भारतवर्ष में चीनी का ख़र्च

१९२५-२६	„	„	„	८,६३,००० टन
१९२४-२५	„	„	„	७,०९,००० „
१९२३-२४	„	„	„	५,२८,००० „
१९२२-२३	„	„	„	५,१५,४०० „

शीरा

भारतवर्ष में १९२३-२४ में १,२०,००० टन और १९२४-२५ में ९५,००० टन शीरा बना। शीरा का अधिकांश भाग इस देश में तम्बाकू में डालने और मदिरा बनाने में व्यवहार किया जाता है। इससे भी कुछ द्रव्य की आमदनी हो जाती है, जिससे चीनी के व्यापार को बहुत सहायता पहुँच जाती है। विदेश से भी यहाँ शीरा आता है, अधिकांश भाग जावा से आता है। १९२४-२५ में ३० लाख रुपए का ५७,००० टन और १९२५-२६ में ३८ लाख रुपए का ७०,८०० टन शीरा जावा से आया। इस सम्बन्ध में यह बतला देना उचित होगा कि अब अमेरिका इङ्गलैण्ड, स्कॉटलैण्ड, आयरलैण्ड और अन्य-अन्य देशों ने शीरा से मदिरा प्रस्तुत करना आरम्भ किया है, अतएव इन सब देशों में शीरा की अधिक माँग है। जावा ने इङ्गलैण्ड, स्कॉटलैण्ड इत्यादि को शीरा देने की प्रतिज्ञा की है। अब भारत को जावा से सस्ता शीरा मिलने की बहुत कम आशा है।

मिठाई

जाम और जेली को छोड़ कर १९२४-२५ में २३,१३,८१३ रुपए की १,०९४ टन मिठाई (केक, बिस्कुट, लौज़ेंज़ इत्यादि) विदेश से आई, जिसमें से १,२६,३४४ रु० की १०७ टन विदेशी मिठाई पुनः विदेश को गई, और यहाँ की बनी हुई ७४,४१३ रुपए की ७४ टन मिठाई भी बाहर गई। १९२५-२६ में २४,८४,७१९ रुपए की १,२९८ टन मिठाई विदेश से आई, जिसमें से ५१,७६७ रु० की ४१ टन फिर बाहर गई और यहाँ की प्रस्तुत १,१५,०३५ रु० की १४१ टन भी बाहर गई।

सैकरिन

वर्ष	परिमाण पाउण्ड	
१९२२–२३	१,००,२५४	इसका मूल्य ३,८६,९००
१९२३–२४	३३,९१५	रु० (१९२२-२३) से
१९२४–२५	२,०८८	घट कर १०,४७० रु०
१९२५–२६	१४८	(१९२५-२६) रह गया।

ऊपर कहा गया है कि भारतवर्ष में १९२५-२६ में २६,७९,००० एकड़ गन्ना बोया गया था, जिससे लगभग पौने तीस लाख टन गुड़ और चीनी बनी; अर्थात् प्रति एकड़ १·०७५ टन बनी और ७,३२,६०० टन चीनी विदेश से आई। जावा में १९२६ में ४,४४,०३८ एकड़ गन्ना बोया गया और १९,४१,६४९ टन चीनी बनी; अर्थात् प्रति एकड़ ४·३७ टन बनी। भारतवर्ष और जावा की गन्ने से बोई हुई ज़मीनों को तुलना करने पर विदित

होता है कि भारतवर्ष में जावा के ६ गुनी ज़मीन में गन्ना बोया गया और चीनी केवल पौने तीस लाख टन बनी। यदि भारतीय भी अपने पड़ोसी डचों (जावानिवासियों) से पाठ लेकर उन्हीं के जैसे वैज्ञानिक तरीक़ों से खेत में खाद देते और उसकी जोताई-बोआई करते तो आज इस देश में भी प्रति एकड़ ४·३७ टन चीनी और २६,७९,००० एकड़ में १,१७,०७,२३० टन चीनी बनी होती, अर्थात् दुनिया की आधी चीनी यहाँ बनती और पृथ्वी के १६४ कोटि मनुष्यों में से ८२ कोटि मनुष्यों को केवल भारत ही अकेला चीनी खिलाता। किन्तु वस्तुतः इसके ठीक विपरीत होता है। इस देश से अपनी ही पूर्ति नहीं होती और दूसरों का मुँह देखना होता है। भारत को १९२५-२६ में ७,२२,६०० टन चीनी विदेश से मँगानी पड़ी। इसके लिए प्रति टन २७२ रु० के हिसाब से (१९२५-२६ ई० में जावा चीनी का भाव १२॥)॥ से लेकर ९)॥ मन तक था) १९,६२,६७,२०० रु०, अर्थात् लगभग २० करोड़ रुपए व्यय करने पड़े। प्रति वर्ष ग़रीब भारतीयों के कोष से प्रायः २० करोड़ रुपए केवल एक वस्तु में निकल जाते हैं। यदि जावा की नाईं यहाँ भी चीनी बनती तो विदेश को २,१९,८१,२१,७६० रु० (लगभग सवा दो अरब) की ८०,८१,३३० टन चीनी भेजी जाती। यदि जावा की बराबरी न कर केवल उससे आधा ही काम कर दिखाने की चेष्टा की जाय तो भी ६०,४९,३८,४८० रु० (साढ़े साठ करोड़) की चीनी विदेश भेज कर लाभ उठाया जा सकता है।

भारत में गुड़ बनाने की प्रथा अधिक प्रचलित है। यहाँ तक कि ८६ प्रति सैकड़े गन्ने से गुड़ बनता है और शेष चीनी बनती है। साधारणतः १०० मन गन्ने से ९-१० मन से अधिक गुड़ नहीं मिलता। इस गुड़ से चीनी बनाई जाती है, जो मामूली तौर पर ४ या ४½ मन से अधिक नहीं बैठती। यदि यही चीनी गन्ने से बनाई जाती तो १०० मन गन्ने से आठ मन से कम चीनी नहीं बनती। इसके अतिरिक्त देहातों में छोटा कोल्हू होने के कारण गन्ना भली-भाँति नहीं पेरा जाता। उसकी खोई में चीनी का अंश रह जाता है, जो जलाने अथवा पशुओं के खिलाने के काम आती है। पूसा के शुगर ब्यूरो के सेक्रेटरी मि० वाइन सेयर कहते हैं:—

It is calculated that the amount of sugar burnt in the bagasse as fuel and the loss of sugar from direct heating over the fire are nearly equal to India's imports."

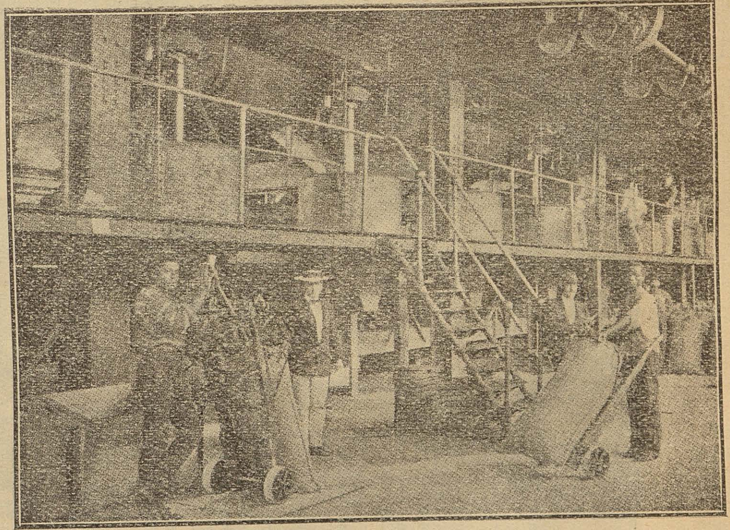

चित्र-नं० ३—सेण्ट्रीफ़ूगल मशीन (ऊपर), नीचे बोरे में चीनी भर कर हाथ-गाड़ी पर गोदाम में लिए जाते हैं।

अर्थात्—"हिसाब कर देखा गया है कि खोई में दग्ध चीनी और खुले कड़ाहों में रस उबालने से चीनी के नुक़सान का परिमाण प्रायः विदेश से आई हुई चीनी के समान होता है।" अर्थात् भारत में सात-आठ लाख टन चीनी खोई और खुले कड़ाहों में रस उबालने में नुक़सान कर देते हैं। लेखक का विचार है कि गुड़ बनाने वालों तथा गुड़ से चीनी बनाने वालों को सतर्क हो जाना चाहिए और इस प्रथा को क्रमशः कम करने की चेष्टा करनी चाहिए, नहीं तो ऐसी दारुण प्रति-

द्वन्द्विता के समय भारत का ठहरना कठिन हो जायगा। और अन्त में चीनी-संसार से इसका नाम लुप्तप्राय हो जायगा। जावा में एक मन चीनी प्रस्तुत करने में पाँच रुपए से अधिक नहीं लगते और इससे भी सस्ती चीनी बनाने के लिए जावा चेष्टा कर रहा है और सम्भवतः सफलता भी प्राप्त कर लेगा। विदेशियों को भारत में विदेशी चीनी पर प्रति हण्डरवेट (१ मन १६ सेर) साढ़े चार रुपए कर देना पड़ता है। जब तक इसमें किसी प्रकार की कमी न होगी तब तक भारतीयों को गन्ना से चीनी बनाने में यथेष्ट लाभ होता रहेगा। गुड़ से चीनी बनाने में क्षति

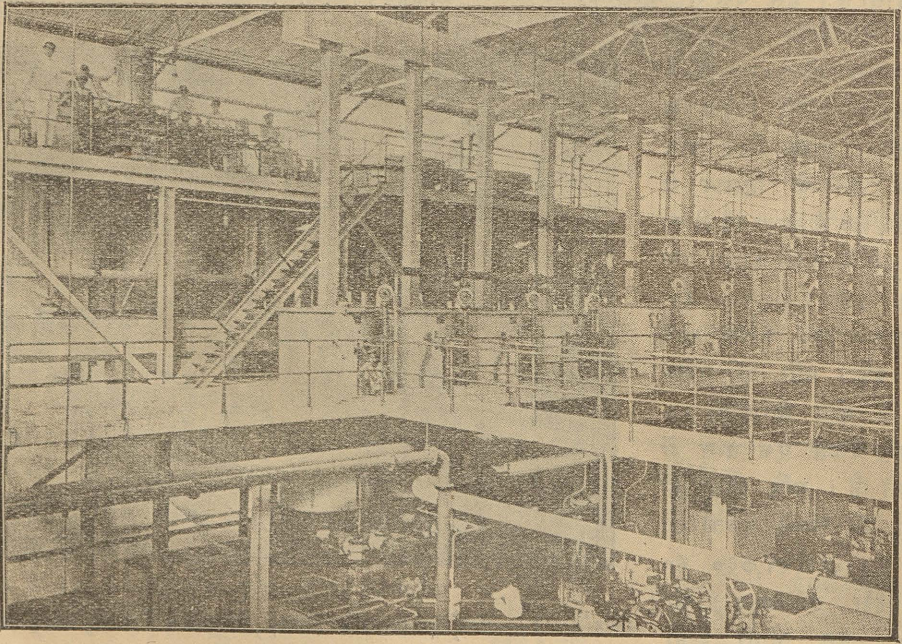

चित्र-नं० ४—चीनी का कारख़ाना

के सिवाय किसी प्रकार लाभ नहीं। यदि भारत-सरकार आज इस कर को उठा दे अथवा कम कर दे (ईश्वर न करे कि ऐसा हो) तो भारतीयों को चीनी के व्यापार से हाथ धोना पड़ेगा। अतएव पहले ही से ऐसे समय के लिए तैयार रहना चाहिए और ऐसा करना चाहिए कि समय आने पर विदेशियों के सामने सिर नीचा न करना पड़े। सुशिक्षित पाठकों और देश के नेताओं को इस जटिल प्रश्न की ओर कुछ ध्यान देना चाहिए

और एक समिति सङ्गठन कर भारत के प्रत्येक प्रान्त में, ज़िले में, ग्राम में इसकी उन्नति के उपायों को पहुँचाना चाहिए। इस समिति में चतुर और अनुभवी रासायनिक और कृषि-विशारद रक्खे जाने चाहिएँ, जो प्रत्येक ग्राम में जाकर किसानों को अच्छा और अधिक गन्ना उपजाने के उपाय बतलावें। ज़मीन की मिट्टी जाँच कर बतलावें कि वह ज़मीन गन्ना के योग्य है अथवा नहीं, यदि योग्य है तो उसमें किस प्रकार का खाद देना चाहिए जिससे गन्ना अधिक उत्पन्न हो और उसमें प्रचुर परिमाण में चीनी हो। बोआई और जोताई की प्रणाली; अच्छे-अच्छे गन्नों के नाम यथा—co२१४, co२१३ और और co२१० (जो पूसा के सरकारी खेतों में उपजा कर देखे गए हैं और जो ऐसे खेतों में उपजाए गए हैं जिनको यहाँ के किसानों ने ख़राब समझ कर छोड़ दिया था) बतलावें। इन गन्नों में सिंचाई भी बहुत कम करनी पड़ती है। ये गन्ने साधारण खेत में थोड़ी सिंचाई से साधारण गन्ने की अपेक्षा द्विगुण होते हैं और इनमें चीनी भी सौ मन में पन्द्रह मन के लगभग निकलती

है। इसके अतिरिक्त ये साधारण गन्नों की अपेक्षा बहुत पहले ही पक कर तैयार हो जाते हैं, अर्थात् अक्टूबर में पेरने के योग्य हो जाते हैं। इनमें co२१३ सबसे उत्तम है। इसका छिलका कड़ा होता है, अतएव यह सियारों के हाथ नहीं लगता, न कीड़े इसमें लगते हैं; और पैदावार भी कम से कम दुगुनी होती है।

पतला होता है और उसमें चीनी भी बहुत कम होती है। किसानों को सहायता दो प्रकार से पहुँचाई जा सकती है—(१) कोआपरेटिव सोसाइटी द्वारा किसानों को खाद व सिंचाई के लिए रुपए दिलवाना अथवा यदि हो सके तो खाद का बन्दोबस्त कर देना। किसानों पर बराबर दृष्टि रखना चाहिए कि सहायतार्थ लिए हुए रुपए का वे सद्व्यवहार करते हैं या नहीं।

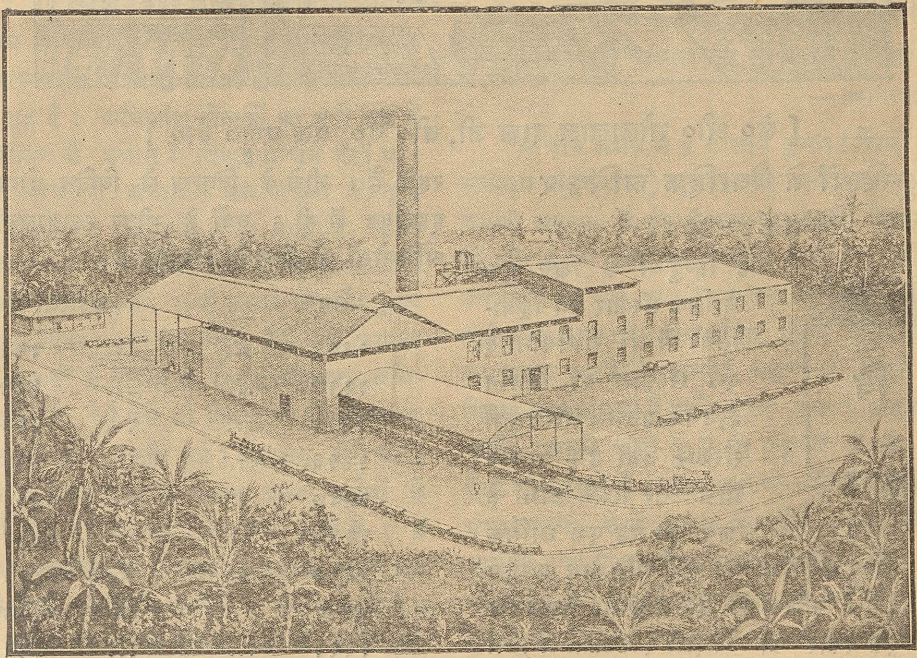

चित्र-नं० ५—जावा के चीनी के कारख़ाने का दृश्य

ग़रीब किसानों को आर्थिक सहायता पहुँचाना भी आवश्यक है, जिसमें वे लोग भली-भाँति खेती कर सकें। धन के अभाव से बेचारे किसान खाद नहीं डालते और पूर्णरूप से सिंचाई भी नहीं कर पाते। उनको असहाय रहकर केवल प्रकृति के ऊपर भरोसा रखना पड़ता है, जिसका फल यह होता है कि गन्ना रुग्ण व

(२) फ़ैक्टरी के मालिक व मैनेजरों से खाद व सिंचाई के लिए रुपए दिलाना। इससे मिल के मालिकों को भी लाभ है कि वे अच्छा और अधिक गन्ना पावेंगे जिनसे चीनी अधिक निकलेगी। वे अपने क़र्ज़ दिए हुए रुपयों को गन्ने के मूल्य में चुकता कर सकते हैं और इससे किसान भी उनके हाथ में रह सकते हैं।

[ले० श्री० भोलालाल दास जी, बी० ए०, एल्-एल० बी०]

हिन्दू-स्त्रियों के वैवाहिक अधिकार

विवाह क्या है ?

विवाह हिन्दुओं के लिए एक धार्मिक संस्कार है। द्विजातियों में जो गर्भाधानादि दश संस्कारों का विधान है, उनमें अन्तिम और दसवाँ संस्कार यही है। प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों के लिए भी यह एक धार्मिक संस्कार था, किन्तु उन देशों की परिस्थिति अब एकदम भिन्न हो गई है। पश्चिम का ईसाई-संसार आजकल विवाह को एक प्रकार की ठेकेदारी (Contract) या व्यवहार मानने लगा है, किन्तु उसमें भी यह पवित्रतम सम्बन्ध माना जाता है। वस्तुतः मानव-समाज की सारी शान्ति, उन्नति और व्यवस्था इसी सम्बन्ध पर अवलम्बित है। हिन्दू-सिद्धान्त के अनुसार विवाह से ही मनुष्य पूर्णता को प्राप्त करता है, इससे पहले वह अपूर्ण रहता है। हिन्दू-शास्त्रों के मतानुसार संसार-यात्रा के अभिप्राय से धर्मपूर्वक सदा के लिए स्त्री-पुरुष के सम्मिलित होने का नाम ही विवाह है।

पाश्चात्य समाजों में विवाह का आदर्श गिर जाने से एवम् वैयक्तिक स्वतन्त्रता की वृद्धि होने से वैवाहिक अभियोगों (मामलों) की दिन पर दिन वृद्धि होती जा रही है और प्रतिदिन सैकड़ों विवाह टूटते और जुड़ते रहते हैं। नीचे के विवरण से विदित होगा कि एक इङ्गलैण्ड में ही ९ वर्षों के भीतर न्यायालयों में इन अभियोगों की कितनी वृद्धि हुई है :—

सन्			अभियोगों की संख्या
१९१३	...	...	१२६७
१९१४	...	...	१३४८
१९१५	...	...	१३७३
१९१६	...	...	१४१३
१९१७	...	...	१७०८
१९१८	...	...	२६८९
१९१९	...	...	५७६३
१९२०	...	...	५१८४
१९२१	...	...	३४६४

इनको विवाह नहीं कह सकते। कम से कम हिन्दू-धारणा के अनुसार विवाह का यह आदर्श नहीं है। उपरोक्त संख्या में हम देखते हैं कि पिछले दो वर्षों में कुछ न्यूनता अवश्य है, तथापि उसका कारण कोई आदर्श-परिवर्तन नहीं था, प्रत्युत यूरोपीय महासमर था। इङ्गलैण्ड की जो भयानक पारिवारिक और सामाजिक स्थिति उपर्युक्त विवरण से प्रकट होती है, वही दशा प्रायः सम्पूर्ण पाश्चात्य जगत् की है। सौभाग्यवश हमारे देश में और विशेषतः हिन्दू-समाज में वैवाहिक विवाद बहुत ही कम उठते हैं। इसलिए हिन्दू-लॉ सम्बन्धी वैवाहिक व्यवस्था की व्याख्या के लिए न्यायालयों के निर्णयात्मक क़ानून (Case Law) बहुत ही कम मिलते

हैं। एक बार सम्पन्न होने पर हिन्दू-विवाह कभी नहीं टूटता। इसलिए समस्त संसार में यह अपनी दृढ़ता के लिए नामी है। मानव-समाज के विकास और उन्नति के लिए विवाह वस्तुतः प्रणव-रूप है, इसलिए हिन्दू-लॉ भी इसी से आरम्भ होता है।

विवाह का इतिहास

इस सम्बन्ध में विवाह के इतिहास पर दृष्टिपात करना आवश्यक है। आधुनिक समाज-शास्त्रज्ञों (Sociologists) में इस विषय पर मतभेद है कि विवाह मानव-समाज की प्रारम्भिक अवस्था से चला आता है या इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। अधिकांश लेखकों का यही मत है कि मानव-जीवन के प्रभात में विवाह-बन्धन नहीं था। जिस प्रकार पशुओं में अनायास कामवासना की तृप्ति और अपने-अपने वंश की वृद्धि हुआ करती है, किसी विशेष नर या मादा को नियमित रूप से विवाह-सम्बन्ध में आबद्ध नहीं होना पड़ता, उसी प्रकार स्त्री और पुरुष भी इच्छानुसार विहार करते थे। किन्तु जैसे-जैसे सभ्यता बढ़ती गई, मनुष्यों में पशुता के विरुद्ध मनुष्यता अधिकाधिक आती गई, वैसे-वैसे ही विवाह की आवश्यकता, उत्पत्ति, स्थापना और उन्नति हुई। महाशय मेन आदि हिन्दू-लॉ के कतिपय प्रकाण्ड लेखक हमारे पूर्वजों के विषय में भी ऐसे ही मत का प्रतिपादन करते हैं। वे महाभारत के श्वेतकेतु का उपाख्यान बहुधा अपने मत की पुष्टि के लिए उपस्थित करते हैं। इसके अतिरिक्त स्मृतियों में कथित विवाह के अष्टधा भेदों से भी वे इसी उन्नति-क्रम की व्याख्या करते हैं। पहले हम श्वेतकेतु वाले उपाख्यान का ही मर्म बतलावेंगे। उस उपाख्यान का प्रसङ्ग यों है :—

महाराजा पाण्डु शापवश नपुंसक होगए एवं पुत्रोत्पादन के योग्य न रहे। अब वंश की रक्षा हो तो कैसे? उन्होंने महारानी कुन्ती को नियोग-द्वारा पुत्रोत्पादन की सम्मति दी, किन्तु वे इस अनार्य-प्रथा को क्यों ग्रहण करने लगीं? इसलिए पाण्डु ने श्वेतकेतु की कथा इस प्रकार वर्णन की :—

अनावृताः किल पुरा आसन् वरानने।
कामाचार विहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि॥

तासां व्युच्चरमानाणां कौमारात् सुभगे पतीन्।
नाधर्मोऽभूद्वरारोहे स हि धर्मः पुराभवत्॥

× × ×

तं चैव धर्मं पौराणं तिर्य्यग्योनिगता प्रजाः।
अद्याप्यनु विधीयन्ते कामक्रोध विवर्जिताः॥
प्रमाणदृष्टो धर्मोऽयं पूज्यते च महर्षिभिः।
उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्यापि पूज्यते॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः स हि धर्मः सनातनः।
अस्मिंस्तु लोके न चिरान्मर्य्यादेयं शुचिस्मिते॥
स्थापिता येन यस्माच्च तन्मे विस्तरशः शृणु।

—महाभारत आदिपर्व

"प्राचीन समय में हे वरानने कुन्ती! स्त्रियाँ स्वच्छन्द अनावृत (खुलेआम) घूमती थीं एवं स्वतन्त्र थीं। वे कुमारी अवस्था में ही अनुरूप पुरुषों से विहार करती थीं और इसमें कोई अधर्म नहीं होता था, क्योंकि यही उन दिनों का धर्म था। अब तक भी मनुष्य को छोड़ सारे जीव काम-क्रोध से वर्जित होकर उसी पुराने धर्म का पालन करते हैं, अर्थात् मनुष्येतर किसी जीव में विवाह-बन्धन नहीं है और उत्तर कुरु (अर्थात् तिब्बत आदि पहाड़ी देशों) में तो मनुष्यों में भी अब तक ऐसा ही होता है। यह सनातन-धर्म स्त्रियों के लिए परम अनुग्रह करने वाला है और बहुत समय नहीं व्यतीत हुआ है जब कि इसकी मर्यादा इस लोक में बाँधी गई है। किसने और क्यों यह मर्यादा बाँधी, वह तुम सुनो!"

इसके पश्चात् राजा पाण्डु ने विस्तारपूर्वक श्वेतकेतु की कथा कही कि :—

बभूवोद्दालको नाम महर्षिरितिनः श्रुतम्।
श्वेतकेतुरितिख्यातः पुत्रस्तस्याभवन्मुनिः।
मर्यादेयं कृता तेन धर्म्या वै श्वेतकेतुना। इत्यादि

"हम लोगों ने सुना है कि उद्दालक नाम के कोई महर्षि थे। उनके पुत्र श्वेतकेतु मुनि के नाम से ख्यात हुए। आजकल जो स्त्रियों के लिए एक पति की मर्यादा तुम देखती हो वह इन्हीं श्वेतकेतु मुनि ने इस लोक में स्थापित की थी।" कारण यह हुआ कि उनकी माता को कुछ दुष्ट लोग उनके समक्ष ही ले चले। इस पर उन्होंने यह मर्यादा बाँध दी कि :—

व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्य्याः अद्य प्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्यासमं घोरं भविष्यत्यसुखावहं॥

"आज से जो स्त्री अपने पति को छोड़ अन्य पुरुष से रमण करेगी, वह भ्रूणहत्या के समान घोर पाप की भागिनी होगी।" अन्यथा श्वेतकेतु के पिता ने इस मर्यादा-स्थापन के समय जैसा उनसे कहा था कि:—

अनावृता हि सर्वेषां वर्णानां अङ्गना भुवि।
यथागावस्थितास्तात स्वे स्वे वर्णे तथा प्रजा॥

"सब वर्णों की स्त्रियाँ बन्धन-रहित थीं। जिस प्रकार गायों में कोई पतिव्रत का बन्धन नहीं है, उसी प्रकार मानव-समाज में भी स्त्रियाँ अपने-अपने वर्ण में स्वतन्त्र थीं।"

इस उपाख्यान से ये लेखक इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं कि किसी समय आर्य-जाति में भी विवाह-बन्धन नहीं था। जिसको जहाँ इच्छा और सुविधा होती थी अपनी कामवासना की तृप्ति करते थे और पशुओं के समान ही उनमें अनिश्चित सम्बन्ध (Promiscous intercourse) से वंश-रक्षा होती थी। किन्तु सभ्यता और मनुष्यता की जैसे-जैसे उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई, वैसे-वैसे ही विवाह-बन्धन भी दृढ़ और समुन्नत होता गया। उनके मत में विवाह के स्मार्त भेदों से यह सिद्धान्त और भी दृढ़ होता है।

विवाह के आठ भेद

ब्राह्मो दैवो तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधमः॥

—मनु ३, २१

ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकार के विवाह होते हैं। इनकी बहुत लम्बी-चौड़ी परिभाषा न देकर, हम संक्षेप में यही लिखना पर्याप्त समझते हैं कि जिस विवाह में कन्या का संरक्षक सदाचारी और वेदवित् वर को आमन्त्रित करके अलङ्कार-सहित कन्या का दान करता है वह ब्राह्म; जिसमें यज्ञ की दक्षिणा-स्वरूप कन्या का दान पुरोहित के लिए किया जाय वह दैव; जिसमें एक जोड़ा बैल लेकर कन्या दी जावे वह आर्ष; जिसमें यह कह कर कन्यादान किया जाय कि तुम दोनों प्रजा की उत्पत्ति करो वह प्राजापत्य; जिसमें वर-कन्या अपनी स्वीकृति से संयुक्त हों वह गान्धर्व; जिसमें दाम या शुल्क देकर कन्या ख़रीदी जावे वह आसुर; जिसमें बलपूर्वक हरण कर ली जाय वह राक्षस; और जिसमें छल से चुरा ली जाय वह पैशाच विवाह कहलाता था। सम्प्रति ब्राह्म और आसुर विवाहों को छोड़ कर सभी प्रकार के विवाहों का लोप हो गया है। किन्तु इन भेदों से ये विद्वान् यह अनुमान करते हैं कि विवाह-बन्धन की किस प्रकार क्रमात् उन्नति हुई है। पण्डित-प्रवर मेन महाशय का कथन है कि:—

It is obvious that these forms are founded upon different views of the marriage relation, that they belong to different stages of society, and that their relative antiquity is exactly in the inverse ratio to order in which they are mentioned. The last three point to a time when the rights of parents over their daughters were unknown or disregarded, and when men procured for themselves women (they can hardly yet be called wives) by force, fraud, or enticement.

अर्थात्—"स्पष्ट है कि ये भेद विवाह-सम्बन्ध के भिन्न-भिन्न विचारों पर अवलम्बित हैं; समाज की भिन्न-भिन्न अवस्था से सम्बन्ध रखते हैं, और उनकी पारस्परिक परम्परा ठीक उस क्रम के प्रतिकूल है जिसमें उनका आख्यान हुआ है। पिछले तीन भेदों से उस समय की सूचना मिलती है जब माता-पिता का अपनी कन्याओं पर अधिकार नहीं होता था अथवा ऐसे अधिकारों की अवहेलना की जाती थी और जब कि पुरुष बल, छल, या प्रलोभन से अपने लिए स्त्री (क्योंकि उस समय तक उन्हें पत्नी कहना अनुपयुक्त था) संग्रह करते थे।"

इसी क्रम से उन्होंने अपने 'हिन्दू-लॉ' में विस्तारपूर्वक विवाह के इतिहास की आलोचना की है। उन्होंने लिखा है कि विवाह-भेदों की प्राचीनता उनके वर्णन-क्रम के विरुद्ध है। हमने देखा है कि मनु ने क्रमशः ब्राह्म, दैव, आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गान्धर्व, राक्षस, और पैशाच विवाहों का कथन किया है। मेन महाशय के अनुसार सबसे प्राचीन पैशाच विवाह है। पूर्व में कहा जा चुका है कि इन विद्वानों के मत में पहले विवाह-बन्धन का सर्वथा अभाव था, जैसा कि श्वेतकेतु के उपाख्यान से विदित होता है। पश्चात् पैशाच रीति से विवाह करने की प्रथा

आरम्भ हुई अथवा राक्षस-विधि से छीन कर ही बलपूर्वक विवाह किया जाने लगा। ये विवाह असभ्य अवश्य थे, किन्तु इन विद्वानों के मत में मानव-समाज ही असभ्य और पशु-तुल्य था। बानर जाति से ही क्रमशः मनुष्यों की उत्पत्ति हुई थी। इसलिए उस पशुप्राय मानव-समाज में ज्ञान और भावुकता का विकास तो था ही नहीं कि इन कार्यों को कोई बुरा माने। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली नीति चरितार्थ होती थी। सुतरां 'पैशाच' और 'राक्षस' विधियों से ही विवाह का आरम्भ हुआ। पशुओं के समान सभी स्त्रियाँ स्वतन्त्र थीं, उनमें पातिव्रत्य की कोई कल्पना नहीं थी, इसलिए 'गान्धर्व' रीति से भी कुछ अंशों में विवाह का आरम्भ होना माना जा सकता है। समाज की जब कुछ और उन्नति हुई तो स्त्रियों को धन के द्वारा ख़रीदा जाने लगा, इसलिए 'आसुर' विवाह की सृष्टि हुई। 'प्राजापत्य' विधि लगभग गान्धर्व रीति का ही प्रकारान्तर है, क्योंकि उसमें विशेषता केवल यही है कि वर-कन्या को विवाह-बन्धन में आबद्ध होने के लिए संरक्षक अपनी अनुमति योंही दे देते थे। फिर जब सभ्यता की अधिक उन्नति हुई तो उपरोक्त चार विवाहों को अप्रशस्त (निषिद्ध) माना जाने लगा एवं कन्या-विक्रय को उठा देने के लिए एक जोड़ा बैल मात्र लेने की आज्ञा दी गई अथवा पुरोहित को दक्षिणा में ही अपनी कन्या देने का विधान किया गया। सबके अन्त में सर्वोत्तम ब्राह्म विवाह की सृष्टि हुई। इसी प्रकार न मालूम कितनी शताब्दियों में विवाह की उत्पत्ति और उन्नति हुई। उन विद्वानों के मत में विवाह का यही पूर्वापर इतिहास है।

किन्तु उपरोक्त कल्पना, कल्पना-मात्र है, लेखकों के वाणी-विलास के अतिरिक्त उसमें और कुछ नहीं है। कम से कम भारतीय आर्यों के लिए यह सिद्धान्त कोरी कल्पना है। संसार में वेदों के समान और कोई साहित्य आज तक उपलब्ध नहीं हो सका है, और उनमें इस क्रमोन्नति के विषय में चर्चा तक नहीं है। इसके प्रतिकूल विवाह के वैदिक मन्त्रों से यह स्पष्ट विदित होता है कि वैदिक समाज में विवाह का बन्धन पूर्ण रूप से स्थिर हो गया था। लगभग सभी वेदज्ञों ने इसे मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है। यही नहीं, वैदिक विवाह का आदर्श जितना ऊँचा विदित होता है, उसमें स्त्रियों का स्थान जितना उदार था, संसार उससे आगे एक पग भी नहीं बढ़ सका है। विवाह में वर-वधू के पाणिग्रहण का वैदिक मन्त्र इस प्रकार है :—

ओं समञ्जन्तु विश्वेदेवाः समापो हृदयानि नौ। सं मातरिश्वा सं धाता समुदेष्ट्री दधातु नौ॥ ऋग्वेद मं० १० सू० ८।

—श्रीमद्दयानन्द विरचित संस्कार-विधि: पृ० १३७

इस मन्त्र का अर्थ यह है कि वर वधू का पाणिग्रहण यह कह कर करे कि—"हे विश्वेदेव आप निश्चय जानें कि हम दोनों का हृदय पानी के समान एक हो गया है। जिस प्रकार प्राणवायु हमको प्रिय है वैसे ही हम एक दूसरे से प्रसन्न रहेंगे। जिस प्रकार परमात्मा जगत् का धारण करता है वैसे हम एक दूसरे का धारण करेंगे।" इत्यादि।

फिर दूसरा मन्त्र उसी में यों है :—

ओं गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। भगो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्यं त्वादुर्गार्हपत्याय देवाः॥

——ऋ० मं० १० सू० ८५ मन्त्र ३६

इसका अर्थ है—"हे वरानने, सौभाग्य के लिए मैं तेरा हाथ पकड़ता हूँ। तू मुझ पति के साथ वृद्धावस्थापर्यन्त सुख से रह। तुझे परमेश्वर ने मुझको गृहस्थाश्रम के लिए दिया है जो ऐश्वर्यवान्, प्रकाशस्वरूप और जगत् को धारण करने वाला है।" फिर ब्राह्मण भाग का एक मन्त्र यों है :—

ओं ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवं विश्वमिदं जगत् ध्रुवासः। पर्वता इमे ध्रुवा स्त्री पतिकुले इयम्। १। ६। ६

ध्रुवतारा को देखने के पश्चात् वर वधू के मस्तक पर हाथ रख कर कहता है कि "जिस प्रकार यह आकाश स्थिर है, पृथ्वी स्थिर है, सारा जगत् स्थिर है और पहाड़ स्थिर हैं, उसी प्रकार यह स्त्री हमारे कुल में स्थिर रहे।" क्या इससे भी विवाह की स्थिरता का और कोई दृढ़ प्रमाण खोजना आवश्यक है ?

इसी प्रकार अनेकानेक मन्त्रों से वेदों में बारम्बार पति-पत्नी की समानता, पवित्रता और एकता के ऊपर विशेष ज़ोर दिया गया है। कुछ दिन पहले यूरोपीय

विद्वान् और उनके पूर्वीय अन्धभक्त वेदों को गड़रियों और चरवाहों के गीत मानते थे; परन्तु इधर की गवेषणाओं ने यह भलीभाँति सिद्ध कर दिया है कि वैदिक-युग का मानव-समाज स्थिर, समुन्नत और सुसभ्य था। विद्या, वाणिज्य, साम्राज्य और राष्ट्र आदि सभ्यता के भिन्न-भिन्न अङ्गों की दृढ़ता हो चुकी थी। ऐसी स्थिति में विवाह-बन्धन का न रहना स्वभावतः असम्भव है। इसके प्रतिकूल वेदों से सिद्ध है कि उन दिनों स्त्रियों का बाल-विवाह नहीं होता था, उन्हें अपने अनुरूप वर चुनने का अधिकार था एवं पति-पत्नी का सम्बन्ध विवाह-संस्कार के द्वारा अत्यन्त दृढ़ था। तब उपरोक्त श्वेतकेतु के उपाख्यान में स्त्री-पुरुषों की अनाचारिता का जो आभास देख पड़ता है वह या तो कपोलकल्पित है अथवा वेदों से भी किसी पूर्व-समय के लिए (जिसका हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है) सत्य हो सकता है। या उत्तर कुरु आदि देशों की असभ्य जातियों के लिए महाभारत के समय में भी उपयुक्त हो सकता है। आजकल भी संसार में अनेक ऐसी असभ्य जातियाँ हैं जिनमें विवाह-बन्धन की दृढ़ता नहीं है। किन्तु इसलिए यह नहीं माना जा सकता है कि उन देशों की सारी जातियाँ वैसी ही असभ्य हैं। हमारे कहने का अभिप्राय यही है कि मानव-समाज का जहाँ तक हमें ज्ञान है, विवाह अनादि काल से ही एक स्थिर बन्धन है। विशेषतः प्राचीन हिन्दुओं (भारतीय आर्यों) के विवाह का आदर्श संसार में बहुत ही उच्च था।

ऐसी स्थिति में पैशाचादि अधम विवाहों की उपपत्ति अवश्य ही अवनति के क्रम से होगी, न कि उन्नति के क्रम से। 'ब्राह्म' विवाह ही शुद्ध वैदिक विवाह है और आदि-काल में यही एकमात्र विवाह रहा होगा। किन्तु जब वैदिक कर्मकाण्डों की अत्यधिक उन्नति हुई और यज्ञों का मान बहुत बढ़ गया, तो वैदिक यज्ञों में दक्षिणा-स्वरूप कन्या पुरोहित को दी जाने लगी और उसी का नाम 'दैव' विवाह रक्खा गया। 'ब्राह्म' विवाह और इसमें अन्तर भी थोड़ा ही रहा होगा। स्त्रियों को वैदिक युग में समानाधिकार और स्वतन्त्रता थी, वे सब प्रकार से योग्य थीं, इसलिए विदुषी स्त्रियाँ अथवा राजकन्याएँ अपना 'गान्धर्व' विवाह भी करती होंगी, इसमें सन्देह नहीं। यह विवाह आगे चल कर स्मार्त-काल में जैसा अप्रशस्त माना जाने लगा, वैदिक युग में वैसा नह था। 'प्राजापत्य' लगभग 'गान्धर्व' का ही नामान्तर है। वेदों में 'गोमिथुन' अथवा 'सौरथ' कन्या के संरक्षक को देने की आज्ञा है, इसलिए आर्ष-विवाह भी वेद-सिद्ध विदित होता है, किन्तु यह किसी प्रकार कन्या-विक्रय नहीं था। जैमिनि सूत्रों से भी यह बात सिद्ध होती है। रह गए 'आसुर' 'राक्षस' और 'पैशाच' विवाह। वेदों में इन विवाहों की चर्चा नहीं है। वैदिक परिभाषा के अनुसार ये विवाह अप्रशस्त (Voidable) ही नहीं, निषिद्ध (Void) भी जँचते हैं। ये सचमुच वेद-विरुद्ध हैं। इसलिए इनके विषय में यही सत्य विदित होता है कि आर्यों ने इन्हें अनार्यों से स्मार्तकाल में ग्रहण किया होगा। वेदों में दस्यु आदि कितनी अनार्य जातियों की चर्चा है, जिनसे आर्य सर्वदा शत्रुता और भिन्नता रखते थे। वैदिक समय में आर्यों की अनार्यों से किसी प्रकार पटरी नहीं बैठी, किन्तु उसके पश्चात् सूत्र-काल में दोनों की कुछ पारस्परिकता हुई और उन्हीं की देखादेखी 'आसुर' विवाह का आरम्भ हुआ। अनार्यों में कन्या-विक्रय की परिपाटी रही हो तथा पूर्व से आर्य लोग इसका विरोध करते आए हों तो आश्चर्य नहीं। किन्तु शताब्दियों के एकत्र वास से और क्रमात् दोनों जातियों का सम्मिश्रण हो जाने से यह प्रथा आर्यों में घुस गई हो तो यह असम्भव नहीं। 'पैशाच' विवाह क्षत्रियों के लिए प्रशस्त कहा गया है, यद्यपि साधारणतया यह अप्रशस्त है। इससे यह सिद्ध होता है कि जब भारतवर्ष में साम्राज्य-वाद बढ़ गया, क्षत्रियों की मदान्धता और विलासिता उच्छृङ्खल हो चली, तो उन्हीं लोगों ने इसको अपनाया। 'पैशाच' विवाह केवल स्त्रियों की पवित्रता की अद्भुत कल्पना पर अवलम्बित हुआ। हर समाज में दुष्ट और उचक्के होते ही हैं, इसलिए यदि किसी दुष्ट ने छल से भी कन्या के सतीत्व को नष्ट कर दिया तो उसकी पवित्रता उसी दुष्ट से विवाहित होने में बच सकती थी। किसी स्त्री को एक ही पुरुष से संयुक्त होना चाहिए एवं दूसरे पुरुष की कल्पना भी उसकी पवित्रता में धब्बा लगाती है, इस प्रकार की धारणा ही 'पैशाच' विवाह की विवशता का कारण है। किन्तु ये विवाह चाहे जिस प्रकार आर्यों में स्वीकृत हुए हों, सर्वदा अप्रशस्त थे। काम-वासना की अधिकता के कारण ही 'गान्धर्व' विवाह को स्मार्त-

काल में अप्रशस्त माना गया, किन्तु वैदिक समय में यह किसी प्रकार निन्दित नहीं था। इसलिए हम देखते हैं कि जैसे-जैसे सभ्यता का प्रपञ्च बढ़ता गया, वैदिक यज्ञ-याजनों की प्रधानता होती गई, आर्यों का अनार्यों के साथ मिश्रण होता गया, स्त्री-पवित्रता की पराकाष्ठा होती गई, एवं स्त्रियों की सत्ता गिरती गई, त्यों-त्यों भिन्न-भिन्न विवाहों की रीति स्वीकृत हुई। सुतराम् इन भेदों में समाज के उत्थान और पतन का दृश्य विद्यमान है। यदि हम समाज की वर्त्तमान अवस्था पर दृष्टिपात करें तो विवाह के अन्यान्य असंख्य भेद मिलेंगे, जिनकी कुछ चर्चा आगे की जायगी। श्वेतकेतु के उपाख्यान से ही सिद्ध है कि उन दिनों उत्तर कुरु आदि के देशों में कुछ ऐसी असभ्य जातियाँ थीं, जिनमें विवाह-बन्धन का पूर्णतः अभाव था। वे जातियाँ अवश्य अनार्य थीं और उनका मिश्रण कालान्तर में ही हुआ था। इसलिए पैशाचादि विवाहों का भेद हमारे शास्त्रों में रहना असम्भव नहीं है। उनसे यह सिद्धान्त कदापि नहीं निकाला जा सकता कि प्राचीन आर्यों में विवाह-बन्धन का अभाव था। यदि यह सिद्धान्त किसी प्रकार सत्य हो तो वह उन्हीं अनार्यों के लिए होगा, या किसी ऐसे प्राग्वैदिक युग के लिए, जिसका ज्ञान इस संसार में न तो किसी को है और न होने की सम्भावना है।

जस्टिस द्वारिकानाथ मित्र श्वेतकेतु के इस उपाख्यान को आर्यों के लिए कपोल-कल्पित मानते हैं तथा विवाह-बन्धन को आर्य-जाति में सनातन-काल से स्थिर बतलाते हैं। वे स्पष्ट लिखते हैं :—

"We are unable, however, to agree with these writers that the legend of *Svetaketu* represents a very early stage of Aryan civilization. We are inclined to think that these writers have come to this conclusion, arguing from analogy as it were, from the condition of other primitive societies.........It seems to us, however, that the legend of *Svetaketu* disclosed the ancient condition of the society of the non-Aryans."

"हमारा इन लेखकों से यह मतभेद है कि हम इनके साथ यह नहीं मानने को तैयार हैं कि श्वेतकेतु का उपाख्यान आर्यों की अति प्राचीन सभ्यता का निदर्शन है। हमें विदित होता है कि ये (पाश्चात्य) लेखक अन्यान्य प्राचीन समाजों की देखादेखी—आर्यों के लिए ऐसा मान बैठे हैं। हमारे मत से श्वेतकेतु का उपाख्यान अनार्यों की सामाजिक स्थिति का निदर्शन है।"

आगे चल कर वे कुल पाश्चात्य लेखकों के इस भ्रामक विचार का खण्डन इस भाँति करते हैं :—

"छान्दोग्योपनिषद् में उद्दालक और श्वेतकेतु बड़े ही प्रसिद्ध व्यक्ति हैं और यदि इस उपाख्यान को आर्य-सभ्यता से कोई सम्बन्ध रहता तो उस उपनिषद् में इसकी कुछ न कुछ चर्चा अवश्य होती। इस उपाख्यान से समाज की जो अनाचारपूर्ण अवस्था विदित होती है, वह अन्यान्य आदिम समाजों में विवाह-बन्धन स्थापित होने के पूर्व अवश्य वर्त्तमान थी—ऐसा समाज-शास्त्र के पुरातत्ववेत्ताओं ने गवेषणाओं द्वारा सिद्ध कर दिखाया है। तब हम लोग इसी सिद्धान्त पर पहुँचते हैं कि आर्यों में विवाह-बन्धन वेदों के समय से ही स्थापित था और विवाह की गवेषणा आर्यों के लिए प्राग्वैदिक युग के लिए ही सम्भव हो सकती है। श्वेतकेतु का उपाख्यान अनार्यों के लिए सत्य हो सकता है, किन्तु इस कथा को कपोलकल्पित मानना ही ठीक है।" उनका अभिप्राय यही है कि आर्यों में वैसी स्थिति वेदों के समय में भी नहीं थी, इसलिए महाभारत के समान अर्वाचीन ग्रन्थ में कथित इस अनाचारिता का उपाख्यान या तो अनार्यों से सम्बन्ध रखता है अथवा कल्पित है। राजा पाण्डु कुन्ती को नियोग के लिए विवश कर रहे हैं, इसलिए अनार्यों की इस कहानी से श्वेतकेतु और उद्दालक जैसे महान् व्यक्तियों का गठजोड़ा विशेष उद्देश से ही किया गया है, जिससे नियोग की अनार्य-प्रथा आर्यों को भी स्वीकृत हो सके। सुतराम् हमारा मत यह है कि मनुस्मृति के क्रमानुसार ही इन विवाहों की पारस्परिक प्राचीनता सत्य है, न कि उसके विपरीत क्रम से। अर्थात् आदि में केवल ब्राह्म विवाह ही रहा होगा और सबसे अन्त में पैशाच विवाह की रीति प्रचलित हुई होगी। आदि-काल में एकमात्र वेदों की आज्ञा ही विधि होने के कारण ब्राह्म विवाह का सर्व-प्रथम प्रचलित होना स्वाभाविक भी है।

प्रबला

[रचयिता—श्री० रामचरित जी उपाध्याय]

(१)

आरम्भ-श्री तुम हो जग की,
और जगत की इति-श्री हो तुम ।
धृति हो क्षिति की, स्मृति हो श्रुति की,
मति की गति, विक्रम-ही हो तुम ॥

(२)

आदि शक्ति हो, मुक्ति भुक्ति हो,
उक्ति युक्ति हो, संस्तुति हो तुम ।
निधियों की निधि, ऋद्धि सिद्धि हो,
विधि की कर्त्री, विधि-कृति हो तुम ॥

(३)

चञ्चलता की लता लचीली,
सुख-सरिता की सुषमा हो तुम ।
गुण-गण-मणि की मृदु माला हो,
अनुपमेय की उपमा हो तुम ॥

(४)

नय मय की हो विनय-प्रणयिनी,
बलशाली की बाला हो तुम ।
भाला हो तुम अरि के उर में,
खल-दल-बल में ज्वाला हो तुम ॥

(५)

पातिव्रत्य के व्रत पालन से,
रवि के पुर में सविता हो तुम ।
नव-नव भव्य-भाव-भाविनि हे,
कवि के उर में कविता हो तुम ॥

(६)

रति, रति-पति की सम्पति तुम हो,
प्रति प्रतिभा की प्रतिमा हो तुम ।
सहमत के हित सम्मति तुम हो,
अंहति-मा संहति-मा हो तुम ॥

(७)

सकल-कला-कल-कान्ति-कलित हो,
कीर्ति-कौमुदी-क्रीड़ा हो तुम ।
बुद्धिमती हो, विधुवदना हो,
विबुध-वन्द्य वर-व्रीड़ा हो तुम ॥

(८)

वीर-सुता वर वीर भामिनी,
वीराम्बा हो, वीरा हो तुम ।
बैरि-व्यूह-विद्रावण-वज्रे,
हृद्य-हृदय हो, हीरा हो तुम ॥

(९)

गुण-गरिमा की गिरिजा तुम हो,
कुजन, कुचर को काली हो तुम ।
पुण्य-पुञ्ज की प्रसूतिका हो,
प्रेम-पिपासु-प्रपाली हो तुम ॥

(१०)

सिंह-सुता हो शौर्य-शक्ति की,
वेद-विदित वर वाणी हो तुम ।
कुटिल कुचाली-कुल-कर्तन को,
क्रूर कठोर कृपाणी हो तुम ॥

(११)

प्रमिति-प्रज्ञा हो तुम प्रण की,
प्रकृति-प्रपञ्च-प्रवीणा हो तुम ।
विबुध-विबोधित वरालाप की,
वन्दित बन्धुर वीणा हो तुम ॥

(१२)

उन्नति-मूर्ति, स्फूर्ति जागृति की,
विमलाशय की कमला हो तुम ।
अबला तुम्हें कौन कहता है ?
सबला ही क्यों, प्रबला हो तुम !!

समाज का अग्निकुण्ड

[ले० अध्यापक श्री० ज़हूरबख़्श जी 'हिन्दी-कोविद']

प्रिय रमेश,

इधर कॉलेज से लौटने के पश्चात्, अब तक तुम्हारा कोई पत्र नहीं मिला। समझ में नहीं आता कि तुमने पत्र क्यों नहीं लिखा। घर में तो सब कुशल है न? किसी सामाजिक गोरख-धन्धे में तो व्यस्त नहीं हो गए? तुम्हें सामाजिक पहेलियाँ बहुत रुचती हैं। जब सामाजिक प्रश्नों या घटनाओं पर विचार और बहस करते-करते तुम क्रोधान्ध हो जाते हो—पागल हो जाते हो, तब सच मानो, तुम्हें बक-झक करता देखकर आवेग में मेरा मन नाच उठता है। तुम पागल हो जाओ, सिड़ी हो जाओ, विचार-धारा में बह जाओ—इसी विचार से आज मैं इस पत्र में एक ऐसी सत्य घटना की चर्चा करूँगा, जो हमारे समाज की पशु से भी अधम अवस्था का कुछ परिचय देती है।

संसार में स्त्री-पुरुष का व्यभिचार तो सभी जगह होता है, पर पुरुष-पुरुष का व्यभिचार भारत को छोड़ कदाचित् कहीं न होगा। कॉलेज में तुमने देखा है, कितने ही विद्यार्थी एक दूसरे को देख कर पागल हो जाते हैं, परस्पर घृणित प्रेम-चेष्टाएँ करते वे अघाते नहीं, और चूमा-चाटी करते-करते जीवन की कितनी ही अमूल्य घड़ियाँ धूल में मिला देते हैं। परन्तु इन बातों को जाने दो, ये तो अब नित्य की सरल और स्वाभाविक घटनाओं में शामिल हो गई हैं। मैं तुम्हें यहाँ यह दिखलाना चाहता हूँ कि इस अस्वाभाविक व्यभिचार के फन्दे में फँस कर मनुष्य अपना कितना कल्पनातीत पतन कर सकता है, अपनी घृणित आकुलता को शान्त करने के लिए वह 'पशु से भी अधम होकर ऐसे-ऐसे कार्य कर डालता है कि शायद उसे देख कर घृणा और भयङ्करता भी काँप उठेगी। अपनी अस्वाभाविक विह्वल वासना की तृप्ति के हेतु वह अपने ही स्वाभिमान का—अपनी ही मर्यादा और लज्जा का—नाश नहीं करता, अपितु अन्धे के सदृश अपने घर की कुल-लक्ष्मियों के सतीत्व को, उनकी पवित्रता को, उनकी महानता को, उनके आत्म-गौरव को और उनकी लज्जाशीलता को निर्दयतापूर्वक अपने पैरों से कुचल डालता है और कुत्तों के समान घृणित जीवों के पैरों तले कुचलवा डालता है। कॉलेज से लौटने के पश्चात् यहाँ ऐसी घटना देखने में आई। मैं नहीं सोच सकता था, तुम भी नहीं सोच सकते कि संसार में ऐसी घटनाओं का घटित होना सम्भव है, परन्तु अविश्वास के लिए गुआइश नहीं है। उस दिन जो कुछ देखा-सुना है, वह इस जीवन में भूलने की वस्तु नहीं है। यदि हमारे समाज में ऐसी घटनाएँ हो सकती हैं और हम उनके सिर पर पाद-प्रहार करने के लिए समुद्यत नहीं होते तो बस, समझ लो हो चुका समाज का कल्याण और उत्थान!

तुम उमेश को जानते हो? वही उमेश, जो थर्ड-इयर में पढ़ता था, और कॉलेज में बहुधा हम लोगों से मिला करता था। तुम्हें यह भली-भाँति मालूम है कि उमेश कैसा हँसमुख, स्नेही, सच्चरित्र, उत्साही और वीर-प्रकृति का नवयुवक है। कॉलेज में हमें कभी उसके चरित्र पर सन्देह करने के चिन्ह प्राप्त नहीं हुए। कॉलेज के नवयुवकों की अस्वाभाविक प्रेम-लीलाएँ देख कर उसका रक्त जैसे जोश से उबल उठता था। हमने कभी

यह न सोचा था कि इतने शीघ्र इस अस्वाभाविक प्रेम-लीला के कारण बेचारे उमेश का जीवन मृत्यु के क्रोड़ में जाने के लिए समुत्सुक हो उठेगा। यह तो तुम्हें मालूम ही है कि उस दिन कॉलेज बन्द होने के पश्चात् वह मेरे ही साथ घर को रवाना हुआ था। रास्ते में वह कैसा प्रसन्न था, उसके नेत्रों में, उसके अधरों पर—उसकी बात-बात में उमङ्गें नाच रही थीं। उस समय कौन जानता था कि उमेश की ये उमङ्गें क्षणस्थायी हैं, उसका यह हँसता हुआ जीवन कल ही गहरे मौन हाहाकार में बदल जायगा।

घर आने के दूसरे ही दिन मैंने सुना कि उमेश ने दो ख़ून कर डाले हैं—एक तो पिता का और दूसरा मोहल्ले में रहने वाले एक तरुण का। उमेश जैसा सच्चरित्र और सुशील युवक ख़ून कर डाले और वह भी अपने पिता का—सहसा हृदय को विश्वास न हो सका। उमेश के पिता वृद्ध थे, आजीवन हाईस्कूल में शिक्षक का कार्य करने के पश्चात् उन्होंने नेकनामी के साथ पेन्शन प्राप्त की थी। जहाँ तक मैं जानता था, उमेश के पिता एक आदर्श व्यक्ति थे। उमेश मेरे पुराने मित्रों में है, उसने कभी मुझसे अपने पिता के सम्बन्ध में किसी प्रकार की शिकायत नहीं की। उमेश ने ऐसे सज्जन पिता की हत्या कर डाली और उसके साथ ही एक नवयुवक की भी—यह ऐसी पहेली थी जिसे समझ लेना मेरे लिए टेढ़ी खीर थी। मैं तत्क्षण उमेश के घर की ओर चल पड़ा। रास्ते में मालूम हुआ कि समाचार सत्य है और पुलिस उमेश को गिरफ़्तार कर ले गई है। या भगवन्! उमेश को क्या सूझी जो उसने अपने परम पूज्य पिता की हत्या कर डाली। जिसे मैं सुशील समझता था, वह तो पूरा दुश्शील निकला। मैं नहीं जानता था कि इस सोने के पात्र में हलाहल भरा हुआ है। उफ़! अधम उमेश! ऐसा घोर पाप करते तेरी आत्मा तनिक भी न झिझकी! पिता पर शस्त्र उठाने के पूर्व ही तेरे नेत्र प्रकाश-विहीन क्यों न हो गए? तेरे हाथ कट कर क्यों न गिर पड़े—यही सब सोचता हुआ मैं घर लौट गया।

दूसरे दिन पुलिस ने चालान पेश किया। उक्त घटना नगर-निवासियों के कौतूहल का विषय हो रही थी। बहुत से लोग अपने कौतूहल की निवृत्ति के लिए कचहरी की ओर जा रहे थे। कचहरी में क्या गुल खिलता है, उमेश अपनी सफ़ाई देने के लिए क्या कहता है—यह सब जानने की इच्छा से मैं भी कचहरी की ओर चल पड़ा। भाई रमेश! तुम आश्चर्य करोगे, मैं तो उमेश का इज़हार सुन कर दङ्ग रह गया। उसका इज़हार सुन कर मुझे तो ऐसा विदित होने लगा, जैसे पवित्रता और निर्भयता का दूत अपनी वज्र-गम्भीर वाणी से न्यायालय के वातावरण में स्पन्दन क्रिया कर रहा हो। मैंने समझा था कि उमेश पशु से भी अधम है, पर उसे देखते ही यह धारणा निर्मूल हो गई। उसके मुखड़े से जैसे पवित्रता, वीरता, निर्भयता और ओज के भावों की वर्षा हो रही थी। मजिस्ट्रेट के पूछने पर उमेश ने जो कुछ कहा उसे मैं अक्षरशः लिखने की चेष्टा करूँगा। उसका वक्तव्य पढ़ कर तुम्हारे नेत्र खुल जायँगे, तुम्हारे सामने हमारे समाज के पतन का वह भयङ्कर और कारुणिक चित्र उपस्थित होगा, जिसे मनुष्य कहलाने वाला व्यक्ति कल्पना के संसार में भी नहीं देख सकता। उसे देखकर तुम्हारे हृदय से एक दर्द-भरी आह निकल पड़ेगी और निश्चय ही तुम यही कहोगे—'भगवान् ही हमारे समाज की रक्षा करे!'

उमेश ने कहा—"मेरा नाम उमेशचन्द्र पाण्डेय है। मैं धनेशचन्द्र पाण्डेय का पुत्र हूँ, जिसकी हत्या मैंने पिछली रात्रि में की है। धनेश मेरा पिता था—यह कहते मुझे हार्दिक क्लेश होता है। कल ही मुझे विदित हुआ कि उसमें पिता होने की योग्यता नहीं थी। मैं इसे भगवान् की दया के सिवा और कुछ नहीं कह सकता कि वह अनेक पुत्रों और पुत्रियों का पिता हो गया। उसने मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया, जिसे सहना मेरी मानवी प्रकृति के सर्वथा विरुद्ध था। उसके उस व्यवहार का बदला यही हो सकता था कि उसे जान से मार दिया जाय, और वही मैंने किया भी। यदि मैं ऐसा न करता तो मैं कम से कम अपने साथ, अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करता। अदालत को मेरी बात सुन कर कदाचित् आश्चर्य हो रहा होगा, पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि मेरा कार्य उतना आश्चर्यमय नहीं, जितने वे कारण हैं, जिनके आघात से विह्वल, उद्विग्न और पागल होकर मैंने पिता-जैसे गुरु-पदार्थ का गला काटने में भी सङ्कोच नहीं किया।

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई-स्कूल तथा इन्टरमीजियट कॉलेज की कुछ पुरानी छात्राएँ, जो २० मई, सन् १९२९ को मनाई जाने वाली स्कूल की सिलवर जुबली के उत्सव में सम्मिलित हुई थीं। इनमें से कुछ अब भिन्न-भिन्न यूनिवर्सिटियों की ग्रेजुएट हैं।

FINE ART PRINTING COTTAGE ALLAHABAD

कविता की अनमोल पुस्तक

चित्तौड़ की चिता

[रचयिता—प्रोफ़ेसर रामकुमार लाल जी वर्मा, एम० ए०]

कविता में ऐसी सुन्दर वीररस में पगी हुई पुस्तक हिन्दी-संसार में अब तक प्रकाशित नहीं हुई थी। "कुमार" महोदय की कविताओं का जिन्होंने 'चाँद' द्वारा रसास्वादन किया है, वे इन कविताओं की श्रेष्ठता का अभी से अनुभव कर सकते हैं।

यह वह पद्यमय पुस्तक है, जिसे पढ़कर एक बार उन लोगों में भी शक्ति का सञ्चार हो जाता है, जो जीवन से विरक्त हो चुके हैं। वीर प्रसविनी चित्तौर की माताओं का यदि आप स्वार्थ-त्याग, देशभक्ति तथा कर्म-निष्ठा का ज्वलन्त उदाहरण देखना चाहते हैं, यदि आप चाहते हैं कि भारत का मातृ-मण्डल भी इन वीर-क्षत्राणियों के आदर्श से शिक्षा ग्रहण कर अपने निरर्थक जीवन को भी उसी साँचे में ढाले; यदि आप चाहते हैं कि कायर बालकों के स्थान पर एक बार फिर वैसी ही आत्माओं की सृष्टि हो; जिनकी हुङ्कार से एक बार मृत्यु भी दहल जाया करती थी तो इस वीररस-पूर्ण ऐतिहासिक पुस्तक को स्वयं पढ़िए तथा घर की स्त्रियों और बच्चों को पढ़ाइए—सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २) रु०; स्थायी ग्राहकों से १॥)रु० मात्र !

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

—इलाहाबाद—

"कल ही मैं कॉलेज बन्द हो जाने पर घर लौटकर आया और रात्रि को ही मैं इस नृशंस-हत्या-कार्य को सम्पन्न करने के लिए बाध्य किया गया। कॉलेज से लौटते समय रास्ते में मेरे ख़्याल में क्षण भर के लिए भी यह बात न आई थी कि यों पलक मारते मेरा हँसता हुआ भाग्य दग़ा दे जायगा। कितनी उमङ्गें, कितनी आशाएँ और कितनी आकांक्षाएँ लेकर मैंने घर के द्वार पर पैर रक्खा था, परन्तु ये सब कितनी विश्वासघातिनी और क्षण-भङ्गुर होती हैं, यह थोड़ी देर पश्चात् ही मुझे विदित हो गया। घर में प्रवेश करने पर मैंने देखा कि वह सुन्दर शान्ति से मुस्करा रहा है, कहीं किसी प्रकार अशान्ति नहीं है—यह देखकर मेरा जी शान्त हुआ। सब लोगों से मिल-भेंट कर मैं अपने कमरे में चला गया। सोचा था, गौरी वहाँ अपनी मुस्कराहट के साथ मेरा स्वागत करने के लिए समुपस्थित होगी। पर कमरे में पहुँच कर मैंने देखा कि वहाँ गौरी नहीं है, कमरे की भी वह रौनक़ नहीं है! यह देख हृदय सहसा चञ्चल हो उठा! पहले तो ऐसा नहीं होता था। मेरे आगमन का समाचार सुनते ही गौरी कमरे को सजा रखती थी और ज्योंही मैं कमरे में प्रवेश करता, त्योंही वह पुलक के आवेग में मुझसे इस भाँति आ लिपटती जिस भाँति बहुत देर से बिछुड़ा हुआ बालक अपनी माँ को देखते ही उससे जा लिपटता है। गौरी मेरी धर्म-पत्नी है। दो वर्ष हुए मेरे साथ उसका विवाह हुआ था। वह ग़रीब माता-पिता की पुत्री है। विवाह होने के पश्चात् वह दो-एक बार ही और बहुत थोड़े दिन के लिए मायके जाने पाई है। यद्यपि वह दीन माता-पिता की पुत्री है, पर मैंने कभी उसमें दोष की छाया भी नहीं देखी। वास्तव में गौरी के रूप में मैंने स्नेह की—सेवा-धर्म की—ऐसी प्रतिभा पाई है जिसे संसार के बहुत ही थोड़े सौभाग्यशाली सज्जन प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। गौरी-ऐसी पवित्र गृहलक्ष्मियाँ संसार में शायद ही देखी जाती हैं। गौरी के साथ मेरे दाम्पत्य जीवन की थोड़ी सी घड़ियाँ कैसे समारोह-पूर्वक, कैसे उल्लास-पूर्वक बीती हैं, यह मैं ही जानता हूँ। गौरी को अपने सामने देखकर मैं स्वर्ग के सुख को भूल गया हूँ, संसार की समस्त विभूति-कल्पना को भूल गया हूँ, और अपने आपको भूल गया हूँ। वही मेरे प्राणों की प्राण गौरी मुझे कमरे में नहीं मिली। उसने विह्वलता के आवेग में आकर मेरे गले में अपनी मृणाल-जैसी भुजाएँ नहीं डालीं, उसने हँस कर 'अच्छे तो रहे—इतने दिन बाद इस अभागिनी की सुधि ली' कह कर मुझसे बात नहीं की। मेरा हृदय गौरी के इस अत्याचार को देखकर चञ्चल हो उठा। कपड़े उतार कर मैं एक आराम-कुर्सी पर लेट रहा और निरलस भाव से गौरी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा। पर वह नहीं आई—बड़ी देर हो गई। मेरी खिन्नता की सीमा न रही। सोचने लगा आख़िर बात क्या है, मैं घर में आ गया हूँ, फिर भी गौरी अपने हृदय को इस प्रकार वशीभूत करने में समर्थ हो गई! क्या वह मुझसे रुष्ट तो नहीं हो गई? पर अभी मैंने रुष्टता का कार्य ही क्या किया है? घर में प्रवेश करते समय मैंने वस्त्रों में लिपटी हुई उसकी मूर्ति की कुछ झलक अवश्य देखी थी। याद आता है उसके वस्त्र कुछ मलिन थे, तो क्या वह अस्वस्थ तो नहीं है? यही सब सोचता हुआ मैं अपने उस पिता नामधारी 'पशु से भी अधम' जीव के पास जा बैठा, जिसका गला पिछली रात्रि में मैंने निर्दयतापूर्वक काट डाला है। उसके प्रति मेरे हृदय में इतनी घृणा भरी हुई है, उसके प्रति मेरे रोम-रोम में ऐसी क्रोधाग्नि भरी हुई है कि यदि माया की लीला से वह सौ बार भी मेरे सामने शरीर धारण कर आ सकता, तो मैं प्रत्येक बार उसे काट डालता, फिर भी मेरी आग ठण्ढी न होती। यदि वह प्रत्येक बार नेत्रों में अश्रु भर कर मेरे पैरों पर गिर कर गिड़गिड़ाता, कातर वाणी में मुझसे जीवन की भिक्षा माँगता, तो भी मैं उसे क्षमा न करता। जी हाँ, उसका अपराध ऐसा ही भयङ्कर था। मेरा विश्वास है कि उसकी करतूत सुन कर घृणा और क्रोध के आघातों से अदालत का हृदय भी आहत एवं मूर्च्छित हो उठेगा। अस्तु—

"सन्ध्या हुई। ब्यालू के पश्चात् मैं पुनः अपने कमरे में पहुँचा। देखा, लालटेन आशा के समान टिमटिमा रही है, चन्द्र-ज्योत्स्ना के समान शुभ्र-शय्या बिछी हुई है, परन्तु गौरी फिर भी वहाँ नहीं है। मैंने लालटेन तेज़ कर दी। पलङ्ग पर जा लेटा और गौरी को उसके अक्षम्य अपराध की सज़ा देने की बात सोचने लगा। मैंने मान-लीला करने की ठान ली—अब गौरी से नहीं बोलूँगा,

वह मुझे मनावेगी, हाथ जोड़ेगी, मेरे पैर पड़ेगी, फिर जब वह आँखों में आँसू भर कर मुझसे कहेगी—प्यारे, मुझे क्षमा करो, मुझसे अपराध हो गया है, तब मैं कस कर उसे हृदय से लगा लूँगा और चुम्बनों की वर्षा से उसके अरुण-कपोल और भी लाल कर दूँगा। ऐसे ही मन्सूबे गाँठते हुए मैंने न जाने कितना समय बिता दिया। पर मुझ हारे-थके की आँखों में नींद ने बसेरा न लिया। अन्त में अलस-मन्थर गति से गौरी ने कमरे में प्रवेश किया। वह अपराधिनी के समान मेरे सामने आकर खड़ी हो गई। लालटेन के तीव्र प्रकाश में मैंने देखा—मेरी गौरी मेरे सामने मुरझाई हुई कमलिनी के समान खड़ी है। उसके मुखड़े पर न वह लाली है, न वह लावण्य, नेत्रों में न वह तेज है न वह चञ्चलता। उसके पतले अधर पर श्यामता छा गई है, अब उससे हँसी का झरना नहीं फूट रहा है।

"यह देखते ही मेरी मान-लीला समाप्त हो गई। हृदय धक् से हो गया। मैंने उसका हाथ पकड़ कर उसे खींच कर हृदय से लगा लिया और अधर पर प्रेम का एक चिन्ह छोड़ते हुए कहा—'प्रिये! यह तुम्हारी क्या दशा हो रही है? क्या बहुत दिन से बीमार हो? मुझे ख़बर क्यों नहीं दी?' गौरी के नेत्रों से टप-टप आँसू गिरने लगे। उसने रुँधे हुए कण्ठ से उत्तर दिया—'नाथ! क्या कहूँ! मैं बड़ी अभागिनी हूँ! मैं तुम्हारे उपयुक्त धर्म-पत्नी नहीं हूँ।' मेरे हृदय की धड़कन बढ़ गई, मैंने कहा—'गौरी' पहेली न बुझाओ, मैं जानना चाहता हूँ, मेरे हृदय की रानी आज इतनी दीना, मलिना और करुणा की मूर्त्ति क्यों हो रही है?'

"गौरी उसी तरह सिसकती हुई बोली—'प्यारे! अब तुम मुझ पर प्यार करना छोड़ दो! मैं भाग्यहीना नारी हूँ। मेरे भाग्य में आग लग गई है, मेरी कष्ट-कथा सुनने से केवल तुम्हें परिताप ही होगा और मेरा जला हुआ भाग्य और भी ज़ोर से जल उठेगा। मुझे भय है कि वह कहानी सुन कर तुम उस पर विश्वास न करोगे, और मैं तुम्हारे ये दो मीठे शब्द सुनने से भी वञ्चित रह जाऊँगी।' मैंने उद्विग्न होकर कहा—'प्रिये! मुझे अधीर न करो, मेरी आकुलता न बढ़ाओ, मैं जानता हूँ, मेरा प्यारा पुष्प क्यों इस प्रकार मुरझा गया है। तुम इतनी भयातुर न हो, मैं तुम्हारी बातों पर विश्वास करूँगा, मैंने तुम्हारी बात पर सन्देह ही कब किया है? रही स्नेह की बात, सो मैं तुम्हें अपने हृदय की सत्यता का परिचय कैसे दूँ, मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि मेरा हृदय तुम्हारा है, केवल तुम्हीं उसकी स्वामिनी हो। ज्यों-ज्यों तुम विलम्ब करती हो, त्यों-त्यों मेरी उत्सुकता बढ़ती जाती है। मैं तुम्हारे हृदय की व्यथा सुनने के लिए अधीर हो रहा हूँ। अब विलम्ब असह्य है।'

"गौरी मेरे पैर पकड़ कर बोली—'मेरे नाथ! न सुनो वह कहानी! मैं कहती हूँ तुम उस पर कदापि विश्वास न कर सकोगे, और यदि विश्वास करोगे ही तो तुम्हारे रोम-रोम में भयङ्कर दावानल धधक उठेगा, तुम उसे सुन कर पागल हो उठोगे! आज सात दिन होगए, मुझ पर भयङ्कर अत्याचार हो रहा है, असह्य अत्याचार हो रहा है; ऐसा अत्याचार हो रहा है जिसकी उपमा कदाचित् ही कहीं मिल सके।' यह सुनकर मैं उछल उठा। बोला—'गौरी! तुम पर अत्याचार! असह्य अत्याचार! असह्य है यह बात, बताओ तुम पर किसने अत्याचार किया है, क्या अत्याचार किया है? मैं उसकी बुद्धि ठिकाने पर लाऊँगा।' इस पर गौरी ने मुझे जो कुछ सुनाया, उसे सुन कर थोड़ी देर के लिए मैं सचमुच में हतप्रभ-सा—अवसन्न-सा रह गया। सचमुच वह कथा ऐसी थी, मनुष्य जिसकी कल्पना भी नहीं कर सकता, वह तो कल्पना के बाहर की वस्तु है! सचमुच में वह कथा ऐसी है, जिसे मनुष्य पागल-दिमाग़ की उपज कहने में सङ्कोच न करेगा।

"गौरी पुनः मेरे पैर पकड़ कर बोली—'मेरे नाथ! मैं नहीं जानती थी कि तुम्हारे जैसे देवता पति की पत्नी होने पर भी मेरा भाग्य ऐसा खोटा होगा। एक अनाथिनी, एक भिखारिणी, एक विधवा पर भी इतना अत्याचार नहीं हो सकता, जितना मुझ पर पिछले सात दिनों में हुआ है। एक दर-दर भटकती हुई भिखारिणी का स्वाभिमान तथा सतीत्व इतनी निर्दयता-पूर्वक नहीं लूटा जा सकता, जितनी निर्दयता-पूर्वक इन सात दिनों में मेरे स्वाभिमान और सतीत्व पर निष्ठुर आघात किए गए हैं।' गौरी के ये शब्द जलते हुए तीरों के समान मेरे हृदय में छिद गए। मैं उत्तेजित होकर बोला—'गौरी, गौरी! वह कौन है, जिसने तुम पर इतनी निष्ठुरता की है! शीघ्र बतलाओ,

मैं देखना चाहता हूँ कि वह कैसा मर्द है !' गौरी उसी भाँति रोती हुई बोली—'मेरे जीवन के आधार ! पहले मेरी सब कहानी सुन लो, फिर उस पर विचार करना। तुम दयानारायण को जानते हो न ?'

"मैंने जलती हुई साँस छोड़ कर कहा—'वही दयानारायण तो नहीं, जो पोस्ट-ऑफ़िस में क्लार्क है, और पिता के पास बहुधा आया करता है ?' गौरी ने उसी करुण-वाणी में कहा—'हाँ, वही दयानारायण ! उसी अधम ने मेरे देवता के अक्षत को अपवित्र किया है ! उसी पापी ने इसी तुम्हारे कमरे में, इसी तुम्हारी सुख-शय्या पर मेरे स्वामी की निधि चुराई है। शनिवार की बात है। सन्ध्या-समय भोजनोपरान्त मैं कार्यवशात् इस कमरे में आई। अभी मैं अपने वस्त्र ठीक करने भी न पाई थी कि दयानारायण ने इस कमरे में प्रवेश किया। मैं सहम कर सिमट कर एक ओर खड़ी हो रही। दयानारायण मेरी ओर बढ़ा, यह देख मैं द्वार की ओर बढ़ी कि बाहर निकल जाऊँ ! पर उसने झपाटे से किवाड़ भिड़ा दिए, मैं बाहर न निकल सकी। 'बड़ी कठिनाई से तुम मेरे हाथ में आ सकी हो, अब इस तरह नख़रेबाज़ी न करो। मुझे अपने दिल की हवस पूरी करने दो।' कहता हुआ वह पुनः मेरी ओर बढ़ा। मैंने बिगड़ कर कहा—'रे अधम ! पापिष्ट कुत्ते ! यदि अपना कल्याण चाहता है तो मुझे न छेड़, बाहर निकल जा, नहीं तो मैं शोर कर दूँगी।' वह ठहाका मार कर बोला—'इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। तुम ख़ूब शोर करो, पर विश्वास रक्खो, कोई तुम्हारी रक्षा करने न आएगा, अलबत्ता तुम्हारी ही बदनामी होगी। मैं तो पुरुष हूँ, मेरा क्या बिगड़ेगा ?' इसके पश्चात् उसने लपक कर मुझे अपनी भुजाओं में कस लिया।

"'जैसे गऊ अपने को कसाई के पञ्जे में फँसी देख प्राणों की ममता से व्याकुल हो उठती है, उसी तरह अपने सतीत्व को उस निष्ठुर के हाथों में देख मैं छटपटा उठी। मैंने चीख़ना-चिल्लाना शुरू किया।' तब मैंने बीच में ही बात काट कर गौरी से पूछा—'उस समय इस घर के सब आदमी मर गए थे क्या ? बहिन कहाँ थी, भाभी कहाँ गई थीं, पिता जी भी क्या घर में नहीं थे ?' गौरी बोली—'वही सब तो सुनाती हूँ। सभी लोग घर में ही थे। पर मेरे आर्त्त-क्रन्दन को सुनकर भी किसी ने नहीं सुना ! तुम्हारी भाभी और बहिन बग़ल वाले कमरे में थीं, वे मेरा करुण-रोदन सुनकर ठहाके मार रही थीं। और तुम्हारे पिता जी ? हाय ! उनकी कुछ न पूछो, एक पापी मेरे नारी-जीवन का सर्वस्व लूट रहा था और वे द्वार पर खड़े थे, मुझे धमका रहे थे—'चुप रह हरामज़ादी। शोर करके अपनी और इस घर की मर्यादा धूल में मिला रही है !'

"मेरा रक्त उबल रहा था, अब मुझसे सब्र न हो सका, मैंने डपट कर कहा—'गौरी ! तू यह क्या बक रही है ? कहीं मुझे किसी प्रकार के माया-जाल में तो नहीं फँसा रही है ? कहीं तू पगली तो नहीं हो गई है ? तेरा सतीत्व लुटे और मेरी बहिन तथा भाभी हँसती रहें और पिता जी तुझे धमकाया करें ! ऐसी अनाप-शनाप बातों पर कौन विश्वास करेगा ?' गौरी पुनः मेरे पैर पकड़ कर बोली—'मेरे नाथ ! मैं पगली नहीं हूँ, मेरा माथा घूम नहीं गया है, मैं सुध-बुध नहीं खो बैठी हूँ। जो कह रही हूँ होश-हवास में कह रही हूँ, अक्षरशः सत्य कह रही हूँ। मैं जानती थी कि मेरी बात सुनकर तुम मुझे पगली समझोगे, मेरी बात पर विश्वास न करोगे, इसीलिए कहते हुए डरती थी, पर मैंने कभी तुम्हारे सामने अपना हृदय नहीं छिपाया। और यह एक ऐसी बात थी, जिसे यदि मैं छिपाती, तो अपने सतीत्व के देवता के साथ विश्वासघात करती, अपनी आत्मा के साथ विश्वासघात करती। मैं तो यही जानती हूँ कि घर के सम्पूर्ण लोगों के सामने मेरी मर्यादा पर, मेरी इज़्ज़त-अस्मत पर डाका पड़ रहा था, और वे सब हँस रहे थे; क्यों हँस रहे थे, यह मैं नहीं जानती। मुझसे जितनी चेष्टा हो सकी, मैंने की, पर मेरा निर्बल शरीर उस बलवान् पापिष्ट-शरीर को पछाड़ने में समर्थ नहीं हो सका—मैं अपने सतीत्व की रक्षा करने में समर्थ नहीं हो सकी। दयानारायण मनमाने ढङ्ग से मुझे लूट कर हँसता-हँसता कमरे से बाहर निकल गया। तुम यह कहानी सुन कर आश्चर्य के संसार में भूले जा रहे हो ! पर इससे भी अधिक आश्चर्य की बात सुनो ! उस रात्रि के पश्चात् दयानारायण की धृष्टता इतनी बढ़ गई कि वह तुम्हारे पिता और तुम्हारी बहिन तथा भाभी के सामने घर में आता और उन्हीं के सामने मुझे

पकड़ कर ज़बरदस्ती एकान्त में ले जाता ! मैं संसार की समस्त करुणा आँखों में समेट कर इनकी ओर देखती, इनसे कहती—तुम लोगों के सामने मुझ पर यह अत्याचार हो रहा है, मुझ पर दया करो, मेरी रक्षा करो, पर वे सुन कर भी न सुनते, देख कर भी न देखते ! कई बार जी में यह आया कि आत्मघात कर इस नष्ट जीवन को धूल में मिला दूँ; पर केवल तुम्हारे दर्शनों की इच्छा से, तुम्हें अपने अपमान की कहानी सुनाने की आशा से, इन पापी प्राणों को शरीर में अटकाए रही। मेरे स्वामी ! मेरे हृदय-धन ! इस दासी का अपराध क्षमा करना ! मेरी साध पूर्ण हो गई है, अब मैं इस संसार में और न रहूँगी।' यह कहती हुई गौरी मेरे पैरों पर गिर पड़ी और बिलख-बिलख कर रोने लगी !

"गौरी की यह कहानी सुन कर मेरे शरीर के एक-एक कण में अग्नि-ज्वाला धू-धू करके जलने लगी ! मेरा चित्त ठिकाने नहीं रहा। हृदय में क्या-क्या भाव उठ रहे थे, उन्हें वर्णन करना मेरी शक्ति से बाहर है। ऐसा जान पड़ता था, जैसे समस्त संसार घूम रहा हो, उसके साथ ही मेरा कमरा घूम रहा हो और ऐसे कठिन समय में गौरी के साथ मैं भी किसी गहरे अन्धकार में भटक रहा होऊँ ! गौरी की कहानी पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं था। जिस भेद को कुलटा स्त्रियाँ भी, मृत्यु की भीषण विभीषिका देखकर भी अपनी जिह्वा पर लाने का साहस नहीं करतीं, उसे गौरी खुले हृदय से मेरे सामने खोल रही थी ! ऐसी गौरी कभी असत्यभाषिणी नहीं हो सकती—त्रिकाल में भी अपवित्र-हृदया और असती नहीं हो सकती ! मैंने गौरी को उठाकर हृदय से लगा लिया और कहा—'प्रिये ! अभी तुम्हारे मरने का समय नहीं आया है। यदि आवश्यकता पड़ेगी, तो हम दोनों साथ ही मरेंगे। प्रातःकाल होने दो, मैं पता लगाऊँगा कि किस कारण तुम पर इतना अत्याचार हुआ है, और यदि हो सकेगा, तो जिन लोगों ने तुम्हारे हृदय में अग्नि प्रज्वलित की है, उन्हीं के रक्त से उसे बुझाने की चेष्टा करूँगा।'

"सहसा बाहर से कुछ फुसफुसाहट सुनाई पड़ी। मैं चौंक उठा। तुरन्त बाहर निकला। अनुसन्धान से पता चला कि पिता के कमरे में ही फुस-फुस ध्वनि हो रही है। मैंने किवाड़ों की ओट से झाँक कर देखा, दयानारायण पिता से धीरे-धीरे बात कर रहा है। मैं साँस रोक कर उनकी बातें सुनने लगा। जो कुछ सुना उससे मुझे गौरी की कहानी में सन्देह करने की रत्ती भर भी गुन्जाइश दिखाई न दी। मेरा रक्त उबलने लगा ! गौरी पर क्यों इतना अत्याचार हो सका है, यह भी मुझे भली-भाँति मालूम हो गया। हाय ! मैं कैसे उस वार्तालाप की चर्चा आपके सामने करूँ ! दयानारायण ने पिता से कहा—'तुम्हारा उमेश आ गया है। मेरा आनन्द किरकिरा हो गया। अब वह नवेली, छबीली मुझे कैसे मिलेगी ?' पिता ने उत्तर दिया—'पागल हुए हो ! उमेश सदा तो रहेगा नहीं, कॉलेज खुलते ही बेचारा चला जायगा, फिर तो तुम्हारे ही पौ-बारह हैं। तब तक तुम मेरे साथ तथा घर की अन्य स्त्रियों के साथ दिल खोल कर विहार करो। हताश होने की क्या बात ?' दयानारायण हँस पड़ा।

"अब मुझमें और सब्र करने का सामर्थ्य नहीं रहा। मारे क्रोध के मैं पागल हो उठा। उलटे पैरों लौटा। रसोई-घर के किवाड़ खुले हुए थे, वहाँ सब्ज़ी काटने की छुरी पड़ी थी। उसे हाथ में ले मैं विद्युत्-वेग से उन नराधमों की ओर झपटा। मेरे एक ही धक्के से किवाड़ खुल गए ! जो दृश्य मैंने देखा, शिष्टता मुझे रोकती है कि मैं उसका उल्लेख कर अदालत का अपमान न करूँ। मुझे काल के समान सिर पर देख उन पापियों के प्राण सूख गए। दयानारायण अभी द्वार के उस पार भी न होने पाया था कि मेरी छुरी उसके बग़ल में प्रवेश कर गई। वह चीख़ कर धरती पर लोटने लगा। इसके बाद मैं धनेश की ओर बढ़ा, वह विवश था और एक कोने में खड़ा थर-थर काँप रहा था। मेरा काल-रूप देखते ही वह 'बेटा ! बेटा !' कहता हुआ मेरे पैरों पर गिर पड़ा। इसी समय छुरी मैंने उसके कण्ठ पर रख दी। इसके पश्चात् मैंने स्वयं पुलिस को अपने कार्य की सूचना दी। यदि मेरा यह कार्य क़ानून की दृष्टि में अपराध समझा जाय तो उसके लिए मुझे खेद नहीं है। मुझे तो इस बात का सन्तोष है कि मैंने एक महिला के सतीत्व को नष्ट करने वाले पापियों को यथेष्ट दण्ड दिया है। दो पापियों को संसार से हटाकर कुछ पुण्य ही प्राप्त किया है। यही मेरा वक्तव्य है।"

उमेश का वक्तव्य सुन वहाँ जितने मनुष्य थे, सभी उसकी ओर विस्मय-विमुग्ध दृष्टि से देखने लगे। किसी की दृष्टि में उसके प्रति घृणा के भाव न थे, किसी-किसी ने तो खुले शब्दों में प्रशंसा कर डाली—यहाँ तक कह डाला कि उमेश का कार्य कभी अपराधों की सूची में नहीं लिखा जा सकता।

इसके पश्चात् दूसरी पेशी हुई। उस दिन दयानारायण का इज़हार हुआ। बात यह कि दयानारायण को ऐसी साङ्घातिक चोट नहीं लगी थी कि उसकी मृत्यु हो जाती। अपने सौभाग्य से और डॉक्टरों की दया से उसके प्राण बच गए थे। दयानारायण कठघरे में आकर खड़ा हुआ। सभी लोग उसकी ओर जिज्ञासा और कौतूहल-मय दृष्टि से देखने लगे। आज पहले दिन से भी अधिक आदमी एकत्र थे, मैजिस्ट्रेट के पूछते ही दयानारायण ने अपना इज़हार देना शुरू किया :—

"मेरा नाम दयानारायण द्विवेदी है, मैं जाति का ब्राह्मण हूँ, मैं और पोस्ट-ऑफ़िस में क्लार्क हूँ। मैं जो कुछ कहूँगा, सच ही कहूँगा, अदालत के सामने एक शब्द भी झूठ बोलने की मेरी इच्छा नहीं है। उमेशचन्द्र ने मेरे साथ जो कुछ किया है, ठीक ही किया है। इसके लिए मैं उन्हें दोषी नहीं ठहरा सकता। मैंने कार्य ही ऐसा किया था। वैसी परिस्थिति में पड़ कर प्रत्येक मर्द वही करता, जो उमेशचन्द्र ने किया है। पर मैं अदालत को बतलाना चाहता हूँ कि मेरे या उमेशचन्द्र के अपराध का पूर्णतया उत्तरदायित्व मृत धनेशचन्द्र पाण्डेय पर ही है। यदि उसमें मनुष्यत्व की भावनाएँ होतीं, तो कभी यह परिस्थिति उत्पन्न न होती, जिससे मुझे या उमेश को आज अदालत में उपस्थित होने का अवसर प्राप्त होता। वास्तव में धनेश भद्र-वेश में एक अत्यन्त पतित जीव था, उसने अपना तो पतन किया ही, साथ ही उसने और कितने मनुष्यों को पतित किया है, इसकी ठीक-ठीक सूची अदालत में उपस्थित कर सकना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं अदालत को विश्वास दिलाता हूँ कि धनेश की पतन-कथा सुनकर वह आश्चर्य से अवसन्न रह जायगी। उस-जैसे पतित मनुष्य संसार में थोड़े ही मिलेंगे। मेरा तो विश्वास है कि वह 'पशु से भी अधम' जीव था। खेद है कि ऐसे पतित प्राणी के संसर्ग में पड़कर मैंने भी अपना कुछ कम नाश नहीं किया है। परन्तु इसका मूल कारण मेरी अज्ञानता और बाद में हृदय की दुर्बलता हो सकती है। अस्तु—

"बात उन दिनों की है, जिन दिनों मैं मैट्रिक में पढ़ता था। मैं प्रत्येक विषय में प्रवीण रहूँ, और कहीं परीक्षा में फ़ेल न हो जाऊँ, इस भय से मुझे एक ट्यूटर की आवश्यकता जान पड़ी। धनेश मोहल्ले में ही रहता था, उसने शिक्षक का कार्य करते-करते ही अपने जीवन के दिन बिताए थे, उससे मुझे अध्ययन में भली-भाँति सहायता मिल सकती थी। मेरे पिता ने उससे परामर्श किया, उसने बड़ी प्रसन्नता से मुझे पढ़ाना स्वीकृत कर लिया। मैं उसके घर पढ़ने-लिखने के विचार से जाने लगा। वास्तव में वह बड़ा ही अशुभ दिन था, जब मेरा धनेश के यहाँ जाना निश्चित हुआ था। धनेश मुझे बहुत चाहने लगा—मुझ पर इतना स्नेह करने लगा कि कोई अपने प्यारे बच्चे पर भी न करता होगा। वह मुझे बहुधा फल-फूल और मिठाइयाँ खिलाता और कभी-कभी पॉकिट-ख़र्च के लिए द्रव्य भी देता। इस प्रकार उसने मेरा मन अपनी मुट्ठी में कर लिया। बहुत शीघ्र—शायद एक ही सप्ताह में—उसने मेरी कामुक वासनाओं पर, जो अभी तक गहरी नींद में सो रही थीं, थपकियाँ देना शुरू किया।

"अदालत स्वयं समझ सकती है कि ऐसी परिस्थिति में किसी उभड़ते हुए नवयुवक का पतित हो जाना कोई आश्चर्यजनक या असम्भव घटना नहीं है। धनेश ने मुझे पतन के गहरे गड्ढे में खींच लिया। मैं निर्विघ्न उसके साथ अपने उठते हुए यौवन का नाश करने लगा। इसके कुछ दिन बाद मुझे कई लोगों से यह पता चला कि धनेश की कुटेव इतनी प्रबल है कि उसकी शान्ति के लिए वह किसी भी युवक पर अपना सर्वस्व निछावर कर सकता है—यहाँ तक कि अपने घर की स्त्रियों का सतीत्व दान करने में भी उसे आपत्ति नहीं हो सकती। मुझे भी इतने दिनों में इस बात का अनुभव हो गया था कि युवक धनेश की कैसी प्रिय और आवश्यक वस्तु है। इधर वृद्ध हो जाने के कारण उसकी कुटेव और कुवासना अत्यन्त प्रबल हो उठी थी और लोग उसके पास आना नहीं चाहते थे। मैं तो अनायास ही उसके जाल में जा फँसा था, सो वह अपने दिल की हवस पूरी करने के लिए अत्यन्त आकुल

रहता था। मुझे छोड़ने में भी वह व्यग्र हो उठता था। मुझ पर उसकी चाह इतनी बढ़ गई थी कि मैं जो कुछ कहता उसे वह बिना बहस किए—बिना एतराज़ किए पूर्ण करने को प्रस्तुत रहता था।

"उसकी यह स्थिति देख मैंने भी पैर फैलाना शुरू कर दिया। एक दिन मैंने उससे स्पष्ट शब्दों में कहा—'तुम बूढ़े हो, मरने के निकट हो, तुम्हारे साथ अपना यौवन नष्ट करने में मुझे क्या लाभ—क्या आनन्द? यदि तुम चाहते हो कि तुम मेरा रस लूटो, तो मुझे, तुम्हारे घर में जो दो पुष्प खिल रहे हैं, अबाध रूप से उनका मकरन्द पान करने दो।' मेरा सङ्केत उमेश की बहिन और भाभी की ओर था। ये दोनों स्त्रियाँ युवती हैं, परम सुन्दरी हैं। उमेश की बहिन बहुधा मायके में ही रहती है, वह ससुराल नहीं जाती, पति से उसकी नहीं बनती। रही उमेश की भाभी, सो उसे भी पति के साथ रहने का अवसर बहुत कम मिलता है, क्योंकि आज कई वर्ष से वह बम्बई के मेडिकल कॉलेज में डॉक्टरी पढ़ रहा है। अपने पति से दूर रहने के कारण ये स्त्रियाँ भी बहुधा अशान्त रहती थीं। इनकी नियत साफ़ नहीं थी। मैं नित्य ही धनेश के यहाँ जाया करता था, तब ये दोनों मुझे तृषित नेत्रों से देखा करती थीं। इनके हृदय की अवस्था मुझसे छिपी नहीं रही। मेरे हृदय में रह-रह कर यही बात उठने लगी कि इस बूढ़े को गोली मारो और इन सुन्दर पुष्पों को गले का हार बनाओ। अन्त में मैंने धनेश पर अपना विचार प्रकट कर ही दिया। पहले तो उसने टालमटूल की, पर जब मैंने उसे यह धमकी दी कि कल से मैं तुम्हारे द्वार पर पैर न रक्खूँगा, तब वह तुरन्त सहमत हो गया। उस दिन से मैं पाप के पथ में और आगे बढ़ गया। वे तरुण नारियाँ मुझे पाकर बहुत प्रसन्न हुईं। उस दिन से मानों मैं ही धनेश के घर का स्वामी हो गया। आनन्द की अनुभूति जैसे मेरी पूजा करने लगी।

"बहुत दिन तक अबाध गति से यह पाप-धारा बहती रही। इसी बीच में, उस पाप-सदन में, उमेश की तरुण पत्नी ने प्रवेश किया। मैंने एक ही दृष्टि में भाँप लिया कि गौरी के शरीर में रूप है, हृदय में निर्मलता है और नेत्रों में पानी है। फिर मैंने उसकी ओर दृष्टि नहीं उठाई, इच्छा भी नहीं थी। मेरे दोनों बग़लों में दो परियाँ थीं और सामने एक खूँसट बन्दर नाच रहा था। तब मुझे गौरी-जैसी पवित्र रमणी को भ्रष्ट करने की आकांक्षा नहीं थी। पर गौरी में जो गुण थे, वे ही उसके शत्रु हो गए। गौरी की पवित्रता ने उमेश की बहिन और भाभी को भयभीत कर दिया। उसकी पवित्रता पर उन्हें ईर्षा होने लगी। एक दिन उन दोनों ने मुझसे गौरी को भ्रष्ट करने का आग्रह किया। उमेश की बहिन मुझसे बोली—'तुम भैया के आने के पहले ही गौरी को भ्रष्ट कर दो। उसे हमारा भेद मालूम हो गया है। कहीं उसने भैया को सब हाल सुना दिया, तो क्या जाने कैसा भयङ्कर परिणाम हो।' उसकी भाभी उसके कथन का समर्थन करती हुई बोली—'आज ही तुम्हें यह कार्य करना पड़ेगा। हमारी आज्ञा है, अपनी बूढ़ी रानी से भी पूछ लो।'

"सचमुच मैं अपने सौभाग्य पर इतरा उठा। धनेश के लिए मेरे हृदय में स्नेह और कृतज्ञता की धाराएँ बहने लगीं। उसी की कृपा से तो मैं राज-सुख भोग रहा हूँ। तुरन्त उसके पास पहुँचा और मुस्करा कर बोला—'श्रीमती जी! आप जो यह नवीन खिलौना लाई हैं, उस पर क्या अकेले उमेश का ही हक़ है? क्या मैं उसके साथ न खेल सकूँगा?' धनेश कातर होकर बोला—'क्यों! तुम्हें दो खिलौने दे रक्खे हैं न! क्या वे तुम्हें पसन्द नहीं, एक उसी बेचारे के लिए रहने दो!' मैं बिगड़ कर बोला—'अच्छा, अब तुम अपने खिलौने सँभालो! क़सम भगवान् की, जो कभी इस घर की छाया में भी पैर रक्खूँ।' मैं चलने लगा, पर धनेश मेरा हाथ पकड़ कर बोला—'इतनी निष्ठुरता अच्छी नहीं! तुम ख़ूब जानते हो कि मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ। मैंने तुम्हारी प्रसन्नता के लिए क्या नहीं किया! फिर भी यह निष्ठुरता कर तुम मेरा दिल मसलते हो। मैं समझता हूँ, गौरी के बिना तुम्हारे सुख-सम्भोग में कोई बाधा उपस्थित नहीं हो सकती! क्या गौरी के बिना तुम्हारा काम न चलेगा?' मैंने रुखाई के साथ उसे उत्तर दिया—'मैं तुम्हारा दिल मसलना नहीं चाहता! तुम अपना स्नेह अपने पास रक्खो। क्या मेरे बिना तुम्हारा काम नहीं चलेगा?' धनेश मुझसे चिपट कर बोला—'नहीं-नहीं! इतनी निष्ठुरता न

दिखाओ। यदि तुम्हारा जी नहीं मानता तो तुम्हारी इच्छा में जो आए वही करो।'

"मेरी बाछें खिल गईं। उसी दिन रात्रि को मैंने गौरी पर बलात्कार किया। वह चीख़ती-चिल्लाती रही, पर घर के सब लोग चुप रहे। इसके बाद लगातार मैंने सात दिन तक उसका सतीत्व लूटा! उसकी इच्छा से नहीं, उसकी पवित्रता को—उसके हृदय को कुचल कर। उमेश का पिता और उसकी भाभी तथा बहिन ने मेरी पूर्णतया सहायता की। गौरी की दीनता पर मुझे तनिक भी दया नहीं आई, क्योंकि मेरा यही ख़्याल रहा कि बहुत सी स्त्रियाँ आरम्भ में ऐसा ही करती हैं, अन्ततः गौरी रास्ते पर आकर हमारे दल में मिल जायगी। इसके बाद उस दिन उमेश आगया और उसी रात्रि को, जब कि धनेश मेरे साथ अपना मुँह काला कर रहा था, उसने हम पर आक्रमण किया। मैंने भागने की चेष्टा की, पर भाग नहीं सका, उमेश की छुरी मेरी बग़ल में घुस गई, मैं चीख़ कर धरती पर गिर पड़ा और गिरते ही मूर्च्छित हो गया। यही मेरा इज़हार है। मुझसे पाप हुआ है, घोर पाप हुआ; ऐसा पाप हुआ है, जिसके प्रायश्चित्त का कोई विधान नहीं, पर इसका सम्पूर्ण उत्तरदायित्व उस 'पशु से भी अधम' धनेश पर ही है। उसीके कारण मेरी और उमेश की बहिन तथा भाभी की वृत्तियाँ कलुषित तथा पतित हुईं।"

प्रिय रमेश! यह एक ऐसी घटना है, जो हमारे समाज के एक अत्यन्त घृणित और नग्न दृश्य को प्रकाश में लाती है। इसकी क्या आलोचना की जाय? यह हमारा और देश का दुर्भाग्य है कि हमारे समाज में ऐसी लीलाएँ हुआ करती हैं, जिनके कारण लज्जा से हमारा मस्तक झुक जाता है! मैं तुमसे यह भी कह देना चाहता हूँ कि कहीं इस घटना को अपवाद-स्वरूप न समझ लेना, यदि तुम प्रयत्नपूर्वक अनुसन्धान करोगे, तो तुम्हें अपने ही मुहल्ले या नगर में ऐसे कई घृणित जीव मिल जाएँगे, जो अपनी अस्वाभाविक आकुल-वासना की तृप्ति के हेतु गुण्डों के हाथ में अपने घर की स्त्रियों को सौंप देते हैं। मैं स्वयं अपने नगर के ऐसे दस-पन्द्रह आदमियों को जानता हूँ, जिन्होंने शोहदों को प्रसन्न करने के लिए, अपनी स्त्री, बहिन, पुत्री और पुत्र-बधू की स्त्री-सुलभ लज्जा को पैरों से ठुकराया है। एक साहब हैं, पढ़े-लिखे हैं, उच्च पदस्थ हैं, पर आप बिना किसी युवक के साथ काला मुँह किए अपनी रात्रि नहीं बिता सकते। इसके लिए कभी-कभी आप अपनी पत्नी पर हद से ज़्यादा अत्याचार करते हैं। कोई गुण्डा युवक आपकी पत्नी का सतीत्व लूटता है, वह बेचारी रोती-गिड़गिड़ाती है, पर आप पत्थर की मूर्ति के समान टुकुर-टुकुर वह बीभत्स दृश्य देखते रहते हैं। बताओ, इस बुराई को रोकने का तुम्हारे पास कोई उपाय है? इस बुराई को न समाज-सुधारक रोक सकते हैं, न धर्म का प्रचार रोक सकता है। मुझे खेद है कि ब्रिटिश क़ानून कहीं-कहीं आवश्यकता से बहुत अधिक नरम हो गया है। मेरी राय पूछो, तो मैं तो यही कहूँगा कि क़ानून में ऐसे अपराधियों को भीषण से भीषण दण्ड देने की शक्ति होनी चाहिए। ऐसे अपराधियों को थोड़ी सी जेल-यात्रा करा देने से ही कार्य नहीं चल सकता। ऐसे अपराधियों को तो इस योग्य कर देना चाहिए कि उनमें आयन्दा दुराचार करने का सामर्थ्य ही न रह जाय, पर मुझे आशा नहीं है कि ब्रिटिश क़ानून इतना कठोर रूप धारण कर सकेगा। इसका उपाय तो हमें ही करना पड़ेगा और वह उपाय होगा—भयङ्कर सामाजिक क्रान्ति। उस क्रान्ति में हमारा एक उसूल यह भी होगा कि ऐसे पापियों को ऐसा कठोर दण्ड दिया जाय कि वे दीन-दुनिया के काम के ही न रह जायँ। देखें, उस मङ्गलमय क्रान्ति का अवसर कब आता है?

मैं समझता हूँ कि उमेश ने ठीक ही किया है! बेचारा क़ानून की फाँसी में फँस गया है। देखना है कि क़ानून उस पवित्र युवक को किस घाट लिए जाता है। मैं सकुशल हूँ, तुम्हारी कुशल-कामना चाहता हूँ। पत्र लिखना।

तुम्हारा,
दिनेश

विविध विषय

अनाथालय

आधुनिक समय में दरिद्रनारायण की सेवा करने के लिए देश में एक बड़ा प्रेम-प्रवाह बहने लगा है। मातृ-जाति की रक्षा और उन्हें सुशिक्षिता बना कर फिर से उच्च पदवी पर बैठाने के लिए भी यत्न और उद्यम हो रहा है। स्वराज्य-लाभ के लिए भी लोग उत्सुक नयनों से प्रतीक्षा कर रहे हैं।

परन्तु जिन्हें स्वराज्य-लाभ करने की उत्कट इच्छा हो रही है, उन्हें चाहिए कि सर्वप्रथम अपने भावी वंशधरों की रक्षा करने का सुप्रबन्ध करें। यद्यपि कुछ दयावान् लोगों के यत्न और स्वार्थ-त्याग से आजकल सब प्रधान नगरों में अनाथालय स्थापित हो गए हैं, और उनमें कुछ अनाथ बच्चों का पालन भी होता है। किन्तु खेद और लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि हमारे हिन्दू, आर्य, सिक्ख और जैन इत्यादि विभिन्न सम्प्रदायों ने अपनी धर्मबुद्धि के अनुसार अनाथ बालकों के पालन-पोषण के लिए अनाथालय तो खोले हैं—एक दिल्ली में ही ऐसे ३-४ आश्रम हैं—परन्तु उनमें बच्चों के पालन के लिए जैसा प्रेम, जैसा ज्ञान और जैसी सफ़ाई होनी चाहिए वैसी नहीं दिखाई देती। कारण यह है कि बच्चों के पालने और देखने-भालने के लिए ऐसे अशिक्षित और मूर्ख परिचारिक या परिचारिकाएँ रक्खी जाती हैं, जिनको न तो बच्चों के पालन-पोषण का ज्ञान है, और न उतना निःस्वार्थ प्रेम है। इसलिए प्रायः छोटे बच्चे उनकी असावधानी से बीमार हो जाते हैं। यहाँ पर बच्चों से हमारा तात्पर्य उनसे है, जिनको अपना कुछ भी ज्ञान नहीं है, जो अभी दूध पीने वाले शिशु-मात्र हैं। ऐसे बच्चों का पालन केवल वही माताएँ कर सकती हैं, जिनमें सन्तान-वात्सल्य अथवा मातृस्नेह है; जिन्हें बच्चों के पालने, उन्हें नहलाने-धुलाने, कपड़े पहिनाने और साफ़-सुथरा रखने की शिक्षा मिली है।

हमने सुना है कि दिल्ली के लेडी हार्डिञ्ज कॉलेज के अस्पताल में प्रायः हिन्दू, आर्य-अनाथालयों के बच्चे बीमार होने पर भेजे जाते हैं। वहाँ ले जाते समय वे बच्चे जैसे मैले, गन्दे और दुर्बल होते हैं, उसे देखने से भी दुःख होता है। अस्पताल में सुशिक्षिता नर्सों और सदाशया लेडी-डॉक्टरों के यत्न से थोड़े ही दिनों में उन बच्चों का चेहरा बदल जाता है। वे उन्हें साफ़ कपड़े पहिना कर साफ़-सुथरा रखती हैं, नियमपूर्वक उपयुक्त भोजन देती हैं। उनके यत्न से बच्चे नीरोग होकर फिर अनाथालयों में भेजे जाते हैं। परन्तु वहाँ जाकर फिर वही दुर्दशा होती है। फिर उसी प्रकार मैलापन, अनियमित और अनुपयुक्त भोजन का ढङ्ग आरम्भ हो जाता है। इससे वे फिर पीड़ित होकर उसी अस्पताल में भेजे जाते हैं। क्या यह घोर लज्जा की बात नहीं है? यह काम केवल पुरुषों का या वेतनभोगी दासियों का नहीं, यह तो माताओं का है! परन्तु हमारे देश की माताएँ अपने ही बच्चों का पालन-पोषण उचित रीति से करना नहीं जानतीं, और न वह इस महोपकारी ज्ञान को अपनी कन्याओं को अच्छी तरह सिखाती हैं। दाता लोग तो ग़रीब अनाथों की सहायता और रक्षा के लिए हज़ारों रुपए दे रहे हैं, किन्तु उनका उपयोग ठीक रीति

से नहीं होता, यह हम साहस के साथ कह सकती हैं। बहुतेरे लोग तो दूसरों के दिए हुए धन का सदुव्यवहार करना भी नहीं जानते।

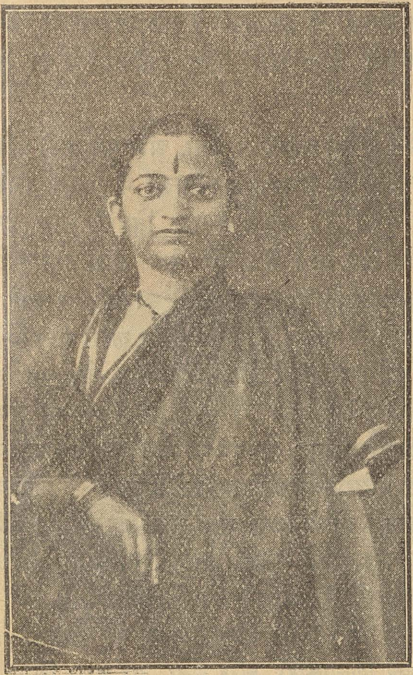

स्वर्गीया लक्ष्मीदेवी कुम्भकोणम्

आप धारवाड़ (बम्बई) के 'कर्नाटक महिला-विद्यालय' की जन्मदात्री, 'धारवाड़ विद्यार्थिनी-मण्डल' की अध्यक्षा और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की सदस्या थीं। आपको हिन्दी से बड़ा प्रेम था, और आपकी पाठशाला में हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी।

जाति की रक्षा के लिए अनाथ बच्चों के पालन और उन्हें यथोचित रूप से शिक्षा देकर आदर्श नागरिक बनाने के लिए सारे सभ्य देशों में कितने ही अनाथालय परिचालित हो रहे हैं। वहाँ की सुशिक्षिता माताएँ और परोपकारिणी महिलाएँ उनका प्रबन्ध स्वयं करती हैं। शिशु-पालन का काम जैसा स्त्रियाँ कर सकेंगी वैसा पुरुषों से कभी नहीं हो सकता। भगवान् ने इसीसे तो माता को सर्वश्रेष्ठ पदवी दी है। यह तो नारी का ही धर्म है। जाति की रक्षा करना परम पवित्र देश-सेवा है। आजकल हमारे देश में स्त्री-शिक्षा दिन पर दिन उन्नति कर रही है। प्रत्येक प्रदेश में उच्च शिक्षिता उपाधिधारिणी महिलाएँ पुरुषों के साथ विश्वविद्यालय की परीक्षा दे रही हैं। वे किसी-किसी विषय में तो पुरुषों से भी उच्च स्थान लाभ करती हैं। ये सब बातें देश की उन्नति की परिचायक हैं। परन्तु ये नारी-समाज की उन्नति के यथेष्ट लक्षण नहीं हैं। आजकल बहुतेरी स्त्रियाँ सात समुद्र पार करके विदेश में भी ज्ञान-लाभार्थ जा रही हैं। परन्तु कितने परिताप का विषय है कि हमारे नारी-समाज की

श्रीमती टी० के० माधवी अम्मा

आप संगीत का अध्ययन कर रही हैं और इस विद्या से बचपन ही से प्रेम रखती हैं। अभी कोटायाम (मद्रास) में होने वाली 'थियासॉफ़ीज़ स्त्री-समाजम्' की कॉन्फ़रेन्स ने आपकी गान-विद्या की निपुणता को देखकर एक स्वर्ण-पदक पुरस्कार में दिया गया।

दृष्टि अभी तक केवल बाहरी आडम्बरपूर्ण सभ्यता की शिक्षा प्राप्त करने की तरफ़ ही लगी हुई है। जिससे देश की

यथार्थ रूप से उन्नति हो, दरिद्रनारायण की सेवा हो उसके प्रति उनका ध्यान नहीं। जैसे पुरुष-समाज राजनैतिक समस्याओं को सुलझाने में अपना सारा ज्ञान और बल लगा रहा है, वैसे ही हमारे मातृसमाज और पुत्रियों को चाहिए कि अपने देश के अनाथ, दरिद्र, और असहाय शिशु-समाज (बालक और बालिकाओं) की रक्षा करने में ध्यान लगावें। मेरी समझ में तो बी० ए०, एम० ए० पास करने के लिए अपनी सारी शक्ति क्षय

श्रीमती सामबीबी

आप अभी हाल में दक्षिण कैनारा के डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड की सदस्या मनोनीत की गई हैं।

करने की अपेक्षा कम से कम चार-पाँच सौ कन्याएँ भी शिशु-पालन, स्वास्थ्य-विज्ञान, अनाथालयों का परिचालन इत्यादि विषयों की शिक्षा उत्तम रीति से प्राप्त कर लें और दो-चार अनाथालयों के परिचालन का दायित्व ग्रहण करके उन्हें आदर्श संस्था बना दें तो बहुत अधिक देश-सेवा होगी।

इसलिए कन्याओं को, युवक स्वयं-सेवकों की भाँति स्वयं-सेविका दल, या छोटी-छोटी मातृ-मण्डली सङ्गठित करके अनाथों की सेवा का व्रत लेना उचित है। अस्पृश्य जाति वालों को शुद्ध करके उनको समान बनाने की धूम तो देश में बहुत हो रही है, किन्तु जो असंख्य बच्चे हमारी लापरवाही और निर्दयता के कारण हर साल स्त्री-अस्पतालों से ईसाइयों के अनाथालयों में भेजे जाते हैं, उसका ज्ञान हमारे हिन्दू भाई-बहिनों को कुछ भी नहीं है।

मैंने अपनी आँखों से देखा, और कई लेडी-डॉक्टरों से सुना भी है कि ज़नाना अस्पतालों में जितने बच्चे हिन्दू स्त्रियाँ जनती हैं, उनमें से एक तिहाई भाग ईसाइयों को सौंप दिए जाते हैं। मैंने एक लेडी-डॉक्टर से कहा था कि आप हिन्दू बच्चों को ईसाइयों को क्यों दे देती हैं? उन्होंने जवाब दिया—"हिन्दू लोग ही हमसे कहते हैं कि हम इन बच्चों को लेकर क्या करेंगे, जहाँ तुम्हारी इच्छा हो भेज दो। हिन्दू-अनाथाश्रम भी सब जगह नहीं हैं और न वह बच्चों को लेने के लिए हमारे पास आते हैं। ईसाइयों का द्वार प्रत्येक जाति के अनाथ बच्चे को ग्रहण करने के लिए सदा खुला रहता है। और वहाँ उनका पालन भी अच्छी तरह होता है।" ईसाइयों के अनाथालयों में लाखों-करोड़ों की संख्या में दूसरी अनेक जातियों के बच्चे पलते हैं, उनको विविध प्रकार की शिल्पकारी और सेवा का काम सिखा कर वे उनसे लाभ उठा रहे हैं। क्या हमें उनसे यह आदर्श सीखना नहीं चाहिए? हम उनके नए-नए फ़ैशनों की तो आग्रह के साथ झट नक़ल कर लेते हैं, परन्तु उनकी जिस बात से हमारे इस अभागे देश की यथार्थ सेवा हो सकती है, उस पर हम स्वप्न में भी विचार नहीं करते।

प्रत्येक कन्या-विद्यालय के साथ ऐसी एक विशेष-श्रेणी (स्पेशल क्लास) खोलनी चाहिए, जिसमें कन्याएँ, यदि प्रति-दिन न हो सके तो हफ़्ते में दो-तीन बार तो निश्चय ही शिशु-पालन की शिक्षा प्राप्त करें। प्रत्येक ज़नाना अस्पताल में भी यह सूचना दे दी जाय कि अनाथ बच्चे, चाहे किसी जाति के हों, हिन्दू या आर्य या सिक्ख आदि के अनाथालयों में भेजे जायँ। उन्हें भेजने का प्रबन्ध उस नगर के हिन्दुओं की तरफ़ से होना चाहिए।

जब तक हमारी मातृ-समाज का ध्यान अनाथों

की रक्षा की तरफ़ आकर्षित नहीं होगा, तब तक यह महत् कार्य कभी सुचारू रूप से सम्पन्न नहीं हो सकता। क्या इन बातों की तरफ़ हमको ध्यान देना उचित नहीं? हमारा मातृ-स्नेह क्या केवल अपने ही घर के दस-पाँच बच्चों के लिए भगवान् ने दिया है? मातृ-स्नेह की धारा तो उसी अगाध प्रेम-सागर से निकल रही है, जिसे जगन्माता ने अपनी सृष्टि के असंख्य जीवों के पालन करने के लिए उत्पन्न किया है। हाय! हम भारतीय नारियाँ कैसी कठोर और स्वार्थ-पटु हो रही हैं। हमारी आँखों के सामने हर साल लाखों की संख्या में सुकुमार बच्चे मृत्यु के ग्रास बन रहे हैं, फिर भी हमें स्वार्थपरता

मिस ईची इपी, एम० डी०, तिरुवेल्ला (मद्रास)

आप अमेरिका में सात वर्ष तक डॉक्टरी की शिक्षा ग्रहण करके अभी वापस आई हैं।

के मोह ने घेर रक्खा है। हम केवल अपने ही सुख के लिए व्याकुल रहती हैं।

आओ, पाठिकाओ! एक बार देश की जन-संख्या की वृद्धि पर ध्यान दो। अनाथों की माता बनने के लिए समग्र भारतीय नारी-समाज को प्रेरणा करो। इस

श्रीमती के० डी० रुकमनी अम्मा, बी० ए०

आप मैसूर के महारानी कॉलेज की सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं। मैसूर-सरकार ने आपको 'हिन्दू-लॉ ऑफ़ इनहैरिटेन्स कमेटी' (उत्तराधिकार निर्णायक समिति) की सदस्य नियत किया है।

महा-व्रत के प्रचार के लिए शिक्षा का प्रबन्ध करो, अपने देश के अनाथालयों में जाकर वहाँ की अवस्था को देखो, उनमें जो-जो त्रुटियाँ दिखाई पड़ती हैं, उन्हें सुधारने का यत्न करो। यह काम प्रत्येक नगर की महिला-सभा की सभ्याओं को अपने हाथ में लेना उचित है। ग़रीब, सन्तानहीन विधवाओं को या दयावती स्त्रियों को इस महान् सेवा के लिए शिक्षा प्रदान करो। समस्त स्त्रियाँ अध्यापिका या डॉक्टर नहीं बन सकतीं। उनको माता बन कर अनाथालयों में जाकर रहना चाहिए।

—हेमन्तकुमारी चौधरानी

* * *

चूड़ियाँ ऐसी पहनती हैं, जिससे कलाई से लेकर सम्पूर्ण बाँह ढकी रहती है। ये कुर्ती पहनना, या जाड़े में दुलाई ओढ़ना वेश्यापन समझती हैं। इस विचार के पृष्ठ-पोषक हमारे शिक्षित समाज में भी मौजूद हैं।

यदि स्वामी परदेश में है तो स्त्री चिट्ठी-पत्री नहीं भेज सकती, न किसी से कुशल ही पूछ सकती है।

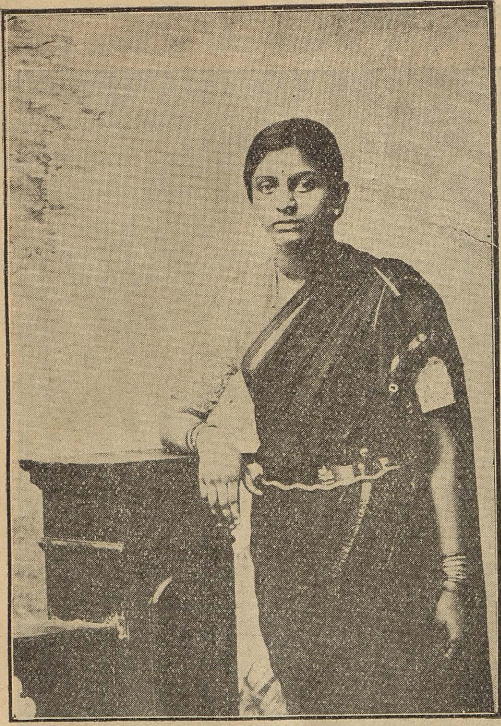

मिस ए० के० रुकमनी

आप कोचिन-हाईकोर्ट के रजिस्ट्रार मिस्टर ए० वी० कृष्ण अय्यर की पुत्री हैं। आप प्रवेशिका और संगीत की परीक्षाओं में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं और अब वी० जी० एच० हाईस्कूल में अध्ययन कर रही हैं।

पति रात्रि में चोर की नाईं पत्नी के कमरे में घुसते हैं और चोर की नाईं काना-फूसी कर सो जाते हैं। गर्मी के कारण प्राण ही क्यों न निकल जायँ, पर दम्पति, यदि नीरोग हैं तो साथ सोएँगे और वह इस प्रकार, जिसमें हवा भी न लग सके। इस समय पाश्चात्य विद्या का थोड़ा-बहुत प्रचार हो चुका है और इसलिए शिक्षित पति अपनी स्त्री से प्रकट-प्रेम चाहते हैं। पर स्त्रियाँ समाज की हँसी के भय से स्वच्छन्दता-पूर्वक बोल भी नहीं सकतीं, प्रकट-प्रेम की तो बात ही क्या। यही कारण है कि अधिकांश नवयुवक रात्रि-भर स्त्री से अप्रसन्न रह प्रातःकाल अत्यन्त उदास दीख पड़ते हैं। यह उदासीनता उभय ओर से बढ़ते-बढ़ते भारी विपत्ति का कारण बन जाती है।

सच तो यह है कि समाज चाहता है कि स्त्रियाँ अपढ़, मूढ़ और मूर्ख रह कर दासी की तरह केवल रसोई इत्यादि के कार्य करती रहें। ससुर-सास चाहते हैं कि पुत्रवधू नौकरानी के समान मैली-कुचैली रहती हुई और मरती हुई भी घर का कार्य करे। उधर स्वामी चाहता है कि स्त्री उसके साथ प्रकट-प्रेम करे। इस रगड़ में बेचारी अबला पिस जाती है। भय और सङ्कोच के कारण स्त्रियाँ कठिन से कठिन रोग को छिपाए रहती हैं। अधिकांश युवतियाँ प्रदर की शिकार रहती हैं और अल्पायु बच्चे जनती हैं। स्वच्छ वायु, प्रकाश, जल, अन्न इत्यादि से वञ्चित रख ये अशिक्षित स्त्रियाँ मानों बलिदान दी जाती हैं। लेखक एक पूर्ण भुक्त-भोगी मैथिल है और इस लेख में उसने अपने अनुभव की बातें ही लिखी हैं।

इस हालत में देश को, संसार को चाहिए कि मैथिल-समाज की कठोर आलोचना करे। यह मैथिल-समाज, जो 'चाँद' को स्त्रियों के पक्ष में देख कर जला-भुना जाता है, क्यों नहीं अपनी आश्रित स्त्रियों की रक्षा करता? मेरा यह कहना नहीं है कि सभी मैथिल इस प्रकार के हैं, या सभी बहिनें मूर्खा ही हैं, पर मेरा लक्ष्य समुदाय पर है। धिक्कार है उस पुरुष को जिसकी स्त्रियाँ इस प्रकार शारीरिक और मानसिक पतन की शिकार बनी हुई हैं।

—कालीकुमार दास मैथिल-वाचस्पति

* * *

भारतवर्ष के साधु

और देशों की अपेक्षा भारतवर्ष में साधु बहुत अधिक हैं। उनमें कुछ ऐसे भी होंगे जिनकी मानसिक उन्नति कुछ हुई है। परन्तु इतने साधुओं के

रहते हुए भी, अर्थात् इतने ऐसे मनुष्यों के रहते हुए भी—जिनके न स्त्री है; न बच्चे हैं; न घर की फ़िक्र है; न ऋण का सोच है; जो सर्वथा निश्चिन्त हैं और मृत्यु के लिए सर्वदा प्रस्तुत हैं—भारतवर्ष की यह दशा है। वह परतन्त्रता की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है, सामाजिक बुराइयों का केन्द्र है; दरिद्रता का घर है; अज्ञान का अड्डा है। इसका क्या कारण है?

क्या भारतवर्ष के साधु जैसा अपने को समझते हैं, नितान्त निस्पृह जीव हैं? क्या उन्हें सचमुच कोई मोह-ममता नहीं है? क्या वे काम-क्रोध आदि को जीते हुए हैं? क्या वे सचमुच सांसारिक वैभव को असार समझते हैं? क्या वे सचमुच इतने ऊँचे उठ गए हैं कि उन्हें सारे संसार की राजनैतिक समस्याएँ लड़कों के खेल के समान उपेक्षणीय समझ पड़ती हैं? क्या वे सचमुच ऐसे हैं कि यदि उन्हें सारे संसार की सम्पत्ति मिल जाय तो उसका वे तृण के समान त्याग कर दें? इन प्रश्नों का उत्तर इतना स्पष्ट है कि उसके लिखने की आवश्यकता नहीं। यदि ऐसा होता तो भारतवर्ष में गृहस्थों से बढ़ कर हज़ारों अखाड़े न होते। इन अखाड़ों में दाँतों से कौड़ियाँ पकड़ी जाती हैं, एक बड़ा धर्मपत्नी-विहीन कुटुम्ब रहता है, जिसके सदस्य आपस में एक दूसरे से ममता रखते हैं, आपस में एक दूसरे का पक्षपात करते हैं—उनके उचित या अनुचित कार्यों में उनका साथ देते हैं। यदि ऐसा होता तो हज़ारों की संख्या में साधु या महन्त व्यभिचार-दोष से दूषित न पाए जाते—महन्तों की रखेलियाँ, उनकी तरुण चेलियाँ न होतीं, और न होतीं उनके यहाँ भ्रूण-हत्याएँ आदि, जिनका नाम लेने में भी लज्जा आती है। यदि यही बात होती तो भारतवर्ष में हज़ारों-लाखों की संख्या में साधुओं में मुक़दमेबाज़ी न होती; छोटे-छोटे भूमि-खण्डों के लिए उनमें लट्ठबाज़ी न होती, एक-एक पैसे के लिए उनमें तकरार न होती।

जब यहाँ के साधु घरेलू, छोटे-छोटे झगड़ों को इतना महत्व देते हैं, तब वे संसार की समस्त राजनैतिक समस्याओं को खेल क्या समझेंगे? इन सब बातों पर ध्यान देने से ऐसा जान पड़ता है कि भारतवर्ष के अधिकांश साधु धर्म का ढोंग करने वाले, कपटी, अनाचारी, उद्दण्ड आदि विशेषणों से विभूषित किए जाने योग्य हैं।

हम पूछते हैं कि जब ये साधु भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति की उपेक्षा करते हैं—कहते हैं कि हम तो पारलौकिक या आध्यात्मिक उन्नति करने वाले जीव हैं, हमको इन झगड़ों से कोई सरोकार नहीं, तब इन्हें जनता के धन पर—सार्वजनिक संस्थाओं की जागीरों पर—इस बेदरदी से लड्डू-पूड़ी उड़ाने का क्या अधिकार है? इतना ही नहीं, इनको जनता से भिक्षा माँगने का भी

मिसेज़ आर० थॉमस, बी० ए०, एल० टी०

आप चालापुरम कालीकट के लड़कियों के सैकिण्डरी स्कूल की हेड मिस्ट्रेस हैं और गवर्नमेण्ट द्वारा कालीकट 'मैण्टल हॉस्पिटल' (पागलख़ाने) की ग़ैर-सरकारी निरीक्षक नियत की गई हैं।

कोई अधिकार नहीं है। जिस देश में आधे आदमियों से अधिक को दिन भर में आधा पेट भोजन नहीं मिलता, जिस देश के पुरुषों और स्त्रियों को तन ढँकने के लिए वस्त्र प्राप्त नहीं होते, जो देश सामाजिक बुराइयों के रोग से पीड़ित होकर अत्यन्त कातरता के साथ कराह रहा है, उस देश की दशा सुधारने से जिन्हें मतलब नहीं है

उनको इस देश की अकाल-पीड़ित, वस्त्रहीन, दुःखी जनता से भिक्षा माँगने का क्या अधिकार है ? भिक्षा माँगना तो दूर रहा, उन्हें उसके जङ्गलों की एक पत्ती तोड़ने तक का अधिकार नहीं । अतएव इन साधुओं को चाहिए कि पारलौकिक या सूक्ष्म आध्यात्मिक भोजन से अपना उदर-पोषण करते हुए और सूक्ष्म पारलौकिक

श्रीमती डी० सकम्मा

आप कुर्ग की कॉफ़ी (क़हवा) की खेती करने वाली एक धनवान रमणी हैं और आपने हाल ही में 'कुरुलिना सेटी एसोसिएशन' (मैसूर) को तीस हज़ार रुपया दान दिया है ।

वस्त्रों से गरमी-सरदी से अपने शरीरों की रक्षा करते हुए हम लोगों की आँखों से ओझल होकर ही अपने गौरव-मय जीवन को व्यतीत करें । हम उनकी दम्भमय गर्वोक्तियों, उनके कपटपूर्ण व्यवहारों, और भारतवर्ष की दरिद्र जनता पर भार-स्वरूप उनके निकम्मे जीवन से तङ्ग आगए हैं । हम बहुत देख चुके और सुन चुके ,अब हमारा यही प्रयत्न होना चाहिए कि हम उनके नृशंस सङ्गठनों का नाश करने के लिए उद्यत हो जावें और एक स्वर होकर जनता से यह प्रार्थना करें कि वह इनके पालन-पोषण का भार ग्रहण करके इन्हें निकम्मा, आलसी और अनाचारी बनाने का भीषण पाप अपने सिर पर न ले ।

भारतवर्ष के साधु पारलौकिक कल्याण और आध्यात्मिक जीवन की दुहाई देकर भारतवर्ष को ठगना चाहते हैं । जिस समय राज्य में अनाचार की वृद्धि होती थी उस समय और सब काम छोड़ कर राज्य-व्यवस्था का परिमार्जन करना हमारे यहाँ के साधुओं का सनातन नियम रहा है । वेणु-वध की भीषण घटना हम लोग भूल नहीं गए हैं । महर्षि जनक का सबसे बड़े संन्यासियों में होते हुए भी राज-कार्य सञ्चालन हमें स्मरण है । हम झूठे संन्यास के शब्द से अब प्रभावित नहीं हो सकते ।

कल्याण दो प्रकार का होता है । एक ऐहिक और दूसरा पारलौकिक । प्रेय और श्रेय दोनों हमारे साध्य हैं । यह स्पष्ट है कि जिसमें प्रेय-साधन की शक्ति नहीं है, उसमें श्रेय-साधन की शक्ति का होना असम्भव है । हमारे यहाँ के साधुओं का यही भ्रम है कि वे प्रेय-साधन में अशक्त होते हुए भी अपने को श्रेय-साधन के योग्य समझने लगते हैं ।

जिसको हमारे साधु-नामधारी पुरुष त्याग समझते हैं वह त्याग नहीं है—वह है नितान्त अभाव । वे अपनी तुलना करते तो उन प्राचीन महर्षियों से हैं, जिनमें से किसी ने अरबों की सम्पत्ति पर लात मारी थी, किसी ने राज-पाट का परित्याग किया था, किसी ने अपनी अपूर्व अर्जन शक्तियों को ताक पर रख कर संन्यास ग्रहण किया था । परन्तु अब के साधु ऐसे हैं कि उन्होंने एक कौड़ी नहीं त्यागी । त्याग की बात तो दूर रही, उनमें से अधिकांश में चोरी का भाव गुप्त-रीति से विद्यमान रहता है । वे चाहते हैं दूसरे का धन हड़प करना, दूसरे की स्त्री को हथिया लेना । जहाँ तक हम समझते हैं उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जिनसे सभी नृशंस कार्य हो सकते हैं । इसलिए जनता को चाहिए कि अब वह गेरुआ वस्त्र का आदर करना छोड़ दे, जटा से सशङ्क रहे और दान-स्वरूप उन्हें एक पाई भी न दे ।

यदि ये साधु-महन्त वास्तव में साधु होते तो वे भारतवर्ष को इस दीन-दशा में न रहने देते । साधु यदि

पारलौकिक या आध्यात्मिक उन्नति में भी दत्तचित्त रहे तो उसका हृदय साधु ही होगा। उसमें दया और सेवा का भाव भरा होगा। वह अपनी साधना से बचा हुआ समय सेवा-कार्य में ही व्यय करेगा। यदि भारतवर्ष के साधुओं में साधु-हृदय होता तो भारत-माता को वे इस उपेक्षा की दृष्टि से न देखते—जबकि वे उसके वायु, अन्न और जल से जीवन-यापन कर रहे हैं, तो वे अवश्य ही उसकी सहायता करने पर कटिबद्ध हो जाते। उनकी संख्या पर्याप्त है। वे लगभग पौन करोड़ हैं। उनके शिर पर किसी प्रकार का बोझ नहीं है। यदि वे सङ्गठित होकर इस बात के लिए तत्पर हो जायँ कि हम भारतवर्ष की राजनैतिक अवस्था सुधारेंगे—हम उसकी सामाजिक बुराइयाँ दूर कर देंगे तो वे बहुत-कुछ काम करके दिखला सकते हैं।

साधुओं पर जनता का अब भी बहुत विश्वास है। उसी विश्वास का लाभ उठाकर यदि वे जनता से कहें कि तुम्हारे भीतर अमुक सामाजिक बुराइयाँ हैं, तो जनता उनकी बातों को अवश्य मानेगी। उनके वेश में वह शक्ति है कि वे जनता से जो चाहें, करा सकते हैं। महात्मा गाँधी को जनता ने जो आदर दिया है, वास्तव में उसका एक मुख्य कारण यह है कि वह उन्हें महात्मा समझती है।

जिस समय पौन करोड़ साधुओं का सङ्गठित समुदाय भारतवर्ष की वर्तमान दुर्दशा का चित्र उसकी दुखित जनता के सामने रक्खेगा—जब वह अपने करुण-स्वर से भारत-माता की दुःख-गाथा उसको सुनाएगा, तब उसके लिए क्या न हो सकेगा?

हम भारतवर्ष के साधुओं के विरोधी नहीं। हम देखते हैं कि वे कुमार्ग पर जा रहे हैं, इसीलिए हमें यह अप्रिय-सत्य कहना पड़ा। हम चाहते हैं कि हमारे साधु अपनी श्रेष्ठता की रक्षा करें। जो एक समय हम लोगों के शिर के मुकुट थे, वे आज वैसे नहीं रहे हैं। उनको चाहिए कि संसार को दिखला दें कि वे जनता को ठगने के लिए गेरुआ वस्त्र नहीं धारण किए हैं, वरन् वे सच्चे साधु हैं और उनके सङ्गठित समुदाय के एक भी प्राणी के जीवन-धारण करते हुए संसार में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो भारतवर्ष पर अत्याचार कर सके। कोई ऐसी सामाजिक बुराई नहीं जो हिन्दू-समाज का रक्त-शोषण कर सके। इतना ही नहीं, उन्हें तो इस बात की महत्वाकांक्षा होनी चाहिए कि वे भारतवर्ष की दशा को पूर्णरूप से सुधार कर अपने अपूर्व आध्यात्मिक प्रकाश से सारे

श्रीमती बी० भागीरथी अम्मा

आप 'महिला' नामक पत्रिका की सम्पादिका और सञ्चालिका हैं, और अभी आपकी अध्यक्षता में 'आरायर (समुद्र-तीर-निवासी) कान्फ़्रेन्स' का जलसा हुआ था।

संसार को भर देंगे—भारतवर्ष के आध्यात्मिक सन्देश को संसार के कोने-कोने में पहुँचा देंगे।

—आनन्दीप्रसाद श्रीवास्तव

* * *

भारतीय महिलाएँ और फ़ैशन

आजकल हमारे देश की महिलाएँ भी अपनी विलायती बहिनों की देखादेखी दिन-ब-दिन अपने को फ़ैशनेबुल बनाने की चेष्टा कर रही हैं। वे

अपने पुराने पहनाव को अब पसन्द नहीं करतीं, बल्कि नई-नई चटकीली-भड़कीली पोशाकें पसन्द करती हैं। ओढ़नी अथवा साड़ी अब उन्हें नहीं रुचतीं। इस तरह नक़ल करने में देश का लाखों रुपया विदेशों को चला जा रहा है। विदेशी लोग तो रोज़ नए रङ्ग-ढङ्ग और फ़ैशन के कपड़े और पोशाकें निकाल कर भारत को भूखा और मोहताज बनाना चाहते हैं। बड़े घरों की स्त्रियों की पोशाकें तो विलायती महिलाओं के वस्त्रों से भी कहीं ज़्यादा मँहगी हो गई हैं।

आज देश के सामने यह एक बड़ा प्रश्न है, जिसके कारण व्यापारी, ज़मींदार और नौकर सभी परेशान और चिन्तित हैं, क्योंकि उनकी गाढ़ी कमाई का एक बहुत बड़ा हिस्सा स्त्रियों की सजावट में ही ख़र्च हो जाता है। वे लोग अपने बच्चों को अच्छी तरह शिक्षा देने के लिए तथा अन्य आवश्यक बातों के लिए काफ़ी धन नहीं बचा पाते। फल यह होता है कि न तो बच्चे अच्छी तरह पढ़ाए-लिखाए ही जा सकते हैं और न उनका स्वास्थ्य ही ठीक रक्खा जा सकता है। इससे भारत के भविष्य पर भारी असर पड़ता है।

बहुत सी स्त्रियाँ तो फ़ैशन में अमीरों की होड़ करती हैं और काफ़ी आमदनी न होते हुए भी अपने स्वामियों से यहाँ तक ज़िद करती हैं कि घर को कलह की कोठरी बना लेती हैं। वे जितना अपने ओढ़ने-पहनने का ख़याल रखती हैं, उतना अपने प्यारे बच्चों की लिखाई-पढ़ाई और तन्दुरुस्ती का ध्यान नहीं रखतीं।

उनकी यह सजावट बाहरी लोगों को दिखाने को होती है। घर में तो फटे-पुराने और मैले-कुचैले कपड़े पहने रहती हैं। पर बाहर जब किसी मेले-तमाशे के लिए निकलती हैं या रेल में बैठ कर कहीं जाती हैं तो बढ़िया से बढ़िया सेरों ज़ेवर लाद कर और बड़ी बारीक और चटकीली साड़ियाँ आदि पहन कर निकलती हैं। इस तरह का पहनाव कभी-कभी स्त्रियों को भारी सङ्कट में डाल देता है।

इस पोशाकी होड़ की जगह यदि इस देश की महिलाएँ उन विलायती बहिनों की होड़ साफ़-सुथरा रहने में और शिक्षित तथा कार्यपरायण बनने में करें तो कहना ही क्या है। इस नक़ली सौन्दर्य से तो सिवाय नुक़सान के कोई लाभ नहीं है। यदि वे अपने देश की भलाई चाहती हैं, अपने प्यारे बच्चों को स्वस्थ और शिक्षित देखना चाहती हैं, तो यह चटकीली पोशाक छोड़ दें और सादा और सस्ता पहनाव पहनें। अपने हाथ से ख़ूब बारीक सूत कात कर शुद्ध खद्दर तैयार कराएँ। उसके बने हुए कपड़े ख़ुद पहनें और अपने स्वामी और बच्चों को पहनाएँ।

—प्रतापचन्द्र जैन

* * *

स्त्रियों के स्वत्व पर आक्रमण !

यदि हम प्राचीन और नवीन समय की तुलना करने के लिए तनिक विचार करते हैं, तो हमें आकाश-पाताल का अन्तर प्रतीत होता है। न तो पुरातन समय के समान स्त्रियाँ ही हैं और न पुरुष ही। एक भयङ्कर मल्ल-युद्ध की भाँति एक दूसरे को दबाना चाहते हैं, जिसका परिणाम यह हुआ है कि स्त्री-जाति को सब प्रकार से नीचा देखना पड़ रहा है। उनके लिए पद-पद पर विपत्तियाँ मुँह फाड़ कर प्रतीक्षा कर रही हैं। कोई तो उनके पैदा होने पर शोक करते हैं, कोई उनकी शिक्षा पर शस्त्राघात करते हैं, और कोई उनको कुछ देना भी देख नहीं सकते। उनको लेने-देने की रीति को रोकने का भरसक प्रयत्न करते हैं। कुछ समय पहले लाहौर से प्रकाशित होने वाले उर्दू साप्ताहिक पत्र 'अग्रवाल-हितैषी' में "कॉन्फ़रेन्सों को किस प्रकार कामयाब और मुफ़ीद बनाया जा सकता है" नामक लेख प्रकाशित हुआ था, जिसके पढ़ने से यह प्रतीत होता है कि वास्तव में लेखक महाशय अग्रवाल-जाति के हितैषी हैं। परन्तु आप अपनी ही निरपराधिनी लड़कियों का गला घोंटने पर उतारू हैं। आप लिखते हैं कि 'दहेज़ की प्रथा को बन्द करना चाहिए, इसने बहुत तरक़्क़ी की है।' एक तो वैसे ही लड़कियों का पिता की जायदाद में कोई हिस्सा नहीं, माता-पिता थोड़ा-बहुत देकर ब्याह कर देते हैं, फिर चाहे भूखी मरो या नङ्गी फिरो, इस बात से कोई मतलब नहीं। इस पर भी लोगों को चैन नहीं और दहेज़ की प्रथा को बन्द करने का प्रयत्न करते हैं। यदि दहेज़ की प्रथा भी बन्द हो गई तो लड़कियों के पास फूटी कौड़ी भी न रहेगी। क्योंकि लड़कियों के लिए

सारी उम्र में एक ब्याह का ही समय है, जब कि पिता की ओर से और पति की ओर से कपड़े-गहने आदि दिए जाते हैं—यह भी लोक-लज्जा के कारण किया जाता है। यदि दिखावा भी बन्द हो गया तो लड़की के पल्ले क्या पड़ेगा ? जब लोक-लज्जा की बात भी नहीं रही तो लड़की को ही देने से क्या लाभ ? क्योंकि चुपचाप देने से तो कुछ नाम नहीं होता, इसलिए दहेज़ में भी लड़कियों का हक़ कम हो जायगा। लड़कियाँ भिखारिणी बन कर एक-एक पैसे के लिए दूसरों का मुँह ताकेंगी। यदि दुर्भाग्यवश वैधव्य की विपत्ति आ पड़ी और तीन-चार दुधमुँहे बच्चे भी हो गए तो बतलाइए वे किस द्वार की भिखारिन बनेंगी ?*

आगे चल कर कहा गया है कि 'दहेज़ की यही प्रथा रही तो स्त्रियों की वही दशा हो जायगी जैसी बङ्गाल में है।' ऐसी दशा तो तब हो जब कि लड़के वाले रुपया माँगें और लड़की वाले को विवश होकर देना पड़े। पर लड़की वाला जब स्वयम् अपनी हैसियत के अनुसार देता है और वह उतना दे सकता है, तब उसको क्यों मना किया जाय ? मना तो माँगने वालों को करना चाहिए जो मुँह से हज़ारों रुपया माँग कर लड़के को ब्याहते हैं। अगर लड़की वाला नहीं देता और ब्याह हो जाता है, तो वे लड़की को घोर दुःख देते हैं, यहाँ तक कि उसे जान से हाथ धोना पड़ता है। आपको चाहिए कि इस भीख माँगने को दूर करें, न कि जो अपनी इच्छा से दे उसे मना करें।

* क्या लेखिका समझती हैं कि दहेज़ का धन स्त्री के पास जमा रहता है और पति या घर के लोग उसे काम में नहीं ले आते। हमने तो ज़्यादातर यही देखा है कि दहेज़ को लड़के के घर वाले अपनी चीज़ समझते हैं। फिर दहेज़ का ऐसा होना भी असम्भव-सा है, जिससे स्त्री विधवा-अवस्था में अपना और बाल-बच्चों का पालन-पोषण कर सकें।

—स० 'चाँद'

इस लेख में एक स्थल पर लिखा है कि 'पहले जो सगाई की रस्म मामूली होती थी अब निहायत ही शान-

श्रीमती कुमारी लीलावती जी झँवर, बी० ए०

आप श्री० गौरीशङ्कर जी झँवर की पुत्री हैं, जो देहरादून के डी० ए० वी० कॉलेज में प्रोफ़ेसर हैं। कुमारी लीलावती जी ने इस वर्ष काशी हिन्दू-विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास की है। आपकी उम्र अभी केवल २० वर्ष की है।

दार होने लगी है और कई हज़ार रुपए का माल दिया

जाता है।' समझ में नहीं आता कि यदि किसी माता-पिता ने अपनी लड़की को मँगनी के अवसर पर या ब्याह के अवसर पर जितना जिसकी इच्छा है दे दिया तो किसी की इस बात से क्या हानि हुई? क्या माता-पिता अपनी सन्तान को कुछ न दें? जब लड़का पिता की सारी जायदाद का स्वामी बनता है, तो फिर यदि लड़की को उसमें से दसवाँ भाग भी दे दिया तो क्या बड़ी बात हो गई?

फिर लेखक लड़कियों के साथ सहानुभूति प्रकट करते हुए कहते हैं—'अपनी लड़की की अपनी हैसियत के मुताबिक़ मदद ज़रूर करनी चाहिए। मदद के मौक़े बहुत आ सकते हैं और मौक़े की मदद ही मुफ़ीद हुआ करती है।' मेरा विचार है लेखक महाशय ने ऐसा लिखने से पहले यह नहीं सोचा कि कभी आपने किसी को ऐसा करते देखा या सुना है? दुनिया में जो कुछ किया जाता है, सब दिखावे के लिए ही है। कौन किसी को मुसीबत में सहायता देता है? विपत्ति में नुक्ताचीनी करने वाले सैकड़ों मिलेंगे, परन्तु सहायता करने वाला एक भी नहीं। यह दुनिया की रीति किसी से छिपी नहीं। क्या आज संसार में ऐसा नहीं देखा जाता कि एक माता के सगे भाई-बहिन होने पर भाई तो सारी जायदाद का स्वामी बन कर अपने आराम के लिए सब रुपया व्यर्थ गँवा दे और बहिन एक-एक पैसे के लिए दर-दर भीख माँगे?

सच यह है कि दहेज़, सगाई और बारात की ख़ातिर करने में इतना ख़र्च नहीं होता जितना ब्याह की अनन्त कुरीतियों में। कुरीतियों से रुपया नष्ट होता है। न तो लड़के के हाथ ही कुछ आता है और न लड़की के। भूर बाँटना, बखेर करना, रण्डी नचाना इत्यादि बीसियों ऐसी कुरीतियाँ हैं, जिनमें इतना रुपया नष्ट होता है जितना सारे ब्याह के लिए काफ़ी हो सकता है। इसलिए जाति के शुभचिन्तकों को चाहिए कि समाज की कुरीतियों को रोकने का भरसक प्रयत्न करें, न कि दहेज़ को, जोकि लड़कियों को दान की भाँति मिलता है। मुँह से माँग कर दहेज़ लेने वालों को जाति की ओर से दण्ड देना उचित है।

—शकुन्तलादेवी गुप्त 'हिन्दी-प्रभाकर'

[श्रीमती शकुन्तलादेवी जी के लेख का यह तात्पर्य कि स्त्रियों को आर्थिक सुभीता प्राप्त हो, अवश्य मानने लायक़ है। पर उसके लिए उन्होंने जिस उपाय पर दृष्टि डाली है, वह बहुत छोटा और अनुपयुक्त है। हमें आश्चर्य है कि पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ भी स्वयम् अपने हित-अनहित के सम्बन्ध में इतनी भूल करती हैं। दहेज़ और इस तरह की किसी लेने-देने की विधि से स्त्रियों के कष्टों में ज़रा भी कमी नहीं हो सकती और ये उनकी दुर्दशा में वृद्धि करने वाले ही सिद्ध होते हैं। इसके फल से अधिकांश लड़के वाले (वर के अभिभावक) कन्या की योग्यता और गुणों को न देखकर इस बात का विचार करते हैं कि उससे विवाह करने में दहेज़ कितना मिलेगा? इसी प्रकार विवाह में अधिक ख़र्च करने की रीति क़ायम हो जाने से बहुत सी सुयोग्य कन्याएँ केवल इस कारण से अपने लायक़ श्रेष्ठ वर नहीं पा सकतीं कि उनके पिता ग़रीब हैं और विवाह में अधिक ख़र्च नहीं कर सकते। इसलिए विवाह की रीतियों को जितना ही अधिक सीधा-सादा और कम ख़र्च का बनाया जायगा उतना ही स्त्रियों को लाभ होगा और वे अपने अनुकूल योग्य पति पा सकेंगी। रह गई स्त्रियों की आर्थिक स्थिति अथवा धन-सम्बन्धी अधिकार की बात, उसके हम पूर्ण रूप से समर्थक हैं। पर उसके लिए ऐसे मार्ग को ग्रहण करना चाहिए जो स्थायी और अधिकारयुक्त हो। दान या अनुग्रह के रूप में थोड़ा-बहुत धन एक बार पाने से क्या लाभ? इसके लिए तो आवश्यकता इस बात की है कि या तो पति और पिता की सम्पत्ति में स्त्री का एक निश्चित हिस्सा हो या फिर उसको ऐसी शिक्षा दी जाय जिससे वह दूसरे के अधीन रह कर पेट भरने को लाचार न हो और समय पड़ने पर स्वयम् इज़्ज़त और आराम के साथ अपना भरण-पोषण कर सके।

—सं० 'चाँद']

* * *

युवती का विवाह शास्त्र-सम्मत है

क़ानून के द्वारा दो-चार आदमियों की हानि तो अवश्य होती है, पर भलाई सौ में से नब्बे की होती है। शारदा-बिल कितना महत्वपूर्ण और लाभदायक था, यह भारत के भाग्यविधाताओं से छिपा नहीं है। उनको यह भी मालूम है कि वैदिक काल और पौराणिक काल में केवल युवतियों का ही ब्याह होता था, जिसका ज्वलन्त उदाहरण स्वयम्बर की प्रथा है। विशेष क्या, विवाह के समय लक्ष्मी युवती थी, सावित्री, पार्वती, दमयन्ती, द्रौपदी, सुभद्रा भी युवती थीं। अन्त में पृथ्वीराज की पत्नी संयुक्ता भी यौवन-प्राप्त ही थी।

आवश्यकतानुसार क़ानून का परिवर्तन सर्वथा उचित है। इस नियम का पालन आदि-काल से आज तक हो रहा है। जिस प्रकार सामयिक झञ्झटों को दूर करने के लिए यथासमय पृथक्-पृथक् स्मृतियाँ बनाई गई थीं, जिनकी गणना आज चौबीस तक पहुँच गई है, उसी नियम के अनुकूल मुसलमान बादशाहों के अत्याचारों से पीड़ित होकर हिन्दुओं ने युवती-कन्याओं का ब्याह रोक दिया था। उस समय यही धर्म था। पण्डितों ने भी "अष्टवर्षा भवेद्गौरी" इत्यादि वचनों को महत्व दे दिया था। परन्तु अब वह दिन नहीं रहा। बाल-विवाह अब केवल दुष्परिणामों का घर है। गौरी दान कर पुण्य सञ्चय करना अब केवल अन्धापन है, या है सर्वनाश होने की राह।

विवाह के समय हिन्दुओं के घर यह वैदिक मन्त्र पढ़ाया जाता है, जिसका तात्पर्य है ऋतुमती कन्या का ब्याह—

> सोमः प्रथमो विवदे गन्धर्वो विविद उत्तरः।
> तृतीयोग्निष्टेपतिस्तुरी येतुमनुष्यजः॥

अर्थ"—कन्या पहले सोम के अधीन रहती है (सरलता प्रधान होती है), पीछे गन्धर्व के (बोली में मिठास और भाव का उद्गम हो जाता है), तदनन्तर अग्नि के (शरीर में कान्ति आ जाती है), अन्त में पति के अधिकार में जाती है।"

> रोम काले तु सम्प्राप्ते सोमो भुंक्तेथ कन्यकाम्।
> रजोदृष्ट्वातु गन्धर्वः कुचौ दृष्टातु पावकः॥

—आपस्तम्बस्मृति अ० १ श्लो०, ६५

श्रीमती सुषमादेवी

आप जगतप्रसिद्ध महाकवि डा० रवीन्द्रनाथ टैगौर की भतीजी हैं और अभी अमेरिका का बहुकाल-व्यापी भ्रमण करके लौटी हैं। वहाँ पर आपने जनता के समुदाय-शिक्षण-विधि (Mass Education System) का अध्ययन किया है।

अर्थ—"लोमोद्गम होने पर सोम, रजोदर्शन होने पर गन्धर्व और स्तन होने पर अग्निदेव उस कन्या को भोग करते हैं।"

और भी; सामवेदीय गोभिल गृहसूत्र के विवाह-प्रकरण में यह सूत्र आया है:—

अनग्निका तु श्रेष्ठा—प्र० ३, खं० ४, सू० ६

'अनग्निका' का अर्थ गृह्यसंग्रह में लिखा है—

ऋतुमतीत्वनग्निका तां प्रयच्छेत् कन्यकाम् ।

अर्थ—"ऋतुमती कन्या अनग्निका कहलाती है और उसी का दान श्रेष्ठ है।" इसी ग्रन्थ में दूसरी जगह आया है—

अभुक्ताचैव सोमाद्यैः कन्यका न प्रशस्यते ।

अर्थ—"सोम आदि देवों से अभुक्त कन्या का दान सर्वथा निन्दित है।"

वशिष्ठस्मृति भी इसी मत को पुष्ट करती है :—

अस्पृष्ट मैथुनां यवीयसीं सदृशीं भार्यां विन्देत् । अ० ८, श्लो० १

अर्थ—"अक्षतयोनि सदृश युवती कन्या से ब्याह करे।"

—साहित्याचार्य 'मग'

* * *

श्रीमती सावित्रीदेवी नागर

उज्जैन में 'भर्तृहरि लाज' के नाम से एक आश्रम है, जिसके द्वारा आध्यात्मिक विषयों का प्रचार और मानसिक शक्ति से रोगों का उपचार होता है। इसके संस्थापक हैं डॉ० दुर्गाशङ्कर जी नागर डी० एस्-सी० ओ० ई० एम्० एच० जी०। आप बड़े निस्पृही, अध्ययन-शील और निस्स्वार्थ भाव से लोगों की सेवा करने वाले व्यक्ति हैं। आप 'कल्पवृक्ष' नाम का मासिक पत्र भी निकालते हैं। हमने स्वयम् देखा है कि रात के १०-११ बजे तक आपके यहाँ हरेक क़िस्म के रोगी काफ़ी तादाद में आया ही करते हैं।

श्रीमती सावित्रीदेवी नागर आप ही की सुयोग्य धर्मपत्नी हैं। आप साधारण पढ़ी-लिखी हैं, पर बड़ी ही कर्मयोगिनी हैं। मालव-प्रान्त शिक्षा में बहुत पिछड़ा हुआ है। कुछ पढ़े-लिखे स्त्री-पुरुष हैं भी, पर वे लोक-लज्जा के भय से अपने विचारों के अनुकूल जीवन नहीं बिता सकते। यदि कोई पुरानी भद्दी रूढ़ियों को तोड़ता है तो उसकी शामत आ जाती है। पर सावित्रीदेवी जी ने झूठी लोक-लज्जा को तोड़ने में लोकापवाद की बिल-कुल परवा न कर, बड़े साहस का परिचय दिया है। आप स्वयम् अपने घर का तथा कार्यालय का प्रबन्ध करती हैं और बाज़ार स्वयम् जाकर किफ़ायत से चीज़ें ख़रीद लाती हैं। 'कल्पवृक्ष' की व्यवस्थापिका आप ही हैं। जब कोई नौकर नहीं होता है, तब आप स्वयम् डाक-ख़ाने जाकर डाक ले आती हैं। हिस्टीरिया, उन्माद, भूत-प्रेत, डाकिन आदि मानसिक रोगों से पीड़ित स्त्रियों का इलाज आप मानसिक चिकित्सा से करती हैं। आपके इलाज से कितने ही स्त्री-पुरुष रोग-मुक्त हुए हैं। हिस्टीरिया और मानसिक रोगोपचार में तो आप बड़ी सिद्धहस्ता हैं। श्वासक्रिया, प्राणायाम, व्यायाम आदि की शिक्षा भी आप देती हैं, जिससे रोग-ग्रस्त स्त्री-पुरुषों को बड़ा लाभ पहुँचता है। आप हिप्नो-टिज़्म, मेस्मेरिज़्म, मेगनेटिकहीलिङ्ग, साइकोथिरेपी, साइकोअनेलेसिस के सिद्धान्त पर ही कार्य करती हैं। यह सब आपने अपने पति डॉक्टर नागर जी से सीखा है। प्रातःकाल से रात्रि के नौ बजे तक आप कार्य में जुटी रहती हैं। नागर जी के पास कितने ही विद्यार्थी और रोगी बाहर से आते हैं, उन सबको आप प्रेम-पूर्वक भोजन बना कर खिलाती हैं। चाहे कितने ही आदमी क्यों न आ जायँ, आप कभी उनकी भोजन-व्यवस्था में नाक-भौं नहीं सिकोड़तीं। चाहे घर में कुछ न हो, अपने भोजन के लिए बचे या न बचे, पर आप अतिथियों के भोजन में किसी प्रकार की बाधा नहीं आने देतीं। परिश्रम करने की आप में यहाँ तक लगन है कि आप कड़े से कड़े जाड़े की और विकट से विकट गर्मी की ज़रा भी परवा नहीं करतीं।

एक बार 'कल्पवृक्ष' की आर्थिक दशा ऐसी गिर गई कि पत्र बन्द करने की नौबत आ गई। ऐसे आपत्ति-काल में श्रीमती जी ने नागर जी से कहा कि मेरे सब ज़ेवर बेच कर पत्र का क़र्ज़ा चुका दीजिए, पर पत्र बन्द न कीजिए। ऐसा ही किया गया, तब पत्र बन्द होने से बचा। क्या हमारी स्त्रियाँ इस तरह अपने प्यारे गहनों का मोह छोड़ सकती हैं ?

एक पागल व्यक्ति को नागर जी ने अच्छा करके अपने पास रख लिया था। वह बीमारों को तङ्ग करने लगा। अन्त में सावित्रीदेवी ने उसे अपने कार्यालय से हटा दिया। उसने आपके मकान के पास ही लोगों की भीड़ इकट्ठी करके बकना शुरू किया। उस पागल और बलवान् व्यक्ति को समझा कर वश में लाने की भला किसकी हिम्मत हो सकती थी। सावित्रीदेवी ने उसे

पहले तो ख़ूब समझाया, पर जब वह नहीं माना, तब डण्डों से उसे सीधा किया। इस तरह आपने अपने अपूर्व साहस का परिचय दिया। इससे हमारी उन स्त्रियों को सबक़ लेना चाहिए, जो ज़रा-ज़रा सी बात में डर जाती हैं।

श्रीमती जी अपने पति के प्रत्येक कार्य में योग देती हैं। इनके यहाँ नित्य सायङ्काल को उपासना होती है, जिसमें एक बार इन पंक्तियों का लेखक भी शामिल

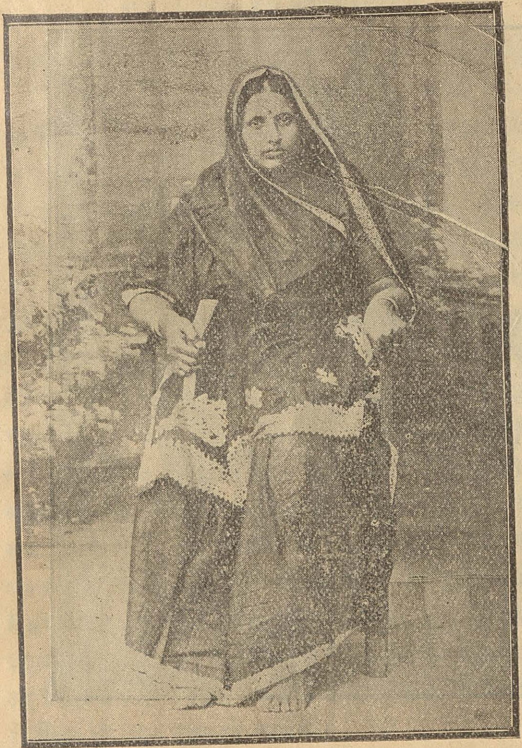

श्रीमती सावित्री देवी नागर

हुआ है, और उसने उपासना का अपूर्व आनन्द उठाया है। श्रीमती जी भी उपासना में, पुरुषों के साथ, बराबर शामिल होती हैं। पीलीभीत-निवासी पं० नित्यानन्द जी रिटायर्ड इञ्जिनियर जब नागर जी के पास आकर रहे तब वे श्रीमती जी की जीवनचर्या देख कर दङ्ग रह गए और इनकी उन्होंने बड़ी प्रशंसा की।

श्रीमती जी का आत्मबल बहुत बढ़ा हुआ है। आपका रहन-सहन बिल्कुल सादा है। आप स्वयम्-निर्मित (Self-made) स्त्री हैं। सेवा ही आपके जीवन का ध्येय है। आपका जीवन इतना शुद्ध और पवित्र है कि बाहर के कितने ही लोग अपनी स्त्रियों को लाकर आपसे शिक्षा दिलवाते हैं। आपने कई नारियों को मानसोपचार सिखला दिया है। धीरज, साहस, आत्म-बल, अदम्य उत्साह और निर्भीकता की आप मूर्ति हैं। आपके एक पुत्र है, जिसकी शिक्षा आध्यात्मिक ढङ्ग पर हो रही है। सचमुच आप आदर्श नारी हैं, आदर्श पत्नी हैं और आदर्श माता हैं। हम परमात्मा से आपकी मङ्गल-कामना करते हैं और चाहते हैं कि आपके द्वारा रोग-ग्रस्त नारियों की अधिक से अधिक सेवा होती रहे।

—कृष्णगोपाल माथुर

* * *

मैथिलों की दुर्दशा

मैथिल ब्राह्मण संस्कृत-विज्ञ कहलाते हैं। पर मेरी धारणा यह है कि 'कूपस्थ मण्डूकोऽयं मैथिलः' कहना ही ठीक होगा। अभी तक इनके पुराने ख़्यालात बने हुए हैं। सुधार करने का अगर कोई नाम भी लेता है तो पण्डितों को बड़ा क्रोध आता है। अभी तक इनको "अष्टवर्षा भवेद्गौरी नववर्षा च रोहिणी" इत्यादि पुराने वाक्य याद हैं। तेरह वर्ष की कन्या का पिता नरकगामी होता है और चौदह वर्ष की कन्या भ्रष्टा होती है! इन धुरन्धर विद्वानों की राय में ग्यारह वर्ष की सयानी कन्याओं का विवाह पचास वर्ष के ख़ासे बुड्ढे बाबा के साथ होना शास्त्रसङ्गत माना जाता है। यदि उन कन्याओं का विवाह बीस-बाईस वर्ष के युवक के साथ ठीक किया जाय तो अनुचित होगा। क्यों? क्योंकि उस 'बच्चे' को पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए! ऐसे महाशयों की राय में "कॉलेजीयो व्यभिचारो व्यभिचारो न भवति", ठीक वैसे ही है जैसे कि "वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति"।

अब सबसे बढ़कर कुप्रथा का हाल सुनिए। बड़ा भाई चाहे कुपात्र हो, अपाहिज हो, नपुंसक हो, शराब पीकर नालियों में तन्मयता का सुख भोगने वाला हो, चाहे जैसा कुछ भी हो, उसका यदि विवाह न होवे,

उसको यदि कोई मूर्ख अपनी कन्या का पति न बनावे तो छोटे भाइयों को भी जन्म भर अविवाहित रह कर जीवन काटना पड़ेगा। हाँ, यह बात अवश्य है कि यदि कोई भाई चाहे तो वह दो-चार दासियों का उपपति बन सकता है और उनके वर्णसङ्कर पुत्रों के पालन-पोषण का भार भी अपने माथे पर ले सकता है।

मैं जो लिख रहा हूँ, उसमें ज़रा भी अत्युक्ति नहीं है। मैथिल-समाज की अवनति दिनोंदिन होती जा रही है। लड़की के लिए सिर्फ़ इसलिए वर नहीं मिलता है कि लोग चाहते हैं कि उसका विवाह किसी पचास वर्ष के महाशय के साथ किया जाय; बीस-बाईस या पचीस वर्ष के युवकों की शादी सिर्फ़ इसलिए नहीं की जाती है कि लोग लड़की पैदा करने का मज़ा तो ज़रा चख लें! ऐसे समाज की जितनी प्रशंसा की जाय, कम ही है।

और क्या कहूँ? हाँ, इस समाज में एक और बात बड़ी तारीफ़ की है। शादी कर लेने के बाद स्त्री अगर

रूस की भावी पीढ़ी

रूस-निवासी कुछ लड़के और लड़कियाँ मिल कर क़वायद कर रहे हैं।

यदि नवयुवक-मण्डली अभी से सुधार करने की चेष्टा न करेगी तो कुछ दिनों के बाद मैथिल मेहतर बनने को भी तैयार होने लगेंगे। जिस समाज में बाईस वर्ष के ख़ूबसूरत जवान की शादी सिर्फ़ इसलिए नहीं हो सकती कि उसके कुपात्र भाई को लोग अपनी लड़की देना नहीं चाहते; पचास वर्ष के आदमी को शादी करने के लिए प्रायः सभी लोग सलाह दिया करते हैं; चौदह वर्ष की काली हुई, या उसकी नाक कुछ चपटी हुई, या उसका भाई ज़रा घमण्डी हुआ, या लड़की अथवा उसके रिश्तेदारों में कोई ऐब हुआ तो वह लड़की हमेशा के लिए छोड़ दी जाती है। इधर पति महोदय को इस बात का डर रहता है कि कोई मुझे नपुंसक न कह बैठे, इस कारण आप दुबारा शादी करने की चिन्ता में रहते हैं। दुर्भाग्य से यदि कोई अभागिनी कन्या का पिता राज़ी हो जाय

तो फिर आप शादी कर भी लेते हैं। परन्तु किसी न किसी बहाने से उसका भी परित्याग कर देते हैं। इस समाज में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है।

—सुरेन्द्रनाथ ठाकुर, बी० ए०, विशारद

* * *

गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति

(आलोचना की आलोचना)

जनवरी, सन् १९२९ के 'चाँद' में मेरा "गोस्वामी तुलसीदास और स्त्री-जाति" शीर्षक जो लेख प्रकाशित हुआ था, उसकी आलोचना श्री० शोभारामजी धेनुसेवक ने अप्रैल, सन् १९२९ के 'चाँद' में की है। जिस शुभकामना तथा पवित्र उद्देश्य से प्रेरित होकर धेनुसेवक जी ने मेरे लेख की आलोचना की है, उसके लिए मुझे उन्हें बिना बधाई दिए नहीं रहा जाता। मेरा लेख देख कर आपका सरल हृदय इस आतङ्क से क्षुब्ध हो उठा कि इससे 'चाँद' के विशाल परिवार में ग़लत-फ़हमी फैल जाएगी; अतः इसके निवारणार्थ ही आपने आलोचना करने का कष्ट उठाया है। अपने इस प्रयास के लिए निखिल 'चाँद'-परिवार के धन्यवाद के पात्र आप अवश्य हैं; पर मेरे भी असंख्य धन्यवादों के आप कुछ कम पात्र नहीं हैं, कारण कि आपने मेरे लेख की आलोचना कर मुझे अपने मत को और भी प्रबल तर्क-शैली के द्वारा सुदृढ़ एवं सुपुष्ट करने का शुभ अवसर प्रदान किया है, जिससे मेरे लेख के रहे-सहे अस्पष्ट अंश, जो विज्ञ पाठकों के लिए तो स्पष्ट ही थे, साधारण पाठकों के लिए भी ख़ूब स्पष्ट हो जायँगे।

आपका पहला आक्षेप तो यह है कि शास्त्री जी ने गोस्वामी जी की रामायण के केवल दोषों का उद्घाटन गुणों पर पर्दा डाल कर किया है। इस पर धेनुसेवक जी की सेवा में मेरा नम्र निवेदन यह है कि यह आक्षेप सरासर निर्मूल है। जिन पाठकों ने मेरे लेख को अपनी आँखें खोल कर पढ़ा होगा उन्होंने अवश्य देखा होगा कि उसकी कतिपय प्रारम्भिक पंक्तियाँ "रामचरितमानस" की केवल प्रशंसा में ही ख़र्च की गई हैं। इसका काव्य-सम्बन्धी उत्कर्ष; इसका माधुर्य; इसकी सर्व-प्रियता; इसकी कतिपय विविध उपदेशों से परिपूर्णता आदि उत्कृष्ट गुणों को आलोच्य लेख में एक शुभ्र आईने की तरह प्रतिबिम्बित करने में तनिक भी कसर नहीं की गई है। सम्भवतः धेनुसेवक जी की कृपा-दृष्टि मेरी उक्त पंक्तियों पर नहीं पड़ी अथवा पड़ी भी तो आपने उनकी उपेक्षा कर दी। आपका कहना बहुत ही ठीक है कि—"पै न पिए पय रुधिर-प्रिय लगी धेनु-थन जोंक।"

आपका दूसरा आक्षेप यह है कि शास्त्री जी गोस्वामी जी को अपने समालोचकों के पथ में विघ्न-बाधा उपस्थित करने वाला समझते हैं। मैंने अभी तक गोस्वामी जी के ऊपर इस विषय का कोई भी आक्षेप न कर केवल "रामचरितमानस" की सर्वप्रियता तथा लोगों की इसके प्रति असीम श्रद्धा और भक्ति को ही इसका कारण बतलाया था। पर यहाँ यदि अब मैं गोस्वामी जी पर उक्त आक्षेप भी करूँ तो कोई अनुचित न होगा और इस आक्षेप के अवसरदाता आप ही ठहरेंगे। आप "जो अनीति कछु भाखौं भाई" आदि चौपाइयों को गोस्वामी जी के पक्ष में उद्धृत करते हुए बालकाण्ड की उन चौपाइयों को भूल गए, जिनके द्वारा गोस्वामी जी ने अपने भावी समालोचकों के मुँह पर अलीगढ़ के ताले चढ़ा दिए हैं:—

छमिहहिं सज्जन मोर ढिठाई।
सुनिहहिं बाल वचन मनलाई॥
हँसिहहिं क्रूर कुटिल कुविचारी।
जे पर दूषण भूषण धारी॥
भाग छोट अभिलाष बड़, करौं एक विश्वास।
पैहहिं सुख सुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास॥
खल परिहास होय हित मोरा।
काक कहहिं कल कण्ठ कठोरा॥
हंसहिं बक दादुर चातकही।
हँसहिं मलिन खल विमल बतकही॥

और भी देखिए:—

अति खल जे विषयी बक कागा।
इहि सर निकट न जाहिं अभागा॥
शम्बुक भेक सिवार समाना।
इहाँ न विषय कथा रस नाना॥
तेहि कारण आवत हिए हारे।
कामी काक बलाक बिचारे॥

जड़ता जाड़ विषम डर लागा ।
गयउ न मज्जन पाय अभागा ॥
जो बहोरि कोइ पूछन आवा ।
सर निन्दा करि ताहि सुनावा ॥

वाह जी गोस्वामी जी महाराज, वाह ! कैसी चालाकी आपने पहले से ही कर रक्खी है जिसमें कोई भी आपके "रामचरितमानस" के विरुद्ध चूँ तक न कर सके ! आपको अपने भावी समालोचकों की कड़ी समालोचना की विभीषिका ने अवश्य धर दबाया था, जिससे बचने के लिए आपने 'रामकथा' की ओट में बैठ कर उन बेचारों पर गालियों की गोलाबारी पहले ही कर दी। ताकि 'क्रूर, कुटिल, कुविचारी, खल, अभागा, जड़ आदि' कहे जाने की लाज से कोई उनकी पोल न खोल सके। किन्तु धेनुसेवक जी जान रक्खें कि पक्के समालोचक उन दृढ़-हृदय डॉक्टरों के सरीखे हैं, जो रोगी के कल्याणार्थ उसकी गालियों, चीत्कारों तथा छटपटाने की कुछ भी परवा न कर उसके परिपक्व व्रण में अपनी लेखनी का तेज़ नश्तर घुसेड़, सड़े-गले पीब को निकाल कर ही छोड़ते हैं। तुलसीदास जी की उक्त चौपाइयों को देख कर ही सुप्रसिद्ध अङ्गरेज़ विद्वान् ग्रिफ़िथ ने गोस्वामी जी के विषय में लिखा था कि—'He has abused the whole race of critics in anticipation,' अर्थात्—'गोस्वामी जी ने अपने समस्त भावी समालोचक-वृन्द को पहले से ही गाली दे रक्खी है।'

धेनुसेवक जी का तीसरा आक्षेप यह है कि शास्त्री जी का "सहज अपावन नारि" इस प्रसिद्ध सोरठे का सिर्फ़ एक चरण उद्धृत कर गोस्वामी जी पर स्त्री-निन्दा का दोष लगाना अनुचित है; क्योंकि गोस्वामी जी ने तो उस अपावन नारि की निन्दा करने के पहले उसका यश चारों वेदों के द्वारा गवा, उसे तुलसी बना विष्णु के मस्तक पर विराजमान कर दिया है—

सहज अपावन नारि, पति सेवत शुभ गति लहहिं।
यश गावत श्रुति चारि, अजहूँ तुलसी हरिहिं प्रिय॥

धेनुसेवक जी ने कहा तो ठीक, किन्तु उक्त सोरठे के वास्तविक मर्म को समझने का कष्ट नहीं उठाया। इस सोरठे के द्वारा गोस्वामी जी ने केवल पातिव्रत्य का महत्व दिखलाया है, न कि स्त्री-जाति का। वह तो आपकी समझ में स्वभावतः ही अपवित्र है; केवल पातिव्रत्य के ही द्वारा उसकी यह जन्मसिद्ध अपवित्रता दूर हो सकती है, अन्यथा नहीं, यही गोस्वामी जी का आशय है। गोस्वामी जी ने स्त्री-जाति की निन्दा तो अवश्य की, पर उन पर केवल इतनी ही दया की कि उन्हें इस निन्दा से मुक्त होने का पातिव्रत्य-रूपी उपाय बतला दिया।

धेनुसेवक जी का चौथा आक्षेप यह है कि शास्त्री जी ने "वृद्ध रोगबश जड़ धनहीना" आदि चौपाइयों के सीधे-सादे अर्थ को तोड़-मड़ोर कर गोस्वामी जी के ऊपर बुड्ढ़ बाबा जी की ओर से सिफ़ारिश करने तथा इनकी नवपरिणीता अल्पवयस्का बधुओं के गले में पातिव्रत्य की कड़वी घूँट ज़बरदस्ती ढकेलने का कलङ्क लगाया है, या यों कहिए उन पर वृद्ध-विवाह के भी समर्थक होने का दोषारोपण किया है। इसके खण्डन में धेनुसेवक जी ने पार्वती की माता मैना के उन वचनों को उद्धृत करते हुए, जिनके द्वारा उसने शिव के साथ होने वाले अपनी कन्या के विवाह का घोर विरोध किया था, यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि गोस्वामी जी वृद्ध-विवाह आदि अनमेल विवाहों के कट्टर शत्रु थे। इस पर मैं धेनुसेवक जी से अति नम्रतापूर्वक यह पूछना चाहता हूँ कि कहीं कोई षोड़शवर्षीया युवती किसी साठ वर्ष के गलित नख-नयन बुड्ढ़ बाबा के पञ्जे में जा फँसे तो उस हालत में तुलसीदासी शिक्षा के अनुसार वह पातिव्रत्य की कड़वी घूँट घूँटने के अतिरिक्त और क्या कर सकेगी ? क्या कोई भी तुलसीदास जी का हिमायती "रामचरितमानस" के पन्ने आदि से अन्त तक उलट मुझे अबला-जाति के पक्ष में ऐसा कोई एक शब्द भी दिखा सकेगा, जिसके बल पर उक्त प्रकार की अत्याचार-पीड़ित एवं निस्सहाय अबलाएँ अपने खूसट पतियों से अपना पीछा छुड़ा अपने अनुकूल किसी सुयोग्य दूसरे पति की शरण लेकर नैराश्य के घोर अन्धकार से मुक्ति पा सकें ?

धेनुसेवक जी का पाँचवाँ आक्षेप यह है कि गोस्वामी जी का उद्देश्य "ढोल गँवार शूद्र पशु नारी" आदि स्त्री-निन्दा-विषयक वाक्यों के लिखने में कुछ समस्त स्त्री-जाति को कलङ्कित करने का नहीं है; उन्होंने तो जहाँ जैसा प्रसङ्ग उपस्थित हुआ है, परिस्थिति के अनुकूल वहाँ वैसा वर्णन किया है। उन्होंने प्रसङ्ग उपस्थित होने पर गृह-देवियों का गौरव गान भी किया है। आदर्श से

पतित पुरुषों के साथ ही उन्होंने कौन सी रिश्रायत की है? इस आक्षेप पर बचार करने के पूर्व गोस्वामी जी के नारी-निन्दात्मक सभी वचनों को उद्धृत कर देना आवश्यक है, ताकि पाठक-वृन्द विवादाधीन विषय को भली-भाँति हृदयङ्गम कर सकें :—

सती कीन्ह चह तहाँ दुराऊ।
देखहु नारि स्वभाव प्रभाऊ॥
यदपि योषिता अनअधिकारी।
दासी मन-क्रम-वचन तुम्हारी॥
अब मोहि आपनि किङ्करि जानी।
यदपि सहज जड़ नारि अयानी॥

—बालकाण्ड

इन उद्धरणों में नारी-मात्र के स्वभाव की निन्दा की गई है तथा उन्हें पुरुषों की दासी, किङ्करी, स्वभावतः जड़, मूर्ख तथा शास्त्रीय ज्ञान की अनधिकारिणी बतलाया गया है।

सहज अपावन नारि।
भ्राता पिता पुत्र उरगारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होहिं विकल मन सकहिं न रोकी।
जिमि रवि मणि द्रव रविहिं विलोकी॥

—आरण्यकाण्ड

इन उद्धरणों में स्त्री-मात्र को अपवित्र, भ्राता-पिता आदि के भी सौन्दर्य पर मुग्ध होने वाली, इन्द्रिय-विवश तथा कुलटा कहा गया है।

ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी।
ये सब ताड़न के अधिकारी॥

—सुन्दरकाण्ड

यहाँ स्त्रियों को ढोल और पशु के साथ परिगणित कर उन्हें भी उन्हीं की तरह पीट-पाट कर ठीक करने का महामन्त्र उपदेशित हुआ है।

सभय स्वभाव नारि कर साँचा।
मङ्गल माहिं अमङ्गल राँचा॥

—सुन्दरकाण्ड

यहाँ नारी-जाति को स्वभावतः डरपोक तथा शुभ में भी अशुभ मनाने वाली लिखा गया है।

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुण आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक अशौच अदाया॥

—लंकाकाण्ड

यहाँ महिला-मण्डल को नाना प्रकार के दुर्गुणों की खान वर्णन किया गया है।

पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती।
अबला अबल सहज जड़ जाती॥

—उत्तरकाण्ड

यहाँ पुरुषों को सब प्रकार से प्रबल तथा स्त्रियों को निर्बल एवं सहज जड़ बतलाया गया है।

उक्त उद्धरणों पर दृष्टिपात करने से धेनुसेवक जी के इस कथन में कि गोस्वामी जी ने स्त्रियों की निन्दा केवल प्रसङ्गवश की है, कुछ भी सार नहीं दीखता; कारण कि केवल शूर्पणखा के सम्बन्ध में कहे गए नारी-निन्दात्मक वचन को छोड़ कर अन्य किसी भी स्थल पर वैसे वचन के लिखने की न कोई आवश्यकता थी न अवसर ही था। अन्य सभी जगह गोस्वामी जी की शुभ-लेखनी का प्रहार अकारण तथा अप्रासङ्गिक हुआ है। एक और भी बात विचारने योग्य है। यदि शूर्पणखा या किसी अन्य स्त्री-विशेष ने ग़लती की तो उसके लिए समस्त नारी-जाति को क्यों कलङ्कित किया जाय? एक के अपराध के लिए उसके सभी सजातियों को क्यों फँसाया जाय? सारांश यह कि गोस्वामी जी का नारी-जाति के किसी व्यक्ति-विशेष के अपराध के कारण उस जाति-मात्र को कलङ्कित कर देना सरासर अन्याय, अकारण और अप्रासङ्गिक है।

धेनुसेवक जी लिखते हैं कि गोस्वामी जी ने आदर्श से पतित पुरुष-समाज के साथ ही कौन सी रिश्रायत की है? अर्थात् जहाँ पाया उन्हें भी ख़ूब फटकारा है। यहाँ पर गोस्वाम जी के पुरुष-निन्दात्मक उन वचनों को उद्धृत कर देना चाहता हूँ, जिन्हें धेनुसेवक जी ने अपने लेख में उल्लिखित किया है, ताकि पाठकगण स्वयं जान लें कि पुरुषों के साथ कुछ रिश्रायत की गई है कि नहीं :—

(क) सुर नर मुनि सबकी यह रीती।
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती॥

(ख) डिगै न शम्भु शरासन कैसे।
कामी वचन सती मन जैसे॥
(ग) कुलवन्त निकारहिं नारि सती।
गृह आनहिं चेरहिं चोर गती॥
(घ) सब अनुचरी करौं प्रण मोरा।
एक बार विलोकु मम ओरा॥
(ङ) मूढ़ तोहिं अतिशय अभिमाना।
नारि सिखावन करसि न काना॥

उद्धरण (क) में धेनुसेवक जी ने 'नर' शब्द का अर्थ पुरुष-समाज लगाया है, जो उनकी भूल है। 'नर' शब्द से नर और नारी दोनों का अर्थ ग्रहण करना चाहिए। जैसे कोई कहे कि मनुष्य मरणशील जन्तु है; तो इससे यह कदापि न समझना चाहिए कि मानुषी (नारी) अमर-प्राणी है; बल्कि केवल एक 'मनुष्य' शब्द से ही मनुष्य और मानुषी दोनों का बोध हो जाता है। इसी प्रकार 'सुर' शब्द से देव और देवी दोनों का, एवं 'मुनि' शब्द से ऋषि और ऋषिका दोनों का बोध होना जानना चाहिए। चौपाई का भाव यह है कि क्या देवता, क्या मनुष्य ; क्या पुरुष, क्या स्त्री ; अथवा यों कहिए प्राणी-मात्र अपने मतलब के यार हैं। इस चौपाई से धेनुसेवक जी के पक्ष को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचता। उद्धरण (ख), (ग) और (घ) के द्वारा केवल कामी और आचार-भ्रष्ट पुरुषों की निन्दा की गई है, न कि पुरुषों की जाति-मात्र की। उद्धरण (ङ) में केवल बालि की निन्दा तथा तारा की प्रशंसा का भाव है ; यहाँ न तो पुरुष-मात्र की निन्दा, न नारी-मात्र की प्रशंसा है।

अब पुरुष-विषयक तथा नारी-विषयक दोनों प्रकार के निन्दात्मक वाक्यों के रूप पर पाठकगण ज़रा ग़ौर से विचार करेंगे तो उनका सूक्ष्म अन्तर मालूम पड़ेगा। नारी-निन्दा के वाक्यों को गोस्वामी जी ने इस रूप में ढाला है कि मानो वे किसी सार्वभौम तथा नित्य-सत्य (Universal and Eternal Truth) की घोषणा कर रहे हों, जो देश-काल से अपरिच्छिन्न होकर नारी-मात्र पर लागू है। पर पुरुष-निन्दा के वाक्यों का वैसा रूप नहीं है ; उनका वही रूप है जो देश-काल से परिच्छिन्न होकर केवल पुरुष-विशेष पर लागू है ; पुरुष-मात्र पर नहीं। बल्कि गोस्वामी जी ने तो "पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती" लिख कर पुरुष-जाति की बड़ाई एक सार्वभौम तथा नित्य-सत्य के रूप में कर डाली है। सारांश यह कि गोस्वामी जी कृत नारी-निन्दा का रूप सैद्धान्तिक, पर पुरुष-निन्दा का वैयक्तिक है। अवश्य ही धेनुसेवक जी ने इस भेद को समझने का कष्ट नहीं उठाया। केवल कौशल्या आदि कुछ एक स्त्रियों की प्रशंसा तथा बालि, रावण आदि कुछ एक पुरुषों की निन्दा कर देने से ही गोस्वामी जी नारी-द्वेष के कलङ्क से नहीं बच सकते। और "रामचरितमानस" में पार्वती जी की सप्तर्षियों के साथ विद्वत्ता-पूर्ण बहस, मन्थरा की कूटनीति, कैकेयी की दूरदर्शिता, सीता जी का वनगमनार्थ पाण्डित्य-पूर्ण भाषण आदि के जो वर्णन हैं, वे कुछ गोस्वामी जी के नारी-जाति के प्रति सद्भाव के परिचायक नहीं हैं ; बल्कि वे उस यथार्थ, नित्य, अगोप्य तथा अदम्य सत्य के ज़बरदस्त प्रस्फोट हैं, जो गृह-लक्ष्मियों के प्रति उनकी निष्ठुर लेखनी के द्वारा लाखों प्रयत्नपूर्वक दबाए जाने पर भी न दब सके।

—रजनीकान्त शास्त्री, बी० ए०, बी० एल०

[इस बात की सच्चाई से इनकार नहीं किया जा सकता कि गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने 'रामचरितमानस' में स्त्री-जाति की स्पष्ट रूप से बुराई की है! साथ ही यह भी सच है कि 'रामचरितमानस' अनेक गुण-सम्पन्न और धर्म तथा भक्ति-विषयक अत्यन्त लोक-प्रिय ग्रन्थ है और इसलिए उसकी शिक्षा के फल से स्त्रियों के अनादर की दृष्टि से देखे जाने में वृद्धि हुई है। लाखों आदमी गोस्वामी जी के 'ढोल, गँवार, शूद्र, पशु नारी। ये सब ताड़न के अधिकारी।' इस चौपाई को प्रमाण मान कर स्त्रियों को लात और जूतों की पात्र मानते हैं तथा उनके साथ वैसा ही व्यवहार भी करते हैं। स्त्रियों की चरित्र-भ्रष्टता के सम्बन्ध में भी हमने अनेक लोगों को गोस्वामी जी की चौपाइयों का प्रमाण देते देखा है। उपर्युक्त लेख के लेखक शास्त्री जी ने 'रामचरितमानस' से स्त्री-निन्दा विषयक अनेक वाक्यों को उद्धृत किया है, पर एक सबसे मुख्य और स्पष्ट उद्धरण

को वे छोड़ गए हैं अथवा भूल गए हैं। 'अरण्य-काण्ड' के अन्त में नारद जी को उपदेश देते हुए श्रीरामचन्द्र जी के मुख से गोस्वामी जी ने कहलाया है:—

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह की धार।
तिन महँ अति दारुण दुखद, मायारूपी नार॥
सुनु मुनि कह पुराण श्रुति सन्ता।
मोह विपिन कहँ नारि बसन्ता॥
जप तप नेम जलाशय झारी।
है ग्रीषम सोखै सब नारी॥
काम क्रोध मद मत्सर भेका।
इनहिं हर्षप्रद वर्षा एका॥
दुर्वासना कुमुद समुदाई।
तिन कहँ शरद सदा सुखदाई॥
धर्म सकल सरसीरुह वृन्दा।
है हिम तिनहिं देत दुख मन्दा॥
पुनि ममता जवास बहुताई।
पलुहहिं नारि शिशिर ऋतु पाई॥
पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निबिड़ रजनी अँधियारी॥
बुधि बल शील सत्य सब मीना।
बंशी सम त्रिय कहहिं प्रवीना॥
अवगुण मूल शूलप्रद, प्रमदा सब दुख-खानि।
ताते कीन्ह निवारण, मुनि मैं यह जिय जानि॥

इस जगह तो गोस्वामी जी ने स्त्री-जाति की निन्दा का ख़ज़ाना ही खोल दिया। आपकी सम्मति में संसार की समस्त बुराइयों, दुर्गुणों की जड़, सद्गुणों की नाशक स्त्रियाँ ही हैं। इस जगह न किसी विशेष स्त्री का ज़िक्र है, न कथा से कोई ख़ास ताल्लुक़। इतना ही नहीं, जब कि रामचन्द्र जी स्वयं अपनी खोई हुई स्त्री के लिए जङ्गल और पहाड़ों में रोते-पीटते फिर रहे हैं, उनके मुँह से स्त्री-जाति के सम्बन्ध में ऐसी सम्मति बिलकुल अस्वाभाविक जान पड़ती है। न हुआ उस समय आजकल का कोई समालोचक, नहीं तो उनसे पूछता कि महाराज, अगर स्त्री ऐसी अवगुणों की खान है और धर्म, जप, तप, सत्य, शील आदि समस्त सद्गुणों के लिए यमराज के समान है, तो आप अक़्लमन्द होकर क्यों उसी बीमारी को फिर गले लगाने की कोशिश कर रहे हैं। अच्छा हुआ आपकी स्त्री सीता जी को कोई हर ले गया—'आँख फूटी पीर मिटी।'

सच तो यह है कि तुलसीदास जी ही का कुछ ख़ास दोष नहीं, मध्य-काल में भारत की शिक्षा और नीति ही ऐसी हो गई थी कि साधु, सन्त और धर्मात्मा लोग स्त्री को तपस्या और मुक्ति के मार्ग में बाधा समझते थे और इसलिए अपने अनुयायियों को उनसे बचने के लिए ज़ोरदार शब्दों में उपदेश देते थे। अब भी अनेक साधु-सन्तों के मुख से ऐसी ही बातें सुनने में आया करती हैं। हिन्दू-धर्म में स्त्रियों को नीचा दर्जा तो बड़े-बड़े दार्शनिक और स्मृतिकार दे ही चुके थे, इन महात्मा लोगों ने उनको अपने मार्ग का कण्टक जान कर और भी पतित बना डाला।

—स० 'चाँद']

* * *

हिन्दू-स्त्रियों में इस्लाम का प्रचार

मैं देख रहा हूँ, कुछ समय से 'चाँद' द्वारा हिन्दू-स्त्रियों में गुप्त रूप से इस्लाम का प्रचार किया जा रहा है। पहले किसी 'मुस्लिम-हृदय' ने 'चाँद' में बहुत सी कहानियाँ लिखी थीं। उनमें से प्रत्येक कहानी को पढ़कर पाठिका के हृदय पर इसके सिवाय और कुछ भी संस्कार नहीं बैठता कि हिन्दू-पुरुष नपुंसक हैं और उनकी स्त्रियाँ मुसलमानों का मज़ेदार शिकार हैं। कहानी के पढ़ने से हिन्दू-स्त्री के हृदय पर मुसलमानों का भय और आतङ्क बैठना अनिवार्य है। यह आतङ्क हमारी बहिनों के चरित्र को निर्बल बनाने का कारण हो सकता है। इनसे उनके हृदय पर मुसलमानों का हौआ सदा बैठा रहेगा। इतना ही नहीं, इस्लाम के इन गुप्त प्रचारकों ने अब एक क़दम और आगे बढ़ाया है। 'चाँद' के जुलाई के अङ्क में मौलवी ज़हूरबख़्श ने 'समाज का

अग्निकुण्ड' नाम से एक कहानी लिखी है। उसमें आपने एक उच्च कुल की हिन्दू-स्त्री का एक मुसलमान-खानसामे के साथ विवाह कराने के बाद उस स्त्री के मुख से साफ़ शब्दों में कहलवाया है कि हिन्दू की अपेक्षा मुसलमान अधिक पत्नी-भक्त होता है और हिन्दू-स्त्री मुसलमान के साथ भाग कर हिन्दू-घराने की अपेक्षा अधिक सुखी और सुरक्षित रहती है। इस कहानी के पाठ से हिन्दू-स्त्री के हृदय में मुसलमान के साथ विवाह करने की इच्छा पैदा होना स्वाभाविक है। इस प्रकार की कहानियों से हिन्दू-समाज की कितनी हानि हो सकती है, इसका अन्दाज़ा कोई भी निष्पक्ष पाठक उस कहानी को पढ़कर स्वयं लगा सकता है। मुझे तो इन कहानियों के लेखक हसन निज़ामी के गुप्त प्रचारक देख पड़ते हैं, जिनकी लच्छेदार भाषा और मनोरञ्जक कथा के लोभ में फँस कर सम्पादक महाशय उनके भीतरी उद्देश्य को नहीं देख रहे हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि इस पतित अवस्था में भी हिन्दू के समान पत्नी-भक्त और दूसरा कोई नहीं। मैं बीसों ऐसे मामले जानता हूँ, जहाँ मुसलमानों के साथ भाग जाने वाली हिन्दू स्त्रियाँ पीछे से अपनी भारी भूल पर पश्चात्ताप के आँसू गिरा रही हैं।

मुसलमान-गुण्डा जिस स्त्री को भगाना चाहता है, पहले महीना दो महीना उसको ख़ूब खिलाता-पिलाता है और उसे प्रसन्न रखने का यत्न करता है। परन्तु स्त्री के पतित हो जाने पर जब वह समझता है कि अब यह वापस नहीं जा सकती, तो वह उस पर अमानुषिक अत्याचार करता है, यहाँ तक कि उस बेचारी का जीवन नरकमय हो जाता है। वह उस पर एक और सौत ला बैठाता है या उसे छोड़ देता है। मेरे पड़ोस में एक मुसलमान फ़ोटोग्राफ़र रहता था। घर में कड़ा परदा था, यद्यपि पुरुष के घर से बाहर चले जाने के बाद परदे की खिड़कियाँ जल्दी-जल्दी खुलती और बन्द होती रहती थीं। एक दिन की बात है कि रात के बारह बजे होंगे। मैं गहरी निद्रा में सोया पड़ा था कि अचानक किसी स्त्री का हाहाकार मेरे कानों में पड़ा। उठ कर मैंने देखा तो फ़ोटोग्राफ़र साहब एक स्त्री को जूतों से पीट रहे थे और वह बेचारी हृदय-द्रावक स्वर में विलाप करती हुई रक्षा के लिए चिल्ला रही थी। परन्तु उस 'सतर' रूपी नरक-धाम में मुझे प्रवेश करने की आज्ञा न थी। मैं विवश होकर कुछ न कर सका। इसके बाद दो-चार बार फिर उस पुरुष को वही पैशाचिक कृत्य करते देखने का मौक़ा मुझे मिला। पता लगाने पर मालूम हुआ कि वह स्त्री पहले हिन्दू थी। उसका एक वृद्ध धनी दूकानदार के साथ विवाह हुआ था। यह मुसलमान उसके पड़ोस में रहता था। इसने उसके साथ गाँठ-साँठ आरम्भ की और उसको भगा लाया। मामला अदालत में गया। तब वह स्त्री उसके हिन्दू-पति को मिल गई। परन्तु अफ़ीम और मदिरा की तरह व्यभिचार भी एक प्रकार का व्यसन और नशा है। यह आसानी से नहीं छूटता। उस स्त्री पर काम-देव सवार था। जवानी की आँधी आ रही थी। वह अपना भला-बुरा कुछ न विचार सकी। वह कई हज़ार का गहना-कपड़ा लेकर फिर उस मुसलमान के पास भाग गई। अब ये लोग उस रुपए से ख़ूब मौजें उड़ाने लगे। जब तक यह रुपया रहा, स्त्री ने किसी प्रकार का कष्ट अनुभव न किया। परन्तु रुपया के समाप्त होते ही उस व्यभिचारी का असली रूप प्रकट हुआ। उसके एक स्त्री पहले भी थी। दोनों सौतें लड़ने लगीं। घर में खाने को कुछ भी न था। स्त्रियाँ हर वक्त फटे-पुराने चिथड़े पहिने रहती थीं। अब उस हिन्दू-स्त्री को अपनी भारी भूल का अनुभव हुआ। वह हृदय में बहुत पछताती थी, परन्तु अपने छुटकारे का कोई उपाय उसे न सूझता था।

कड़े परदे में बन्द रखकर और उस पर नाना प्रकार के पैशाचिक अत्याचार करके उसने उस स्त्री को इतना भयभीत कर रक्खा था कि अत्यन्त दुखी होते हुए भी वह परदे से बाहर निकल कर अपने दुःखों की शिकायत किसी से न कर सकती थी। वह उसी नरक में पड़ी घुल-घुल कर अपनी जान दे रही थी।

इसी तरह एक और हिन्दू-स्त्री मुझे मिली। उसे भी कोई मुसलमान धोखे से भगा ले गया था। वहाँ उसके दो-एक बच्चे भी पैदा हो गए थे। मुसलमान उस पर बड़ा कड़ा पहरा रखता था। पर वह किसी प्रकार वहाँ से भाग ही आई। उसने अपनी जो दुःखमय गाथा रो-रोकर मुझे सुनाई, उसे सुन कर मेरे रोंगटे खड़े होते थे। उसने मुझे बताया कि जो मुसलमान मुझे भगा कर ले गया था, उसकी एक विधवा भौजाई भी

मौजूद है। उसने उसको भी ज़बरदस्ती रक्खा हुआ है। वह बेचारी भी मेरी तरह बहुत तङ्ग है। उसी ने मुझे उस नरक-कुण्ड से निकलने में सहायता दी। वह स्वयं भी हिन्दुओं में आना चाहती है।

एक और मुसलमान स्त्री की बात है, वह शुद्ध होकर हिन्दू बन गई थी। उसका एक हिन्दू-पुरुष के साथ विवाह भी हो गया, परन्तु फिर वह मुसलमानों के बहकाने से दुबारा मुसलमान हो गई। कोई छः सात महीने बाद एक दिन फिर वह हिन्दू बनने के लिए प्रार्थना-पत्र लेकर आई। कारण पूछने पर उसने सुनाया कि मैं एक वर्ष तक आर्य-समाज में रही। यहाँ सभी लोग मुझे बहिन और बेटी समझते रहे। परन्तु हिन्दू-धर्म को छोड़ कर जब मैं दुबारा मुसलमानों में गई तो जिस किसी मौलवी, मुल्ला और वकील से मैंने सहायता माँगी, किसी ने भी मेरे साथ व्यभिचार करने में कसर न रक्खी। मैं इन लोगों के दुराचार से तङ्ग आ गई हूँ, इसलिए मैं फिर हिन्दू-धर्म ग्रहण करना चाहती हूँ। अतएव उस स्त्री को दुबारा शुद्ध कर लिया गया।

मैंने स्वयं अनेक शुद्ध हुई मुसलमान-स्त्रियों के हिन्दू-पुरुषों के साथ विवाह कराए हैं और वे अपने हिन्दू-पतियों से इतनी प्रसन्न हैं कि उनमें से एक ने भी दुबारा मुसलमान होने का नाम नहीं लिया। मुसलमानों ने अपनी स्त्रियों को मूक पशुओं की तरह परदे में बन्द कर रक्खा है। वे बेचारी संसार के स्वतन्त्र वायुमण्डल में साँस नहीं ले सकतीं। अपनी हिन्दू बहिनों को खुले मुँह स्वाधीनतापूर्वक विचरते देख कर उनके हृदय में भी उसी स्वतन्त्रता का उपभोग करने की उत्कट लालसा उत्पन्न होती है। परन्तु बेचारी विवश हैं। इस्लाम ने उनको एक बाँदी से बढ़ कर समाज में कोई स्थान नहीं दिया। इस्लाम के गुप्त प्रचारक 'चाँद' में अपने लेखों द्वारा हिन्दू-स्त्रियों को उसी दासत्व में ले जाने की कुचेष्टा कर रहे हैं। मुझे आशा है, भविष्य में वाचक-वृन्द इन लोगों की चालों से सावधान रहेंगे।

—सन्तराम, बी० ए०

[आजकल देश का जो कलुषित वायुमण्डल हो रहा है, उसे दृष्टि में रखते हुए इस प्रकार का अविश्वास होना एकान्त स्वाभाविक है, किन्तु लेखक महोदय को हम विश्वास दिलाना चाहते हैं कि "एक मुस्लिम-हृदय" तथा अध्यापक ज़हूर-बख़्श जी दोनों ही लेखकों से हम पूर्णतः परिचित हैं और लेखक महोदय को बतला देना चाहते हैं कि हिन्दू-समाज के उत्थान के लिए वे उतने ही उत्सुक हैं जितना कोई भी हिन्दू हो सकता है।

प्रसङ्गवश एक बात हमें इस सिलसिले में कहना है—वह यह कि जिस घटना का 'समाज का अग्निकुण्ड' शीर्षक कहानी में उल्लेख किया गया है वह अप्रिय अवश्य है; किन्तु क्या हम इसे सत्य नहीं मान सकते? पारिवारिक अत्याचारों से व्यथित होकर नित्य ही हमारी अनेक बहू-बेटियाँ विधर्मियों की संख्या बढ़ा रही हैं। जिस जाति का धर्म किसी को छू लेने मात्र से चला जाता हो, जिस जाति की बालिकाएँ असन्तोष की अग्नि में धायँ-धायँ करके आकण्ठ जल रही हों, जिस जाति की विधवाओं का जीवन व्यभिचारी कीड़ों की कृपा पर अवलम्बित हो, उस जाति में यदि इस प्रकार की घटनाएँ घटती हों तो यह उतने आश्चर्य का विषय नहीं है, जितना इनका न घटित होना—यह हमारी निश्चित धारणा है।

लेखक महोदय ने यदि मुसलमानों के हथकण्डों से हिन्दू-महिलाओं को सचेत न कर मरणासन्न उन हिन्दू-परिवारों को चेतावनी दी होती, जिनके आश्रय में रह कर आज स्त्रियों का जीवन कीड़े-मकोड़ों से भी सस्ता समझा जा रहा है, तो हमारा ख़याल है कि लेखक महोदय ने सत्य ही हिन्दू-जाति की प्रशंसनीय सेवा की होती। मुसलमान अथवा ईसाई-गुण्डों के हथकण्डे तभी तक काम कर सकते हैं, जब तक हम अपनी सामाजिक कमज़ोरियों के स्वयं शिकार हो रहे हैं। यदि उनके सामने इस प्रकार प्रलोभनों का ढेर न दिखाई दे तो वे स्वयं सुधर जायँगे। 'अपनी कमज़ोरियों के लिए दूसरों को दोषी ठहराना न्याय का गला घोटना होगा। —स० 'चाँद']

दिल की आग उर्फ़ दिल-जले की आह !

[लेखक—"पागल"]

तृतीय खण्ड

७

इस बीच में तारा की हालत दिनोंदिन बिगड़ती गई। शायद इस वजह से कि मुझे इन दिनों अपने मकान पर बहुत कम जाने का अवसर मिलता था। यद्यपि उसकी सेवा-शुश्रूषा के लिए 'नर्स' थी ही, फिर भी 'नर्स' की सेवा ख़रीदी हुई थी। वह लाख उत्तम होने पर भी उसमें सूखे कर्तव्य ही की अधिक झलक हुआ चाहे, जिसमें वह स्वाभाविक स्नेह और सहानुभूतिपूर्ण मिठास, जो आत्मीय जनों की सेवा में होता है, हो ही नहीं सकता—और यही बीमारों की तड़पती हुई आत्मा को अमृत की तरह शान्ति प्रदान करता है। इसी के अभाव से शायद तारा की बेचैनी कम होने के बदले इतनी बढ़ी कि इसके बुख़ार ने 'टाइफ़ाइड' का लक्षण धारण किया, जिसमें औषधि के अतिरिक्त सेवा ही पर अधिक भरोसा किया जाता है। इधर अलिन्द को उसके उपद्रवी दिमाग़ के मारे छोड़ते नहीं बनता था। इसलिए मैं इसको अपने यहाँ ज़बरदस्ती ले आया। इसके साथ इसके घर की औरतों को भी मेरे यहाँ आकर रहना पड़ा। यद्यपि इन बूढ़ी औरतों को मुझसे परदा ही क्या हो सकता था? अस्तु, जो कुछ इसका सङ्कोच था भी, वह तो उनके मकान में मेरे एकाएक घुस जाने से और वहीं रह कर अलिन्द की देख-भाल करने में मिट चुका था। यहाँ तक कि अब मैं इन लोगों के लिए कोई बेगाना मनुष्य नहीं, बल्कि उन्हीं के परिवार का एक आत्मीय जन हो गया।

इन लोगों के आ जाने से मेरा सूना घर एकाएक चहचहा उठा। इनके स्नेह को पाकर मेरा शुष्क हृदय भी हरा-भरा हो गया। अपने आत्मजनों से नाता टूट जाने से दुनिया में रह कर भी मैं अपने को दुनिया से अलग समझता था। इसी से मुझ पर एक अजीब मुर्दनी सी हरदम सवार रहती थी। मगर अलिन्द के परिवार में घुल-मिल जाने से मेरी यह मुर्दनी आप ही आप जाती रही और एक अपूर्व आनन्द की लहरें मेरे ख़ून में दौड़ने लगीं। मैं भी अब समझने लगा कि मैं दुनिया का कोई पृथक् जीव नहीं हूँ—जिसके कोई न हो, बल्कि मेरे भी सब कोई हैं। इन लोगों के प्रभाव से मैं यहाँ तक बदल गया कि जब अलिन्द की माँ ने तारा को देख कर मुझसे कहा कि—"डॉक्टर बाबू, हम लोग अपने प्राण देकर भी आपसे उऋण नहीं हो सकते। आपने बहू को ऐसी बीमारी की दशा में अकेली छोड़ कर मेरे लड़के की जान बचाई।" तब मुझसे कुछ भी बोला न गया। मैं सर नीचा किए इस 'बहू' शब्द का आनन्द मन ही मन लेने लगा। उस वक़्त सचमुच यही जी चाहा कि मेरे भी कोई गृहिणी होती तो क्या कहना था?

मगर तारा के सम्बन्ध में यह भ्रम जो इन लोगों में फैल गया, इसको मुझसे किसी तरह भी अब मिटाते बन नहीं पड़ा। कई बार इसके लिए उद्योग भी किया, मगर बात ज़बान पर आ-आकर अटक गई। यही सोच कर रह जाता था कि अब शक के सवालात पैदा होंगे कि यह कौन है, किसकी लड़की है; यहाँ क्यों रहती है? इनके ठीक-ठीक जवाब किस तरह दूँगा। और जवाब सुन कर यही लोग फिर मेरी या तारा की तरफ़ कैसे आँख उठा कर देखेंगे। इनकी इतनी आत्मीयता और स्नेह पाकर मुझे अब खो देने का साहस न हुआ। इसलिए मुझे इस भ्रम का अब पड़ा रहना ही उचित और रुचिकर जान पड़ा।

मगर इसी के साथ एक फ़िक्र और पैदा हो गई कि कहीं यह भण्डा फूट न जाए। इसके लिए मुझे तारा की माँ से तो अधिक भय न था। क्योंकि जब से तारा मेरी

देख-रेख में जाकर 'बोर्डिङ्ग-हाउस' में रहने और स्कूल में पढ़ने लगी थी, तभी से उसकी माँ मेरे आदेशानुसार इस तरह चलती आई कि किसी को भी यह खुल्लमखुल्ला न मालूम हो सका कि यह उसकी लड़की है। यहाँ तक कि इसका स्कूल में नाम लिखाने के लिए जब मैंने उससे इसके पिता का नाम हिचकिचाते-हिचकिचाते पूछा था तो उसने बिना किसी सङ्कोच के एक प्रतिष्ठित नाम भी बताया था और वही मैंने वहाँ लिखा दिया था, जिससे मुझे विश्वास था कि जैसा भविष्य मैं तारा के लिए बनाना चाहता हूँ उससे वह भी सहमत है। इधर दो-एक साल से अलबत्ता जब से तारा की जवानी खिल उठी थी, उसकी माँ की ममता बेटी के लिए बढ़ चली। और वह उस पर अपना हक़ जमाने के वास्ते कई तरह की कभी-कभी कोशिश करती रही। इसी नीयत से उसने इसका पढ़ना छुड़ा देने के लिए मुझसे कई बार कहा था। और तीन-चार दफ़े मेरे अनजाने तारा को अपने यहाँ बोर्डिङ्ग से किसी न किसी बहाने बुलवा भी लिया था। मगर इसकी बीमारी की वजह से फिर वह ढीली पड़ कर मेरी ख़ुशामद में लग गई। इसलिए अब वह यह जानती हुई कि मैं यह नहीं पसन्द करता कि वह अपनी किसी काररवाई से यह प्रकट करे कि तारा उसकी लड़की है, इस वक़्त कदापि ऐसी कोई बेढङ्गी बात नहीं कर सकती। उस पर मैं ख़ुद ही तारा की ख़बर किसी न किसी तरह उसके पास बराबर पहुँचाता ही रहता था। इसलिए मेरे घर पर उसके आने का कोई खटका न था। मगर कहीं तारा ही न इस भ्रम को भाँपते ही इसका विरोध कर बैठे। इसका भी असर कुछ कम बुरा न होगा। क्योंकि तब न जाने यह भ्रम कैसे-कैसे कुविचारों में बदलेगा। यह सोच कर अब जाना कि हाय! मैंने बड़ी ग़लती की जो शुरू ही में इस भ्रम को निर्मूल नहीं कर दिया। उस वक़्त अगर मैं फ़ौरन कह देता कि यह मेरी स्त्री नहीं, बल्कि मेरी कोई रिश्तेदार है तो कुछ भी न बिगड़ता और न इस वक़्त मुझे इतनी घबड़ाहट होती। उफ़! मैंने कैसी नादानी की। ज़रा सी चूक में कितनी बड़ी मूर्खता कर बैठा। क्या इस भ्रम ने मुझे इतना अन्धा कर दिया था या इसके नशे में मैं एकाएक क्या इतना मस्त हो गया था कि इसका परिणाम और इसके निभाने की कठिनता मुझे उस वक़्त कुछ भी नहीं सुझाई दिए? क्या गृहस्थी की लालसा में सचमुच इतनी मादकता होती है या इसके भीतर कोई और ही बात थी?

मगर अब पछताने से क्या होता? जब कई दिनों तक मैंने इस भ्रम के विरुद्ध अपना हाथ नहीं उठाया तो अब इसका संशोधन करना और भी मूर्खता थी। इन दिनों में तारा का ज्वर इतना बढ़ा हुआ था कि वह आँख बन्द किए बराबर बेसुध पड़ी रही। मगर इन लोगों के आने के छठे या सातवें दिन से उसके बुख़ार में कमी-बेशी होने लगी। और तभी से मुझे यह चिन्ता बुरी तरह सता रही थी। क्योंकि जब उसका ज्वर घटता था तब वह कुछ चैतन्य होकर अलिन्द की माँ और फूफी से पूछताछ करती थी। और ये लोग उससे मेरे मना कर देने पर भी इधर-उधर की बातें करने लग जाती थीं। ऐसे वक़्त मेरे कान हर वक़्त खड़े रहते थे। जैसे ही बात-चीत की कुछ भनक मालूम होती थी, वैसे ही मैं वहाँ जाकर बातों का सिलसिला तितिर-बितिर करके इस विषय को उभरने नहीं देता था। मगर इस तरह की काररवाई कब तक और कहाँ तक करता? इसलिए अब भलाई इसी में थी कि किसी न किसी प्रकार तारा को इस मामले में सावधान कर दूँ।

मगर उससे इस भ्रम के सम्बन्ध में कुछ कहने के लिए कैसे मुँह खोलता? ज़बान पर बात आने के पहले ही मेरा सर नीचा हो जाता था और ज़बान शर्म से कटने लगती थी। फिर भी मैंने बहुत उद्योग करके अपने दिल को मज़बूत किया और एक दिन इस भेद को तारा से कह डालने को तुल गया। उस रोज़ सुबह को उसका बुख़ार और दिनों से ज़्यादा घट कर १०० डिग्री तक आ गया था। यद्यपि वह कमज़ोर बहुत हो गई थी, फिर भी पहले से उस वक़्त अधिक चैतन्य थी। ऐसे अवसर पर मैं उसी के पास डटा रहता था, ताकि मेरे रहने से न वह ज़्यादा बोल सके और न मेरे और उसके सम्बन्ध ही पर कोई चर्चा छिड़े। उस दिन भी मैं एक अख़बार लेकर उसके कमरे में एक आराम-कुर्सी पर इतमीनान से बैठ गया, इस प्रसङ्ग को रोकने ही के लिए नहीं, बल्कि तारा को सावधान करने के लिए भी। मगर अलिन्द की माँ, जिन्हें मैं भी अब माँ जी कहने लगा था, उसकी सेवा में इस

तरह लगी हुई थीं कि मुझे तारा से कोई भी भेद की बात कहने का अवकाश ही नहीं मिला।

तारा का सर अपनी गोद में सहलाती हुई एकाएक माँ जी उससे पूछ बैठीं—तुम टेढ़ी माँग क्यों निकालती हो? सुहागिनों को ऐसी माँग, जिसमें सेन्दुर न लगाया जा सके, भला कहीं शोभा देती है........

सेन्दुर का नाम सुनते ही मेरे होश उड़ गए। कलेजा धक्-धक् करने लगा कि कहीं तारा कह न बैठे कि मैं सुहागिन नहीं, बल्कि अभी कुमारी हूँ। इसलिए जब तक वह आगे कुछ कहे या इसका कोई उत्तर दे, मैं बोल उठा—लड़कियों के स्कूल में यही फ़ैशन है।

माँ जी—आग लगे ऐसे फ़ैशन को। आपके घर में कोई वृद्धा होती तो भला ऐसा अनर्थ कहीं चलने पाता? राम! राम! बहू, तुम्हें भी सचमुच अब तक अक़्ल नहीं आई। तुम्हारे वह (मेरी तरफ़ इशारा करके) तो ऐसे साहब नहीं हैं, मगर तुम क्यों ऐसी मेम बन गई कि एक चुटकी सेन्दुर का भी यों अनादर करने लगीं? तभी तो देखो बीमारी पीछा नहीं छोड़ती, वरना इतने दिन हो गए और अब तक बुख़ार नहीं उतरता?

मेरे काटो तो ख़ून नहीं। जिस बात को बचाता आता था वही कम्बख़्त एकाएक आकर सामने फट पड़ी। अब क्या करता, किस तरह इसको निबाहता, कुछ समझ में नहीं आया। बस, मैं बड़े विनीत नेत्रों से तारा का मुँह निहारने लगा। उसका चेहरा यह सुनते ही सुर्ख़ हो गया। ईश्वर जाने यह ग़ुस्से की तमतमाहट थी या लज्जा की लालिमा। मैं समझता था कि अब यह झुँझला कर सब चौपट करने वाली है कि इतने में उसकी नज़र मेरी नज़र से मिली। वैसे ही वह मुस्करा पड़ी। तब फिर क्या कहना था, मेरी जान में जान आई और शान्ति की मुस्कराहट मेरे चेहरे पर भी दमक उठी।

८

बीमारी का कारण सेन्दुर का अनादर करना बताना स्वयं ही एक ऐसी बेतुकी और हास्यजनक बात थी कि इसे सुनते ही कोई बिना हँसे रह नहीं सकता था। मगर इस वक़्त इस बेतुकी बात ही ने मेरे लिए सञ्जीवनी मन्त्र का काम किया, क्योंकि इसके हास्य-प्रभाव के आगे तारा का कोप भड़क न सका और उस पर मेरी मौजूदगी ने भी अपना कुछ ऐसा दबाव डाला कि वह कुछ भी बोल न सकी, बल्कि उसने तकिए में अपना मुँह इस तरह छिपा लिया कि माँ जी ने उससे बात-चीत करने के लिए कई दफ़े बच्ची, बेटी, बहू, करके सम्बोधन किया, मगर बोलना तो दूर रहा, उसने अपना सर ही नहीं उठाया। 'बहू' का शब्द सुन कर जो भ्रम मेरे चुप रहने से उत्पन्न हुआ था, वही इस वक़्त तारा की चुप्पी से और भी अटल हो गया।

उस दिन से जब कभी उसकी दृष्टि मुझ पर पड़ती थी, वह मुस्करा कर लज्जा से जकड़ जाती थी और तब मेरे चेहरे पर भी ख़ुशी की झलक कुछ इस तरह चमक उठती थी कि मेरे ओंठ लाख रोकने पर भी बिना मुस्कराए नहीं रहते थे। इसलिए मुझे ख़ुद ही उसके पास बार-बार जाते अब झिझक मालूम होने लगी। उसकी यह लज्जा और अपनी यह झिझक कोई ग़ैर-मामूली बात न थी, क्योंकि कुमारियों का उनके शादी-विवाह के प्रसङ्ग पर शरमा जाना उनका स्वभाव ही है। उस पर उनमें किसी को यह कह देने से कि अमुक तेरा पति है, क्रोध और लज्जा से उसकी बुरी हालत हो जायगी। इस बात के कहने वाले या कहने वाली पर वह किसी वजह से अपना ग़ुस्सा दिखा सके वा न दिखा सके, मगर पति कहलाने वाले के सामने वह ज़रूर ही शर्म से कट मरेगी और मुँह चुराएगी। उसका यह कष्ट देखते ही मेरा दिल अपने को इसका अपराधी जान कर धड़क उठना ही चाहे। क्योंकि उसके इस सङ्कट का कारण मेरी ही मूर्खता थी। यही सब सोचकर मुझे उसके सामने जाने में सङ्कोच मालूम होता था। फिर भी विवश होकर कभी-कभी जाना ही पड़ता था। और जब जाता था और वह चैतन्य होती थी तो जाते ही आँखें नीची किए उसका हाल-चाल पूछ कर मैं अलिन्द का प्रसङ्ग छेड़ देता था। क्योंकि इसमें उसे ख़ास दिलचस्पी मालूम होती थी और वह सब भूल-भाल कर उसी में लीन हो जाती थी।

अलिन्द का हाल उसे पहले मालूम न था। क्योंकि जब मैं अलिन्द के घर उसकी देख-रेख के लिए रहता था, तब तारा को यही बताया गया था कि किसी रोगी ने अपनी दवा-दारू के लिए मुझे स्थायी रूप से कई दिनों के लिए अपने यहाँ बुलवा लिया है। और जब मैं अलिन्द को लेकर उसकी माँ और फूफियों के साथ

अपने मकान पर आया, तब उसकी बीमारी का दूसरा हफ़्ता था, और बुख़ार निरन्तर १०५ डिग्री पर होने के कारण उसकी ज्ञान-शक्ति में कुछ ठीक-ठीक समझने का दम ही नहीं था। तीसरे हफ़्ते में जब रोग का कोप कम होने लगा, तब मैंने माँ जी से ताकीद कर दी थी कि कोई उससे अलिन्द की घटना का हाल न कहे, क्योंकि परिचित जनों की विपत्ति की एकाएक सूचना पाने से सुनने वाले के हृदय पर कष्ट पहुँचता है। और यह समाचार तारा की सँभलती हुई दशा में कुछ न कुछ ठेस लगाता ही। उधर अलिन्द भी तारा से बिल्कुल बेख़बर था, क्योंकि उस दिन, जब तारा ने बरामदे में आकर नारी-हृदय की कठोरता पर विरोध किया था, तब वह या तो इसे अँधेरे में देख न सका था या अपने स्वप्न की धुन में इतना डूबा हुआ था कि उसने तारा को पहचाना ही नहीं, वरना वह इसके सम्बन्ध में मुझसे ज़रूर कुछ पूछता। यहाँ आने पर वह मरदाने हिस्से में रक्खा गया। जहाँ उसे अपनी माँ और फूफियों द्वारा यही ख़बर मिलती रही कि डॉक्टर बाबू की स्त्री बीमार है, मगर वह स्त्री कौन है, यह जानने वाला मुझे छोड़ कर और कोई न था।

मगर तब से तारा मुझे देख कर शरमाने लगी। यहाँ तक कि उसे मुँह से कुछ बोलना भी मेरे सामने दूभर हो जाता था और मुझे भी उसके पास जाकर बातचीत के लिए कोई भी प्रसङ्ग सुझाई नहीं पड़ता था। तब मैंने एक दिन अलिन्द का हाल उससे कहा और यह भी बताया कि वह मेरे ही मकान में है। उस वक़्त वह इतनी बेचैन हो उठी कि अगर उसमें चारपाई पर से उठने की ज़रा भी शक्ति होती तो वह ख़ुद ही उसके पास पहुँच जाती। उसकी यह उत्कण्ठा देखकर मुझे विश्वास-सा हो गया कि इसके हृदय में हो न हो अलिन्द के प्रेम का बीज ज़रूर पड़ गया है और अब इसे सावधानी से सींचने से इसका हरा-भरा पौधा शीघ्र ही उत्पन्न हो सकता है। फिर तो जहाँ स्त्री के हृदय में किसी पुरुष के लिए काफ़ी प्रेम पैदा हो गया, तहाँ तो वह प्रेम उस पुरुष के दिल पर भी अपना प्रभाव डाल ही देता है। इसीलिए मैं तारा से मिलने पर अलिन्द की बातें और भी करने लगा।

चौथे हफ़्ते में तारा सूख कर बिल्कुल काँटा हो गई। हिलने-डोलने तक का भी उसमें दम नहीं रह गया। मगर किसी तरह अट्ठाईसवें दिन उसका बुख़ार उतरा। इस बीच में वह बराबर मुझसे अलिन्द को किसी तरह अपने पास बुला देने के लिए ज़िद करती रही, मगर अलिन्द को उसके कमरे में लाने के लिए न जाने क्यों मेरी हिम्मत न पड़ी। यही सोच कर रह जाता था कि उसे तो मालूम है कि मेरी स्त्री बीमार है, मगर इसको जब इस हालत में देखेगा तो वह क्या समझेगा और अपने दिल में क्या कहेगा। और दूसरे वह जिसके दिल में तारा के लिए अभी तक कुछ भी दिलचस्पी पैदा नहीं हुई है, इसे अब मेरी स्त्री जान कर भला इससे प्रेम करने का किस तरह साहस करेगा। इसी अड़चन में पड़ा मैं इस समस्या को सुलझाता रहा और इधर दिन पर दिन बीतने लगे।

तारा के बुख़ार उतरने के बाद उसकी हालत बड़ी शीघ्रता से सँभलने लगी। तीन ही चार दिनों में वह उठने-बैठने लगी। तब मुझे चिन्ता हुई कि ऐसा न हो कि इसकी उत्कण्ठा ख़ुद ही अलिन्द के पास खींच ले जाय। इसलिए उस वक़्त झख मार कर मुझे अलिन्द से सब हाल साफ़-साफ़ कह देना मुनासिब जान पड़ा। और इसी नीयत से मैं उसके पास जाकर बैठा भी, मगर न जाने क्यों तारा के सम्बन्ध में अब उससे बातें करने के लिए उद्योग करने पर भी मेरी ज़बान लड़-खड़ाने लगी। जब इतने दिनों तक उसके पास नित्य कई बार उठता-बैठता था, मगर कभी मैं यह प्रसङ्ग न उठा सका, तो आज उसे एकाएक कहने के लिए कहाँ से शब्द ला सकता था। आख़िर उसी ने मुझे बड़ी देर तक चुप देख कर बातचीत शुरू की।

अलिन्द—अब तो तुम्हारी स्त्री अच्छी है न?

मैं मुँह से कुछ भी उत्तर न दे सका। केवल सर हिला कर रह गया।

अलिन्द—शुक्र है। मगर डॉक्टर, अब कब तक मुझसे चारपाई पर एड़ियाँ रगड़वाओगे। कोई ऐसी दवा नहीं है जिससे मैं चल-फिर सकूँ?

मैं—भाई सच पूछो तो इसका इलाज बस मालिश है। भीतरी दवा तो केवल मरीज़ के सन्तोष के लिए दी जाती है। यह मुझे तुमसे नहीं कहना चाहिए था, मगर ईश्वर की कृपा से तुम्हारे पैर की उँगलियों में अब

कुछ-कुछ हरकत आ गई है, जिससे अब कोई अन्देशे की बात नहीं है। ईश्वर चाहेगा तो तुम्हारा पैर सदा नाकाम नहीं रहेगा। क़ुदरत इसे धीरे-धीरे ठीक कर देगी। मगर हाँ, वक़्त लगेगा।

अलिन्द—फिर भी कितना? हाय! कब तक मुझे मुहताज बन कर इस तरह रहना पड़ेगा? गो भाई, तुम्हें मैं ग़ैर नहीं समझता, तोभी मुझसे अपनी यह मुहताजी ख़ुद ही नहीं देखी जाती। क्या करूँ?

मुहताजी की बात मुझे खटकी। मगर इस पर कुछ कहने के बदले इसका प्रसङ्ग साफ़ उड़ा देना ही मुनासिब मालूम हुआ।

मैं—हाँ, तो कभी-कभी लाठी के सहारे चला-फिरा करो, ताकि पैर में ख़ून तो दौड़े।

अलिन्द—जब कमरे में कोई नहीं होता, तब यहीं चलने की कोशिश करता हूँ, मगर किसी के सामने मुझसे एक टाँग से मेंढक की तरह फुदका नहीं जा सकता। इसीलिए कभी कमरे के बाहर जाने की हिम्मत नहीं पड़ी।

मेरा ध्यान तो अपने सोचे हुए प्रसङ्ग पर था। ऊपरी मन से उसकी बातों का जवाब दे देता था और मन ही मन तारा के सम्बन्ध में बातचीत छेड़ने की युक्ति सोचता था। मगर अफ़सोस! लाख कोशिशों पर भी उसका नाम मेरे मुँह से निकलता ही न था। अपनी इस कशमकश पर मैं मन ही मन अपनी मूर्खता से उत्पन्न किए हुए भ्रम को कोस रहा था। क्योंकि मेरे हृदय में यह चोर पैदा करने वाला यही एक प्रत्यक्ष कारण हो सकता था। इतने में एकाएक उसीने इस प्रसङ्ग का द्वार खोला।

अलिन्द—हाँ, भला तुमने तारा के चित्र को उसके पास भिजवा दिया था?

मैं—क्यों? क्या उस दिन, जब तुमने अपने स्वप्न की बात कही थी, उसे बाहर बरामदे में नहीं देखा था? उसी ने तो कहा था कि नारी-हृदय इतना पैशाचिक नहीं हो सकता।

अलिन्द—अरे वह थी? मैंने ख़्याल ही नहीं किया। यह भी नहीं याद है कि उसने क्या कहा था। भाई, उस वक़्त तो मेरा हृदय धायँ-धायँ जल रहा था। मैं आप ही उसकी आग में तड़प रहा था। बस, इतना जानता हूँ कि किसी ने उस वक़्त मुझे टोका था। वह आवाज़ पहचानी हुई मालूम हुई थी। उसके बाद मुझे कुछ याद हो आया था। और उसके साथ ही मेरे जलते हुए हृदय पर मानों कहीं अमृत की बूँद टपक पड़ी। वैसे ही मैं उठ कर चला गया। हाँ, तो तारा यहाँ......नहीं कुछ नहीं।

मैं—क्या पूछना चाहते थे, पूछते क्यों नहीं?

अलिन्द—नहीं, उसके सम्बन्ध में मुझे किसी से भी कुछ पूछना नहीं है।

मैं—क्यों? क्या वह तुम्हारी नज़रों में इतनी गिरी हुई है?

अलिन्द—नहीं-नहीं, यह बात नहीं है, बल्कि मैं तो उसकी बड़ी इज़्ज़त करता हूँ। यों तो मैंने सैकड़ों ही स्त्रियों के चित्र खींचे होंगे, मगर जितनी इसकी इज़्ज़त मेरे दिल में है उतनी किसी की भी नहीं।

मैं—आख़िर इसमें कौन सी बात ख़ास ख़ूबी की है?

अलिन्द—सभी बातें। विद्या, ज्ञान और भाव में वह एकता है ही, फिर भी वह बच्चे से भी बढ़कर भोली है। यह बड़ा ही अनोखा गुण है डॉक्टर! क्योंकि जहाँ ज्ञान होता, है वहाँ भोलापन ठहर नहीं सकता। मगर अफ़सोस है कि उसका हृदय कलप रहा है। क्यों? पता नहीं।

जैसे किसान अपने खेत को हरा-भरा देखकर आपे में नहीं समाता, वैसे ही तारा की तारीफ़ सुनकर मेरा दिल बाँसों उछल पड़ा। क्योंकि वह मेरी ही बदौलत इस प्रशंसा के योग्य हुई थी। इसलिए अपनी मिहनत की सफलता देखकर मैं क्यों न ख़ुश होता?

मैं—इस साल वह इन्ट्रेन्स में फ़ेल हो गई थी। इसी से वह उन दिनों रञ्जीदा रहती थी। और तो कोई कारण उसके रञ्ज का हो नहीं सकता।

अलिन्द—नहीं डॉक्टर, यह बात नहीं है—इसमें कोई भेद है। इसी से उस पर मुझे बहुत तर्स आता है। दुखियों को दुखियों से एक स्वाभाविक सहानुभूति हो जाती है। ये लोग एक दूसरे की चाहे कुछ भी मदद न कर सकें, फिर भी इनकी सङ्गत में एक दूसरे के लिए ऐसी सच्ची सहानुभूति का आभास मिलता है, जो हृदय

(शेष मैटर ६०३ पृष्ठ के पहले कॉलम में देखिए)

घरेलू दवाइयाँ

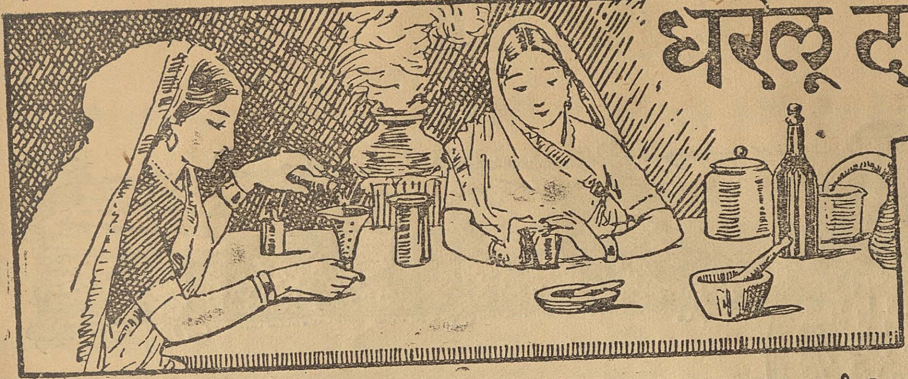

दिमाग़ की गर्मी दूर करने की अचूक दवा

सफ़ेद चन्दन का बुरादा २ तोला, कपूर १ तोला, ख़स २ तोला, केशर ३ रत्ती—इन चीज़ों को बारीक पीस कर गाय के लौनीं घी (नेनूँ) में मिला कर मस्तक में मालिश करे। २० दिन बराबर मालिश करने से दिमाग़ में गर्मी न रहेगी और नेत्रों की रोशनी भी बढ़ेगी।

* * *

कम नींद आना

ख़सख़स (अफ़ीम का बीज) बहुत ही बारीक पीस कर सिर में मले तो नींद अधिक आवेगी ?

* * *

कम दूध उतरना

जिन स्त्रियों के दूध न उतरता हो वे शतावर को सुखा कर बारीक पीस लें और खाँड़ मिला कर दो तोले की पुड़िया बना लें। एक पुड़िया रोज़ गाय के ताज़ा दूध के साथ फाँक ले। दूध इतना उतरेगा कि बच्चा भूखा न रहेगा।

—रामस्वरूप राठी

* * *

खाँसी की दवा

बहेड़ा में घी लपेट दें और फिर जामुन के पत्तों से लपेट कर मिट्टी में गोली बाँध ले। इसको आग में पका ले। इसके खाने से खाँसी शीघ्र दूर हो जाती है।

* * *

बच्चों के दस्त

अतीस, मुर्दाशङ्ख और खट्टे अनार की कली (अनार की कली को मिट्टी में लपेट कर पका लेना चाहिए)—इन तीनों को बराबर लेकर पानी में पीस कर पिलावे।

कर्ण-पीड़ा

अकवन के पत्ते का रस और दो बूँद घी मिला कर गुनगुना कर लगावे।

* * *

दाद की दवा

सोहागा को आग में भून किसी लोहे के बर्त्तन में पीस डाले। फिर घी मिला कर मलहम बनाकर लगावे—तत्काल लाभ होगा।

* * *

शिर-पीड़ा

धूप को बकरी के दूध में पीस कर लगावे, जल्द आराम होगा।

—कुमारी सावित्री देवी

* * *

गर्भकारक

गुलाब का फूल १ माशा और गाय का घी २ माशा लेकर दोनों को ख़ूब रगड़े। जब काजल के समान हो जावे तब ऋतु-स्नान करके स्त्री इसका नास ले। तीन रोज़ तक इतनी दवा यदि दाहिनी नाक में डाले तो लड़की और यदि बाईं नाक में डाले तो लड़का उत्पन्न होता है। यह नुसख़ा एक फ़क़ीर का बतलाया हुआ है।

* * *

दस्त

धाय के फूल, सफ़ेद राल, मोचरस, बेल का गूदा सम भाग लेकर चूर्ण बना ले। सायं-प्रातः चार-चार माशा चूर्ण खाकर ऊपर से लोहे से बुझा हुआ मट्ठा पीना चाहिए। दस्त फ़ौरन बन्द हो जायँगे।

—उत्तराकुमारी वाजपेयी

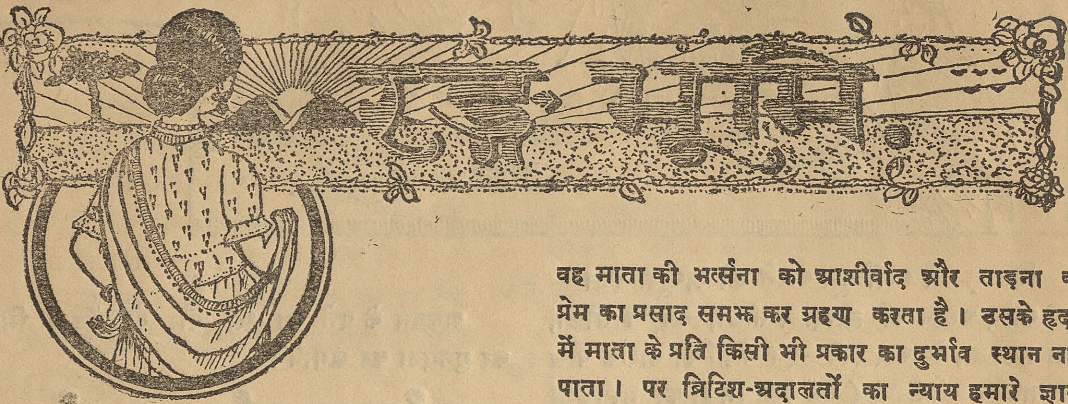

न्याय का ताण्डव !

ब्रिटिश-न्याय एक विचित्र वस्तु है ! उसे समझना मनुष्य की साधारण बुद्धि से परे की बात है। न्याय की उपमा एक अन्धी स्त्री से दी गई है, जो सुन सकती है, पर देख नहीं सकती—जो झगड़े का निर्णय वादी और प्रतिवादी के बयानों को सुन कर करती है ; उनका मुँह देख कर—उनके चेहरे के गोरे और काले रङ्ग पर विचार करके नहीं। रमणी-रूप में न्याय की कल्पना करने का अभिप्राय शायद यह है कि जिस प्रकार स्त्रियों का हृदय दयालु और कोमल होता है, उसी प्रकार न्याय के हृदय में भी दया और कोमलता का निवास होना चाहिए। न्यायाधीश का व्यवहार अपराधियों और अभियुक्तों के प्रति सायन्त कोमलता और दया से पूर्ण होना चाहिए। जिस प्रकार माँ अपने दुष्ट बच्चों को वात्सल्य-पूर्वक और उनकी मङ्गल-कामना के भाव से डाँटती और दण्डित करती है, उसी प्रकार न्यायाधीश को अपराधी के कल्याण के लिए उसे दण्ड देना चाहिए। दण्ड का एक ही उद्देश्य है और वह है दण्डित व्यक्ति, उसके परिवार तथा समाज का मङ्गल-साधन। मङ्गल-भाव से प्रेरित होकर जो दण्ड दिया जाता है, उसके प्रति दण्डित व्यक्ति के हृदय में क्रोध या विद्रोह का भाव नहीं उत्पन्न होता। मूर्ख बालक भी माता के कटु-वचनों और मुष्टि-प्रहारों का वास्तविक अभिप्राय समझने में कभी भूल नहीं करता। वह माता की भर्त्सना को आशीर्वाद और ताड़ना को प्रेम का प्रसाद समझ कर ग्रहण करता है। उसके हृदय में माता के प्रति किसी भी प्रकार का दुर्भाव स्थान नहीं पाता। पर ब्रिटिश-अदालतों का न्याय हमारे ज्ञान-तन्तुओं में एक प्रकार का विद्रोहात्मक कम्पन पैदा करता है। ब्रिटिश-न्यायालयों के अधिकांश फ़ैसले हमारे हृदय में क्रोध की ज्वाला और ग्लानि की शिखा प्रज्वलित करते हैं। क्यों ? क्योंकि उनमें हमारे हित की सच्ची भावनाओं का अभाव होता है। ब्रिटिश-न्याय का वास्तविक उद्देश्य भारतीय समाज का मङ्गल-साधन करना नहीं है। व्यापार-नीति तथा शिक्षा-पद्धति की भाँति उसका भी आन्तरिक ध्येय है भारतवर्ष की दुःखी और दरिद्र प्रजा को चिरकाल के लिए ग़ुलाम बना कर रखना !

ब्रिटिश-अदालतें भारतवर्ष की पददलित और क्षुधा-पीड़ित जनता के करुण-क्रन्दन और मर्मभेदी हाहाकार के प्रति घोर उपेक्षा और निन्दनीय अवहेलना का भाव प्रदर्शित करती हैं। जिस समय ब्रिटिश-साम्राज्य की रक्षा का प्रश्न आता है, उस समय ब्रिटिश-न्याय के सैकड़ों कान हो जाते हैं ; वह हज़ारों आँखों से देखने लगता है ; उसके हृदय में साम्राज्य के प्रति करुणा का अथाह समुद्र उमड़ आता है। पर जिस समय ख़ूनी समाज और विदेशी सरकार दोनों के द्वारा त्रस्त और पीड़ित तथा जन्म-जन्मान्तर से सताई हुई भारतवर्ष की ग़रीब और अशिक्षित जनता के जीवन और मरण का प्रश्न उपस्थित होता है, उस समय ब्रिटिश-न्याय एकदम अन्धा हो जाता है, उसमें अभियुक्तों के विषण्ण वदन और दैन्य तथा आतुरतापूर्ण भाव-भङ्गी को देखने की शक्ति नहीं रह जाती। वह दया से शून्य हो जाता है। जिस समय भारतवर्ष की असहाय

विधवाएँ और दरिद्र किसान अभियुक्त बना कर अदालतों में उपस्थित किए जाते हैं, उस समय ब्रिटिश-न्यायालय न्याय के सच्चे उद्देश्य और मानव-हृदय की समस्त विवेकशीलता को तिलाञ्जलि देकर भारतीय दण्ड-विधान (Indian Penal Code) के अन्ध अनुयायी बन जाते हैं।

हाल ही में बहराइच ज़िले के शाहमुहम्मद जोगी नामक एक ग़रीब किसान ने भूख से आतुर होकर तथा अन्न-कष्ट से छटपटाते हुए अपने परिवार की दुर्दशा अपनी आँखों से न देख सकने के कारण आत्महत्या करना चाहा था। बेचारे ने अपने साथ ही अपने बच्चों को भी ख़ूनी समाज के अत्याचार से मुक्त कर देने का विचार किया। आह! दैन्य और निराशा के उस बीभत्स ताण्डव-नृत्य को देख कर क्रूर काल की आँखों में भी ख़ून के आँसू उतर आए होंगे!! निराशा और शोक से उद्भ्रान्त होकर बेचारे दीन किसान ने अपने ही हाथों अपने हृदय के लालों को क़त्ल कर दिया! अपने दो पुत्रों—जिनकी अवस्था क्रमशः १½ और ९ वर्ष की थी—की हत्या करने के बाद वह आत्मघात करने के लिए कुँए में कूद पड़ा। पर ख़ूनी, निर्दयी और अत्याचारी समाज ने उस अभागे को आत्मघात भी न करने दिया। वह कुँए से निकाला गया और उसके विरुद्ध ब्रिटिश-अदालत में आत्महत्या का प्रयत्न करने का अभियोग उपस्थित किया गया। जज ने निर्मम हृदय से उसकी करुण-कहानी सुनी और ब्रिटिश-न्याय की वेदी पर मनुष्यता का बलिदान करके उसे आजन्म कालेपानी की सज़ा दे दी!! क्या न्याय के नाम पर न्याय की हत्या का इससे बढ़ कर और कोई कलुषित उदाहरण हो सकता है?

इलाहाबाद-हाईकोर्ट से दण्डित होने वाली मुसम्मात बिबिया की करुण-कहानी पाठकगण पढ़ चुके हैं। बेचारी भोली-भाली बालिका यह भी न जानती थी कि मेरा विवाह कब हुआ, किसके साथ हुआ और किस अशुभ घड़ी में मैं विधवा होगई! यौवन के उन्माद से पीड़ित होकर बिबिया ने प्राकृतिक शक्तियों के सामने सिर झुका दिया और किसी लोभी तथा भीरु पुरुष ने उसकी विवशता से अनुचित लाभ उठाया, यही बेचारी विधवा का सबसे बड़ा अपराध था! बिबिया के गर्भ रह गया। महीनों तक समाज का तिरस्कार और अपमान सहन करने के बाद जिस दिन उसे प्रसव हुआ, उस दिन उसके धैर्य का बाँध टूट गया। समाज के भय का भूत भयङ्कर रूप धारण करके उसे डराने लगा। वह जानती थी कि उसके प्रसव की बात के प्रकट हो जाने पर उसे मुँह छिपाने के लिए संसार में कहीं भी स्थान न मिलेगा, उस समय न ब्रिटिश-सरकार उसकी रक्षा करेगी और न समाज के पाषाण-हृदय में उसके प्रति दया का सञ्चार होगा। जिस समय वह अपने जिगर के टुकड़े को क़ब्र में दफ़ना रही होगी, उस समय उसके मातृ-हृदय में प्रेम और त्रास के परस्पर-विरोधी भावों में कैसा भीषण घात-प्रतिघात हुआ होगा—कितने कोमल और मधुर शब्दों में उसने समाज और उसके सहयोग के आधार पर टिकी हुई ब्रिटिश-शासन-प्रणाली को आशीर्वाद दिया होगा—इसकी कल्पना करना भी सुखी तथा स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने वाले जजों के लिए असम्भव है! सुख और विलास का उपभोग करने वाला मनुष्य उस अभागिनी दुखिया के साथ कभी न्याय कर ही नहीं सकता। पर ब्रिटिश-न्याय को इससे क्या? वह ग़रीबों और पीड़ितों

(६०० पृष्ठ का शेषांश)

की ज्वाला को बहुत कुछ शान्त करता है। मगर वह अपनी तस्वीर तक लेने नहीं आई, और न उसने अपना पता ही बताया, इसलिए उससे किस तरह मिलता।

मैं—अरे! तो कहा क्यों नहीं, वह तो यहीं है।

अलिन्द—यहाँ? आज भी।

मैं—हाँ। मगर बीमार है।

अलिन्द—तब भई, ईश्वर के लिए मुझे उसके पास ले चलो। तुम ज़रा सहारा दो। मैं लाठी के बल किसी तरह एक टाँग घसीटता हुआ चल लूँगा।

अलिन्द, जब से उसका एक पैर बेकार हो गया, सिवाय अपनी माँ के और किसी के सामने भी चलते हुए नहीं देखा गया। वही आज एक हाथ से मेरा कन्धा और दूसरे हाथ से अपनी लाठी पकड़ कर बिना किसी सङ्कोच के सबके सामने कमरे से बाहर निकल पड़ा। तारा से मिलने की इसे इतनी बेताबी? यह देखकर मैं दङ्ग हो गया।

तीसरा भाग समाप्त

(क्रमशः)

(*Copyright*)

* * *

की रक्षा के लिए नहीं है ; उसका कर्त्तव्य तो आँख मूँद कर मेकॉले-स्मृति की आज्ञाओं का पालन करते रहना है ! ब्रिटिश-न्याय ने मुसम्मात बिबिया को शिशु-हत्या के अपराध में आजन्म कालेपानी का दण्ड दे दिया !!

हम जानना चाहते हैं कि इस अमानुषिक दण्ड-व्यवस्था से क्या लाभ है ? क्या आजन्म कालेपानी का दण्ड पाने से शाहमुहम्मद जोगी और मुसम्मात बिबिया का जीवन सुधर गया ? क्या इन भयानक दण्डों का समाचार सुन कर समाज के एक भी व्यक्ति के हृदय में इन अपराधों के प्रति त्रास का भाव उत्पन्न हुआ ? कभी नहीं ; हो नहीं सकता । जिस समय ये अपराध किए जाते हैं, उस समय अपराधी अपने होश में नहीं रहता । जो व्यक्ति भूख से छटपटा कर और समाज के अत्याचारों से ऊब कर अपने अस्तित्व तक को मिटा देने पर उतारू हो जाता है, उसके हृदय में दण्ड का भय कहाँ रह सकता है ? ऐसे विवेकहीन दण्डों से न तो दण्डित व्यक्ति का जीवन सुधरता है और न समाज में इन अपराधों का घटित होना ही बन्द होता है । जब तक भारतीय समाज में सनातन-धर्म के नाम पर सत्य की हत्या होती रहेगी तथा ब्रिटिश-सरकार की शोषण-नीति का नग्न ताण्डव होता रहेगा, तब तक ऐसे अपराधों का बन्द होना असम्भव है । इस बात को भली-भाँति जानते और समझते हुए भी न्याय के नाम पर दरिद्र किसानों और असहाय विधवाओं के साथ इस प्रकार की अमानुषिक क्रूरता क्यों की जाती है ? इन अपराधों से ब्रिटिश-साम्राज्य के विनाश का भी तो कोई भय नहीं है ! क्या इस क्रूरता में भी समाज के प्रति सरकार की कोई मङ्गल-भावना छिपी हुई है ?

हमें दुःख और खेद के साथ कहना पड़ता है कि ब्रिटिश-अदालतें दीन प्रजा का अपमान करके ही सन्तुष्ट नहीं होतीं, वे पतित भारतवासियों के हृदय में अपनी बहुओं और बेटियों, देवियों और ललनाओं की सम्मान-रक्षा के उठते हुए भावों को कुचलना भी अपना कर्त्तव्य समझती हैं ! राजकुमारी मैया के धर्म की रक्षा करने के लिए वीरवर खड्गबहादुर को ब्रिटिश-न्यायालय से कौन सा पुरस्कार मिला था, यह पाठकों को विदित ही है । इस कलुषित नाटक का अन्तिम दृश्य, जो हाल ही में समाप्त हुआ है, सबसे अधिक वीभत्स है । राजकुमारी मैया को गर्हित उद्देश्य से ख़रीदने के अभियोग पर कलकत्ते के एडिशनल चीफ़ प्रेज़िडेन्सी मैजिस्ट्रेट की अदालत में पद्मप्रसाद पर मुक़द्दमा चलाया गया था । राजकुमारी की ओर से बनारस की जन्म-सूची (Birth Register) का हवाला देकर यह बताया गया कि पद्मप्रसाद के द्वारा ख़रीदे जाने के समय राजकुमारी नाबालिग़ थी । पद्मप्रसाद ने उसी रजिस्टर का दूसरा हवाला देकर अदालत को यह बताया कि राजकुमारी मैया को जिस समय उसने ख़रीदा, उस समय वह बालिग़ थी । मैजिस्ट्रेट को पद्मप्रसाद की बात जँच गई । उसने पद्मप्रसाद को अभियोग से मुक्त कर दिया । इसके बाद राजकुमारी ने पद्मप्रसाद के विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित किया कि पद्मप्रसाद ने बनारस की जन्म-सूची का जो हवाला दिया था, वह जाली था और उसने जाली काग़ज़ को अदालत के सामने सच्चा कह कर पेश किया है । मैजिस्ट्रेट के जाँच-पड़ताल कर चुकने पर मुक़द्दमा कलकत्ता-हाईकोर्ट में पेश हुआ । मिस्टर जस्टिस जैक और एक जूरी के सामने मुक़द्दमे की सुनवाई हुई । जूरी ने सर्व-सम्मति से पद्मप्रसाद को जाली दस्तावेज़ बनाने का अपराधी पाया और जज ने जूरी की राय से सहमत होकर पद्मप्रसाद को तीन साल के सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया । इस फ़ैसले के विरुद्ध पद्मप्रसाद ने एडवोकेट जनरल (Advocate General) का सर्टिफ़िकेट लेकर अपना मुक़द्दमा हाईकोर्ट के फ़ुल बेञ्च के सामने पेश कराया ।

फ़ुल बेञ्च के बहुमत पक्ष की ओर से चीफ़ जस्टिस ने जो फ़ैसला सुनाया है, वह एक साथ ही हास्यास्पद और निन्दनीय है । फ़ैसले में कहा गया है कि जस्टिस जैक और जूरी के सामने पद्मप्रसाद के विरुद्ध ऐसी-ऐसी बातें कही गई हैं, जिन्हें सुनकर जूरी के मन में अवश्य ही पक्षपात का भाव उत्पन्न हुआ होगा । इसलिए जूरी का निर्णय मान्य नहीं हो सकता । मिस्टर जस्टिस जैक ने इस फ़ैसले का विरोध करते हुए अपना फ़ैसला अलग लिखा है । वह कहते हैं कि फ़ुल बेञ्च जिन बातों को जूरी के हृदय में पक्षपात का भाव उत्पन्न करने वाली समझता है, उन बातों का अदालत के सामने लाया जाना आवश्यक था । फ़ुल बेञ्च को केवल अनुमान के आधार पर यह कभी नहीं कहना चाहिए कि उन बातों को सुनकर जूरी के मन में निश्चय

ही पक्षपात का भाव उत्पन्न हुआ होगा। मिस्टर जस्टिस जैक कहते हैं कि एक जज और जूरी के एक सम्मत फ़ैसले को केवल मात्र अनुमान के आधार पर रद्द कर देने की प्रथा वास्तव में बहुत ही आपत्तिजनक है। हम मिस्टर जस्टिस जैक की सम्मति से पूर्णतया सहमत हैं कि पूर्व-निर्णय को केवल अनुमान के आधार पर रद्द करके कलकत्ता-हाईकोर्ट ने घोर निन्दनीय कार्य किया है।

आज यदि एक अङ्गरेज़-महिला की सम्मान-रक्षा का प्रश्न होता, तो न्याय को इस प्रकार शब्द-जाल के चक्कर में न फँसाया जाता। हमें याद है, सन् १९२४ ई० के एप्रिल मास में कुछ सरहदी डाकुओं ने कोहाट ज़िले की अङ्गरेज़ी फ़ौज के जनरल स्टाफ़ ऑफ़िसर मेजर एलिस की कन्या को चुरा लिया था। इस एक छोटे से समाचार ने साम्राज्य के शासक-मण्डल में एक बार ही तहलका मचा दिया। भारत के वाइसराय महोदय ने पर्वत-शृङ्ग पर खड़े होकर गर्जते हुए कहा था कि अङ्गरेज़-कुमारी यदि शीघ्र ही मेजर एलिस के हवाले नहीं कर दी गई, तो अपराधियों को दण्ड देने के लिए अङ्गरेज़ी सरकार ब्रिटिश-साम्राज्य की समस्त शक्ति का उपयोग करने को बाध्य होगी। यह छोटा सा समाचार केवल शिमला-शैल की चोटियों से ही टकरा कर नहीं रह गया, इसने सात समुद्र पार करके विलायत की पार्लामेण्ट को हिला दिया। सम्राट् महोदय का सिंहासन तक क्रोध से कम्पायमान हो उठा। मेजर एलिस की कन्या और नेपाल की राजकुमारी के अपमान में इतना भेद है !! मिस एलिस का पता लगाने वाली मिसेज़ स्टार को स्वयं सम्राट् महोदय ने अपने हाथों से स्वर्ण-पदक और "क़ैसरे हिन्द" की उपाधि प्रदान की थी; पर राजकुमारी मैया के सम्मान की रक्षा करने वाले स्वार्थत्यागी और देशभक्त खड्गबहादुर को सपरिश्रम कारावास का पुरस्कार दिया गया !!!

अङ्गरेज़ रमणी और भारतीय महिला के सम्मान में कितना भयङ्कर भेद है ! जो सरकार गोरे और काले चमड़े में इतना भेद समझती है, उसकी अदालतों से न्याय की आशा रखना निरा भोलापन है। ब्रिटिश अदालतें भारत-सन्तानों के साथ ऐसे मामलों में कभी न्याय नहीं कर सकतीं, क्योंकि शासक और शासित का भेद भुला कर सबके साथ निष्पक्ष भाव से न्याय करना उनका उद्देश्य नहीं है। सेना, पुलिस, स्कूलों, कॉलेजों आदि की भाँति आजकल की अदालतें भी भारतवासियों को गुलाम बनाए रखने का एक साधन हो रही हैं। किन्तु हम दृढ़ विश्वास और अटल सत्यनिष्ठा के साथ यह बतला देना चाहते हैं कि न्याय यदि समाज के मङ्गल-साधन की चिन्ता नहीं करेगा तो समाज को न्याय के सुधारने की चिन्ता अवश्य करनी पड़ेगी।

* * *

इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल और कॉलेज

भारतवर्ष में शिक्षित मनुष्यों की संख्या ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही है (दुर्भाग्यवश यह संख्या बहुत ही धीरे-धीरे बढ़ रही है), त्यों-त्यों स्त्री-शिक्षा के अभाव के कारण उत्पन्न होने वाली बुराइयों का रूप अधिकाधिक भयावह होता जा रहा है। पति महाशय बी० ए०, एल्-एल्० बी० पास सुयोग्य वकील हैं, तो पत्नी महाशया चक्की चलाने में बी० ए० और गोबर पाथने में एल्-एल्० बी० परीक्षोत्तीर्ण फूहड़ गृहस्वामिनी हैं ! इस प्रकार की अनमेल और हास्यास्पद जोड़ियों का भारतवर्ष में अभाव नहीं है। इससे उत्पन्न होने वाली बुराई भी प्रत्यक्ष है। कोई बी० ए० अथवा एम० ए०, एल्-एल० बी० साहब अपनी अपढ़ पत्नी के फूहड़पन से ऊब कर दूसरा विवाह कर लेते हैं, तो कोई दुराचार का मार्ग पकड़ते हैं। दोनों अवस्थाओं में अशिक्षित पत्नी का सर्वनाश ही होता है। यह मानो हुई बात है कि पत्नी जब तक विद्या और बुद्धि में पति के समान न होगी, तब तक पति उसको अपनी अर्द्धाङ्गिनी और सहधर्मिणी किसी भी प्रकार नहीं समझ सकता। इस स्वाभाविक नियम के विरुद्ध शिकायत करना मूर्खता है। प्राकृतिक नियमों को मान कर चलने से ही मनुष्य अपनी परिस्थिति का स्वामी बन सकता है, अन्यथा नहीं।

पति-पत्नी की जोड़ी मिलाने में यदि विवेक से काम लिया जाय तो भारतीय समाज की बहुत सी समस्याएँ अनायास ही हल हो सकती हैं। इसके लिए स्त्री-शिक्षा की सबसे बड़ी आवश्यकता है। मूर्ख पुरुषों के लिए देश में मूर्खा स्त्रियों का अभाव नहीं है ; पर शिक्षित पुरुषों के योग्य स्त्रियों का मिलना बहुत ही कठिन होगया है। पुरुषों की बराबर संख्या में ही जब तक स्त्रियाँ भी

शिक्षित नहीं की जायँगी तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। स्त्रियों की शिक्षा का क्या स्वरूप होना चाहिए, इस विषय पर मतभेद हो सकता है; किन्तु इसमें कोई शङ्का नहीं कि समाज में यदि पारिवारिक शान्ति की स्थापना करना अभीष्ट है, तो स्त्रियों के लिए किसी न किसी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध करना ही पड़ेगा। आज पाठकों को हम एक ऐसी संस्था का परिचय देना चाहते हैं, जो अपनी परिस्थिति के अनुसार स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही प्रशंसनीय कार्य कर रही है।

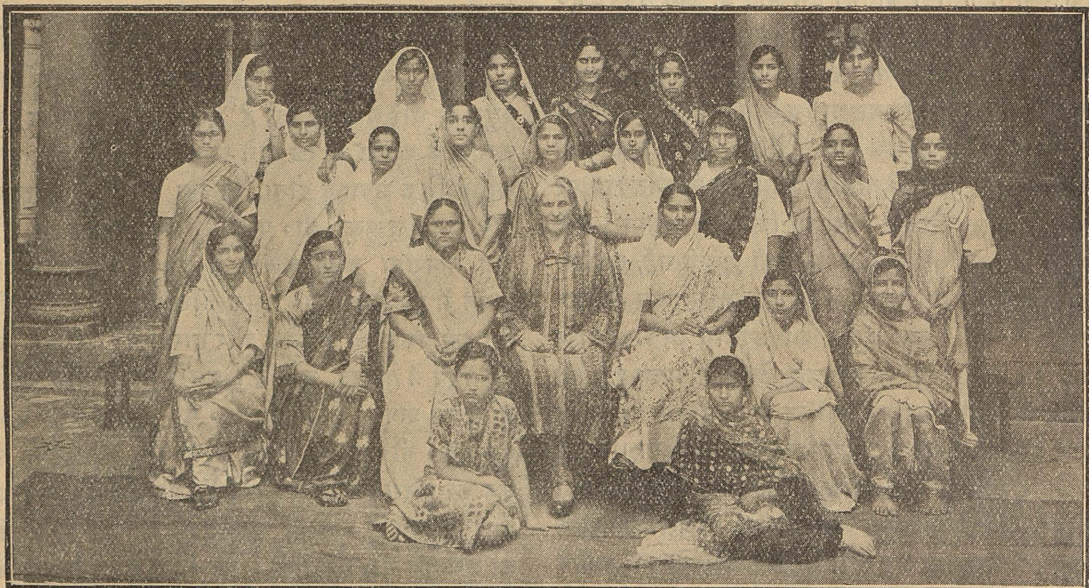

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई-स्कूल तथा इण्टरमीजियट कॉलेज के छात्रावास में रहने वाली कुछ लड़कियाँ। इनमें से कुछ भारतवर्ष के दूर-दूर के स्थानों से आई हुई हैं। छात्रावास की कर्तव्य-परायणा मेट्रन श्रीमती प्रियम्बदा, प्रिन्सिपल की बग़ल में बाईं तरफ़ बैठी हैं।

दिल्ली का इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स स्कूल और इन्टरमीजियट कॉलेज एक ऐसी संस्था है, जिसके लिए भारतवासी अभिमान कर सकते हैं। इस स्कूल ने आज से २५ वर्ष पहले एक भाड़े के मकान में केवल ९ लड़कियों को लेकर अपना कार्य आरम्भ किया था; पर चौथाई शताब्दी के अथक परिश्रम और निरन्तर अध्यवसाय के बाद आज यह स्कूल एक प्राइमरी पाठशाला की स्थिति से उठ कर इन्टरमीजियट कॉलेज की श्रेणी तक पहुँच गया है। जिस स्कूल में आरम्भ में केवल नौ लड़कियाँ पढ़ती थीं, उसमें आज ५१० से अधिक लड़कियाँ शिक्षा पा रही हैं। उपयुक्त स्थान का अभाव, आर्थिक कठिनाइयाँ तथा प्रोत्साहन का अभाव आदि अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी स्कूल के प्रबन्धकों ने जिस उत्साह और तत्परता का परिचय दिया है, उसके लिए यह संस्था बधाई का पात्र है। स्कूल के प्रबन्धकों में जो सबसे प्रशंसनीय गुण है, वह यह है कि स्कूल के इतनी उन्नति कर चुकने के बाद भी वे सन्तुष्ट होकर नहीं बैठ गए हैं; वे अपनी संस्था को इन्टरमीजियट कॉलेज की श्रेणी से भी ऊपर उठाकर उपाधि-विद्यालय (Degree College) के पद तक पहुँचाने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्कूल ने गत २५ वर्षों में किस प्रकार धीरे-धीरे, किन्तु निश्चित गति से उन्नति की है, इसका इतिहास बहुत ही मनोरञ्जक है।

श्रीमती एनी बिसेण्ट के स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी विचारों से प्रोत्साहित होकर स्वर्गीय लाला बालकिशन दास जी ने इस स्कूल की स्थापना की। आज दिल्ली नगरी को इस बात पर गर्व हो सकता है कि उसके लगभग प्रत्येक मुहल्ले में लड़कियों का एक स्कूल है; किन्तु जिस समय

लाला बालकिशन जी ने इस स्कूल की स्थापना की थी, उस समय दिल्ली में हिन्दुओं के द्वारा स्थापित अपने ढङ्ग की यह सर्व-प्रथम संस्था थी। उस समय का कट्टर हिन्दू-समाज स्त्री-शिक्षा के नाम से ही घबराता था। जनता की सहानुभूति न होने के कारण प्रबन्धकों को क़र्ज़ लेकर

विद्यार्थिनियों की संख्या जब ३०० तक पहुँच गई, तब एक छात्रावास की आवश्यकता प्रतीत होने लगी और अगले ही वर्ष एक छोटे से छात्रावास का प्रबन्ध भी हो गया। सन् १९१९ में छोटे-छोटे बच्चों की शिक्षा के लिए इस स्कूल में किण्डरगार्टन की प्रणाली का प्रवेश कराया

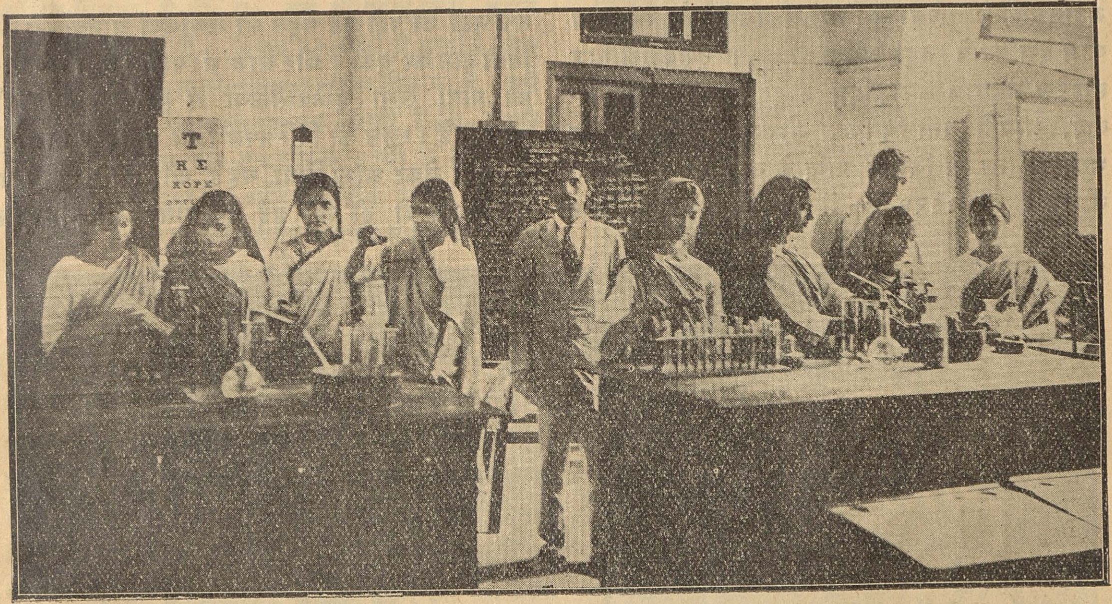

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई-स्कूल और इयटरमीजियट कॉलेज की मैट्रिक क्लास की कुछ लड़कियाँ, जो साइन्स का प्रयोग कर रही हैं।

स्कूल का काम चलाना पड़ता था। सन् १९०७ ई० में जिस समय स्कूल के संस्थापक लाला बालकिशन दास जी की मृत्यु हुई, उस समय स्कूल पर लगभग एक हज़ार रुपयों का क़र्ज़ था। तब स्कूल में केवल ८२ लड़कियाँ पढ़ती थीं। धीरे-धीरे विद्यार्थिनियों की संख्या बढ़ने लगी और उनके लिए स्थान की कमी का अनुभव होने लगा। बहुत दिनों तक स्कूल का काम इसके उदार संस्थापक के मकान में चलाया गया। इसके बाद जब स्कूल के लिए नया मकान बन गया, तब स्कूल उसमें चला गया।

सन् १९११ ई० में यह स्कूल मिडिल कक्षा तक पहुँच गया और जिन लड़कियों की इच्छा होती थी, उन्हें अङ्गरेज़ी भी पढ़ाई जाने लगी। सन् १९१३ ई० में प्रथम बार इस स्कूल की ३ लड़कियाँ मिडिल की परीक्षा में सम्मिलित हुईं और तीनों उत्तीर्ण हुईं।

गया और मिस जेम्स बड़ी ही योग्यतापूर्वक इस प्रणाली से लड़कों को शिक्षा देने लगीं। दुर्भाग्यवश सन् १९२६ ई० में मिस जेम्स की मृत्यु हो जाने से स्कूल को बड़ी हानि पहुँची और आज तक उनके स्थान की पूर्त्ति नहीं हो सकी है। सन् १९१६ ई० में स्कूल को हाई स्टैण्डर्ड तक पहुँचाने के अभिप्राय से धन इकट्ठा करने का एक कार्य-क्रम प्रस्तुत किया गया। अगले दो ही वर्षों में प्रबन्धकों और सहायकों के उत्साह और तत्परता के फल-स्वरूप आवश्यक धन एकत्र हो गया और सन् १९१८ ई० में प्रथम बार एक विवाहित लड़की ने इस स्कूल से मैट्रिकुलेशन की परीक्षा पास की। इसके बाद इस होनहार कन्या ने बनारस हिन्दू-युनिवर्सिटी से बी० ए० की उपाधि प्राप्त की और आजकल वे पटना में स्त्री-शिक्षा के क्षेत्र में बहुत ही प्रशंसनीय कार्य कर रही हैं।

सन् १९१७ ई० में स्कूल की सुयोग्य प्रिन्सिपल मिस गमाइनर के राजनीतिक कार्यों से असन्तुष्ट होकर सरकार ने स्कूल को सहायता देना बन्द कर दिया; पर स्कूल के प्रबन्धक लेशमात्र भी हतोत्साह नहीं हुए। वे स्कूल का काम पहले की भाँति ही सफलतापूर्वक चलाते रहे। सन् १९२२ ई० में कई प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित महानुभावों ने स्कूल का निरीक्षण किया और स्कूल का काम देख कर वे बहुत प्रसन्न भी हुए। दर्शकों में हिज़ हाइनेस महाराज कोटा, हिज़ हाइनेस महाराज झालावाड़, श्रीमती एनी बिसेण्ट, लोकमान्य तिलक, सेठ घनश्यामदास जी बिड़ला आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। सन् १९२४ ई० में यह स्कूल इन्टरमीजियट बातों की शिक्षा दी जाती है। भोजन बनाना, कपड़े पर बेल-बूटा काढ़ना, सिलाई करना, रोगियों की सेवा, प्रारम्भिक चिकित्सा, शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-विज्ञान से लेकर कपड़े धोना तथा बरतन साफ़ करने तक की शिक्षा का बहुत ही उत्तम प्रबन्ध किया गया है। इस स्कूल का परीक्षा-फल विशेष रूप से अच्छा होता है। इस समय तक यहाँ की पढ़ी हुई बहुत सी लड़कियाँ युनिवर्सिटी की डिग्री प्राप्त कर चुकी हैं और आज भी पञ्जाब तथा यू० पी० की प्रायः सभी युनिवर्सिटियों में यहाँ की लड़कियाँ पढ़ रही हैं। स्कूल की प्रिन्सिपल मिस गमाइनर हाल ही में छुट्टी लेकर ऑस्ट्रेलिया गई हैं और उनके स्थान पर इस स्कूल की ही पढ़ी हुई एक प्रतिभाशालिनी छात्रा

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई-स्कूल तथा इण्टरमीजियट कॉलेज के यूनियन क्लब की कुछ सदस्याएँ, जोकि प्रिन्सिपल के आस्ट्रेलिया जाते समय विदा करने के लिए एकत्रित हुई थीं।

कॉलेज के पद तक पहुँच गया। सरकार ने इसकी सेवाओं से प्रसन्न होकर सन् १९२१ ई० में इसे पुनः सहायता देना आरम्भ कर दिया था और भारत-सरकार ने हाल ही में कुछ विशेष शर्तों पर इसे अपना "अलीपुर हाउस" नामक विशाल भवन देने का भी वचन दिया है। संस्था के प्रबन्धकगण इस मकान में कॉलेज-विभाग का प्रबन्ध करना चाहते हैं।

स्कूल में विज्ञान तथा गृहशिल्प की शिक्षा का भी प्रबन्ध है। लड़कियों को घरेलू आवश्यकता की सभी

कुमारी राजदुलारी शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स) बड़े मनोयोग से प्रिन्सिपल का कार्य सञ्चालन कर रही हैं। इस स्कूल की स्थापना के एक वर्ष बाद ही मिस गमाइनर ऑस्ट्रेलिया से भारतवर्ष आई थीं और उसी समय उन्होंने स्कूल के प्रिन्सिपल का कार्य-भार स्वीकार किया था। उस समय से लेकर अब तक बराबर मिस गमाइनर जिस उत्साह और लगन से इस स्कूल की सेवा करती आ रही हैं, उसके लिए वे भूरि-भूरि प्रशंसा के पात्र हैं।

भारत की राजधानी दिल्ली जैसी विशाल नगरी में स्त्रियों के लिए एक पृथक् डिग्री कॉलेज की बहुत ही आवश्यकता है। स्वर्गीय लाला लाजपतराय जी ने इस आवश्यकता की ओर सरकार का ध्यान भी आकर्षित किया था। इन्द्रप्रस्थ स्कूल के सुयोग्य सञ्चालकों ने भी इस आवश्यकता का अनुभव किया है और वे अपने कॉलेज-विभाग में बी० ए० तक की पढ़ाई जारी कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। विगत २५ वर्षों में इन्होंने जिस परिश्रम और उत्साह से स्कूल का काम चलाया है, उसे देखते हुए हम विश्वासपूर्वक कह सकते हैं कि उनकी शुभाकांक्षा अवश्य ही सफलीभूत होगी। स्कूल की प्रशंसनीय सफलता का अधिकांश श्रेय इसकी सुयोग्य प्रिन्सिपल मिस गमाइनर तथा उत्साही प्रबन्धकों, विशेष कर प्रबन्ध-समिति के अध्यक्ष रायबहादुर लाला सुल्तान-सिंह जी को है।

एक ऐसी उपयोगी संस्था के सामने आर्थिक कठिनाइयों का उपस्थित होना वास्तव में देश की दुरवस्था और स्त्री-शिक्षा के प्रति जनता की उदासीनता का ही परिचायक है। सहृदय पाठकों को यह जान कर कष्ट हुए बिना नहीं रह सकता कि इस संस्था की उपयोगिता ज्यों-ज्यों बढ़ती जा रही है, त्यों-त्यों इसकी आर्थिक कठिनाइयाँ भी बृहत् रूप धारण करती जा रही हैं। सूद की दर के गिर जाने और व्यापार की मन्दी के कारण धनाढ्य महानुभावों से प्राप्त होने वाले चन्दे और सहायता में कमी हो जाने के कारण एक तो इस संस्था की मासिक आय यों ही कम हो गई थी, उस पर स्थानीय म्युनिसिपल-कमिटी से मिलने वाली सहायता के बन्द हो जाने के कारण उसमें ३००) मासिक की और भी कमी हो गई है। एक ओर संस्था की आय इस प्रकार घटती जा रही है, दूसरी ओर संस्था के कार्यों का विस्तार होने के कारण उसके व्यय में वृद्धि हो रही है। अभी "अलीपुर हाउस" को प्राप्त करने तथा उसका सालाना लगान चुकाने के लिए, सरकार ने जो ६०,०००) की सहायता दी है, उसके अतिरिक्त १,२५,०००) की और आवश्यकता है। यह धन एकत्र करने के लिए एक योजना प्रस्तुत की गई है, जिसका विवरण इस प्रकार है। १६ महानुभावों से, प्रत्येक से ५,०००) के हिसाब से ८०,०००) और ६० महानुभावों से, प्रत्येक से ५००) के हिसाब से ४५,०००); कुल १,२५,०००) चन्दे से एकत्र किया जाय। सौभाग्यवश पाँच-पाँच हज़ार देने वाले १६ महानुभावों में ११ और पाँच-पाँच सौ रुपयों का दान करने वाले ६० सज्जनों में ६१ की सहायता अथवा बचन प्राप्त हो गए हैं। धनवान महानुभावों का यह पवित्र

(बैठी हुई) मिस एल० गमाइनर और (खड़ी हुई) मिस राजदुलारी शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स) इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स-हाईस्कूल की स्थायी तथा स्थानापन्न प्रिन्सिपल।

कर्त्तव्य है कि वे शेष आवश्यकता की पूर्ति शीघ्र करके इस परमोपयोगी संस्था को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करें।

स्कूल ने हाल ही में अपनी रजत-जयन्ती का उत्सव

बड़े समारोह और सफलता के साथ मनाया है। हम आशा करते हैं कि इस संस्था को इसी प्रकार अनेक रजत और स्वर्ण जयन्तियाँ मनाते हुए दीर्घ काल तक समाज की सेवा करते रहने का सौभाग्य प्राप्त होगा।

* * *

हिन्दुओं की पाखण्ड-पूजा

पिछले चार महीनों से साईंखेड़ा के 'दादा जी' के सम्बन्ध में उज्जैन से जो समाचार आ रहे हैं, वे बड़े ही चिन्ताजनक हैं। 'दादा जी' के एक परम भक्त के कथनानुसार, जिनकी चिट्ठी सहयोगी 'कर्मवीर' के विगत १० अगस्त के अङ्क में छपी है, "साईंखेड़ा में कुछ गुण्डों का समूह जुड़ गया," जिसने 'दादा जी' पर झूठ-मूठ गर्हित और कलुषित दोषों का आरोप करके "अदालत तक उनकी अपकीर्ति की गाथा गाई" और "वे (दादा जी) ब्रिटिश राज्य से इन्हीं अपवादों के आधार पर निकाले गए। इन्दौर में भी उन्हें रहने न दिया गया। अब उज्जैन से भी भगाने की कोशिश की जा रही है।" दादा जी की करतूतों का भण्डाफोड़ करने वालों को "गुण्डों का समूह" कहना कहाँ तक उचित है, इसका निर्णय पाठकगण निम्न-लिखित समाचार को पढ़ कर आसानी से कर सकते हैं। यहाँ इतना स्मरण रखना ही काफ़ी है कि 'दादा जी' अपने चरित्र की उज्ज्वलता के कारण ब्रिटिश भारत से निकाले जा चुके हैं और इन्दौर के दूषित वातावरण में भी उनकी दुराचारी सेना की गुज़र न हो सकी। उज्जैन में 'दादा जी' के पदार्पण का वर्णन करते हुए सहयोगी 'प्रताप' का उज्जैन-स्थित सम्वाददाता 'प्रताप' के विगत ६ जून के अङ्क में इस प्रकार लिखता है :—

२८ अप्रैल को साईंखेड़ा के बड़े दादा, छोटे दादा व दण्डी स्वामी अपने चेले-चेलियों सहित बड़ी शानशौकत के साथ उज्जैन में पधारे व स्थानीय हनुमन्त बाग़ में डेरा जमाया। बाबा जी के आगमन, सिद्धि व समाधि लेने की चर्चा द्वारा प्रभावित हो सहस्रों की संख्या में स्त्री-पुरुष उनके दर्शनार्थ पहुँचे। बड़े दादा गाड़ी में नग्नावस्था में पड़े हुए थे। सर्वाङ्ग पर उस्तरा चल रहा था। बाबा जी अश्लील शब्दों में स्त्री-पुरुषों के गुप्ताङ्गों का मन्त्रोच्चार कर रहे थे। बाबा जी मल-मूत्र भी वहीं पड़े हुए विसर्जन करते थे, जोकि भक्त व भक्तिनों के चढ़ाये गए हारों, फूलों के द्वारा आच्छादित रहता है, जिसकी बदबू चढ़ाए गए फूलों की महक व इत्र द्वारा दबी रहती है। आपको भोग लगाया जाता है। तत्पश्चात् उच्छिष्ट दादा जी की टट्टी की भट्टी (!!!) में पकाए गए 'भिष्टा विलास' हलवे के साथ एकत्रित कर किसी भक्त के मुँह में जबरन् ठूँसा जाता है, तो किसी पर फेंका जाता है। मल-मूत्र-मिश्रित उन हारों व फूलों की वर्षा की जाती है। भक्तगण बड़ी श्रद्धापूर्वक वह उच्छिष्ट ग्रहण कर अपनी मलिनता नष्ट करते हैं और शीश पर धारण कर अपना जन्म सार्थक करते हैं। दादा नं० २ मुकुट धारण किए राजसी वेष में विराजमान थे। सुना, आप कलियुगी कृष्ण हैं। आप नवयुवतियों द्वारा घिरे हुए उनकी ओर मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। सर्वाङ्ग नग्न शरीर पर उस्तरा चल रहा था। कुल-बधुएँ लज्जा परित्याग कर आपके श्री-विहीन मुखमण्डल की ओर कामनापूर्ति की अभिलाषा से इकटक निहार रही थीं। युवतियों में से कुछ तो आपको पङ्खा झलतीं और कुछ स्त्री आपके गुप्ताङ्ग की तथा अन्य दूसरे-दूसरे अङ्गों की इत्र द्वारा मालिश करती थीं। किसी स्त्री को वे फूलों की मार मारते, तो किसी से प्रेमालाप और किसी से हास-विनोद आदि द्वारा युवतियों का मनहरण किया करते हैं। बेरोक-टोक यह व्यापार चला करता है। पास ही दण्डी स्वामी सुन्दर क़ालीन पर लेटे हुए थे। स्त्रियाँ पैर दाब रही थीं। ये मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। किसी को जूठन खिलाते, तो किसी का पल्ला खींचते। मोटर पर सवार हो कभी-कभी दोनों दादा रात्रि में अपनी भक्तिनियों के यहाँ फेरी भी लगा आया करते हैं। आपके पास आपके भक्तों द्वारा आपकी

मुर्दा जिला देने के सामर्थ्य की गाथा का श्रवण कर एक मुर्दा आपके पास लाया गया, परन्तु आप उसे जिला न सके। समाधि लेने के विषय में पूछने पर कहा कि दादा को समाधि लेने की क्या आवश्यकता है? वे तो दिन में कई बार सदेह स्वर्ग हो आते हैं! दादा जी के चमत्कार यहाँ तो कुछ भी नहीं देखे गए, किन्तु इस उक्ति के अनुसार कि 'जहँ-जहँ पाँव पड़े सन्तन के, वहीं-वहीं बस बण्टाढार', एक उच्च पदाधिकारी महाशय, जिनका गृह स्वयं दण्डी महाराज, जोकि कमण्डलु की नोक से सृष्टि भस्म करने का दावा करते हैं, पवित्र कर आए थे, उसके तीसरे ही दिन एकाएक वे इस असार संसार से सदा के लिए विदा हो गए! एक नवजात शिशु जोकि भोले भगवान् के क़दमों पर डाला गया था, वह भी जीवन्मुक्त हो गया! जब एक महात्मा से पूछा गया कि भगवन्! अपने भक्तों पर इस प्रकार मल-मूत्र छींटने में क्या रहस्य है, तो कहा कि सांसारिक स्त्री-पुरुष शूकरवत् हैं; अतएव दादा जी उन्हें अपनी विष्ठा खिला उनका योग्य ही सत्कार करते हैं व इसी में उनका कल्याण है। ता० ३० अप्रैल की रात को एक युवक साधु एक बुड्ढे ग्रामीण के साथ कुकर्म करते पकड़ा गया व पुलिस सुपुर्द हुआ तो उसने कहा—मैं तो क्या, सभी मेरे ही सरीखे हैं। हमें माल खाने को मिलता है तो हमारी यह प्रवृत्ति होना स्वाभाविक है। उसका कहना है कि स्वयं छोटे दादा ने एक बारह वर्षीया कन्या के साथ बलात्कार किया था। और भी कई अन्य साधुओं का गुण्डापन पकड़ा गया है। यह है हमारे हिन्दू-समाज के धर्म-ध्वजाधारियों की दशा, जो ऐसे-ऐसे घृणित और अत्यन्त पतित कार्य करते हैं और हिन्दू-समाज इन्हें देख कर भी कुछ परवा नहीं करता, बल्कि अपनी माँ-बहिनों को बेइज़्ज़त करवाता है! क्या हिन्दू-समाज अपनी धर्मान्धता पर कुछ विचार करेगा?

आज चार महीनों से उज्जैन में यह पाप-लीला हो रही है, पर हिन्दू-जनता के कानों पर जूँ तक नहीं रेंगी। दिन-दहाड़े—सूर्य भगवान् के पवित्र प्रकाश में—स्त्रियों का अभिन्न धर्म, उनका सतीत्व लूटा जा रहा है, उन्हें दुश्चरित्रता की शिक्षा दी जा रही है—समाज में व्यभिचार का बीज बोया जा रहा है, पर उज्जैन की जनता अपनी छाती पर होने वाले इन सारे नैतिक अत्याचारों को निर्विरोध भाव से सह रही है। सहयोगी 'कर्मवीर' के सम्वाददाता के कथनानुसार "एक रोज़ दादा नं० २ ने हज़ारों स्त्रियों के बीच बैठ कर नग्न शरीर की हजामत बनवाई और एक बनियानी से नग्नाङ्ग में इत्र की मालिश भी करवाई!! दादा नं० २ स्नान करते हैं, तब नग्न ही। इस नग्न मूर्ति का अङ्ग स्त्रियाँ ही पोंछती हैं! यहाँ बदमाशों का भी ठट्ट जमा रहता है। औरतों की छेड़-छाड़ होती है।" क्या यही संसार-त्यागी विरक्त महात्माओं का धर्म है? क्या इन्हीं पाखण्डों की पूजा करके उज्जैन की हिन्दू जनता अपने लोक और परलोक के पुरुषार्थों की साधना कर रही है। उज्जैन के समाज के मुखियों और नवयुवकों के लिए यह घोर लज्जा और कलङ्क की बात है कि ये चलते-फिरते प्लेग के कीड़े उज्जैन के आन्तरिक जीवन को नष्ट कर रहे हैं और वे अपने कर्त्तव्य से विमुख होकर अकर्मण्य की भाँति निश्चेष्ट बैठे हैं। नवयुवकों ने अपने कर्त्तव्य-पालन का जो थोड़ा सा प्रयत्न किया है, उससे हम एकान्त अपरिचित नहीं हैं, किन्तु उज्जैन के सार्वजनिक जीवन को इस भयङ्कर व्याधि से मुक्त करने के लिए जिस महान प्रयत्न की आवश्यकता थी, उसकी तुलना में, हम देखते हैं, उनका सारा प्रयत्न नगण्य मात्र है!

उचित तो यह था कि आज से बहुत पहले, सामाजिक रोग के इन ज़हरीले कीटाणुओं को उज्जैन से बलात भगा दिया जाता, पर इस आवश्यक कर्त्तव्य का पालन करना तो दूर रहा, उल्टे एक सज्जन सहयोगी 'कर्मवीर' में एक लम्बी चिट्ठी छपा कर नवयुवक-समुदाय को उसके सराहनीय प्रयत्नों के लिए कोस रहे हैं! 'दादा जी' के दुराचारी चेले-चेलियों के द्वारा सम्पन्न होने वाले कुकर्मों के जो विवरण समाचार-पत्रों में छपते हैं, उनसे उक्त सज्जन बहुत असन्तुष्ट हैं, पर उन विवरणों के खण्डन करने का साहस उनमें नहीं है! वह बड़े

ही ढीठ शब्दों में युवक-समाज से पूछते हैं—"छोटे दादा ख़राब हैं, कृष्ण-लीला करते हैं। बड़े दादा ख़राब हैं, जूठा खिलाते हैं। नग्न रहते हैं। उनके चेले ख़राब हैं। इन बातों को लेकर युवक-समाज क्या करना चाहता है?" इस प्रश्न के भोलेपन पर हँसी और इसकी ढिठाई पर क्रोध आता है। क्या प्रश्न करने वाले सज्जन इतना भी नहीं जानते कि समाज अपनी निष्कपट सेवाओं के बदले साधुओं से कुछ उपकार की आशा रखता है? प्राचीन समाज में साधु-महात्माओं का आदर इसलिए होता था कि वे समाज के आध्यात्मिक कल्याण का साधन करते थे। शासन और व्यवस्था की जिन पेचीदी कठिनाइयों को बड़े-बड़े शासक और सम्राट् भी नहीं हल कर पाते थे, उन कठिनाइयों को संसार-त्यागी ऋषि और महर्षि बात की बात में और इतनी सुन्दरतापूर्वक हल कर देते थे कि उसे देख कर समाज का माथा आपसे आप उनके चरणों में नत हो जाता था। भारत का नवयुवक-समाज आजकल के साधुओं से भी उसी योग्यता, उसी ज्ञानगरिमा, उसी तपस्या और उसी महान कर्त्तव्य के पालन की आशा रखता है; किन्तु साईंखेड़ा के पाखण्डी दादाओं के समान छद्मवेशी साधुओं का कामिनी-प्रेम और काञ्चन-लोभ देख कर जब युवक-समाज की इस महान आशा को ठेस लगती है, तब वह क्षुब्ध हो जाता है और इसीलिए वह इन महात्माओं के बहिष्कार की बातें करने लगता है। इसके अतिरिक्त एक विदेशी शासन के बोझ के नीचे दबा हुआ नवयुवक भारत कर ही क्या सकता है?

देश के नवयुवकों से हमें केवल इतना ही कहना है कि उनकी ज्वालामयी दृष्टि के सामने समाज की छाती पर जब तक दुराचार का ऐसा नग्न नृत्य हो रहा है, तब तक एक क्षण के लिए भी उन्हें विश्राम नहीं लेना चाहिए। ऐसे धूर्त—तपश्चर्या के पवित्र गेरुए परिधान को कलङ्कित करने वाले—पाखण्डियों के मस्तक पर पाद-प्रहार करना उनका नैतिक कर्त्तव्य होना चाहिए। वास्तव में यह बड़ी ही चिन्ता और दुर्भाग्य की बात है कि जिन वाणप्रस्थियों और सन्यासियों को समाज का सच्चा नेता और सर्वश्रेष्ठ शुभचिन्तक होना चाहिए, वही समाज की उन्नति के मार्ग में सबसे बड़े बाधक और समाज के लिए लज्जा तथा कलङ्क की वस्तु हो रहे हैं! यदि सच पूछा जाय तो भावी भारत की मङ्गल कामना के निमित्त देश के प्रभावशाली नेताओं के सामने इससे अधिक महत्वपूर्ण और आवश्यक कार्य हो ही नहीं सकता कि वे अपनी सारी शक्ति देश को रसातल की ओर ढकेलने वाले इन विषैले कीटाणुओं के सुधार अथवा संहार में लगाकर अपने औचित्य का पालन करें, अन्यथा इस अभागे देश का पुनः पनपना एक बार ही असम्भव है!

* * *

स्त्रियों का व्यापार

पाप सदा ही घातक होता है, पर जब वह धर्म का रूप धारण करके आता है, उस समय उसकी घातकता अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाती है। उत्तर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों में स्त्रियों का व्यापार बहुत दिनों से जारी था, पर वह लुके-छिपे तथा सरकार द्वारा दण्डित होने का भय रखते हुए किया जाता था। इधर कुछ वर्षों से, जब से स्त्रियों के उद्धार की ओर लोगों का ध्यान विशेष रूप से आकर्षित हुआ है, तब से यह व्यापार स्त्रियों की रक्षा के नाम पर किया जाने लगा है। इसमें सरकार द्वारा दण्डित होने का भय बहुत ही कम हो जाता है। समाज में जो यश प्राप्त होता है, वह नफ़े में! थोड़े ही दिनों पहले दिल्ली में यह अफ़वाह बड़े ज़ोरों से फैली हुई थी कि विधवाश्रमों में स्त्रियों का व्यापार किया जा रहा है। सुनने में आया था कि जो व्यक्ति सबसे अधिक क़ीमत देता है, उसके हाथ स्त्रियाँ बेंच दी जाती हैं और कभी-कभी तो एक ही स्त्री समय-समय पर कई आदमियों के हाथ बेंची जाती है। सामाजिक कार्यकर्ताओं ने इन अपराधों का पता लगाने की बहुत चेष्टा की, पर बहुत खोज-ढूँढ़ करने पर भी कई महीनों तक कुछ पता न चला। गत ७ जुलाई की रात को बहुत अधिक समय बीत जाने पर दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ विधवाश्रम से किसी के बड़े ज़ोरों से चिल्लाने की आवाज़ सुनाई पड़ी। पड़ोसियों को कुछ शङ्का हुई और उन्होंने पुलिस को सूचना दी। पुलिस उसी समय घटनास्थल पर पहुँच गई, और विधवाश्रम की तलाशी लेने पर उसे दो हिन्दू-लड़कियाँ मिलीं, जिन्होंने अपने बयान में कहा कि हम लोग दिल्ली रेलवे-स्टेशन से धोखा देकर

इन्द्रप्रस्थ हिन्दू गर्ल्स हाई-स्कूल तथा कॉलेज का गर्ल्स-गाइड्स

बीच में इस संस्था की आचार्य्या मिस गमाइनर बैठी हैं, जो गर्ल्स-गाइड्स की कप्तान हैं और उनकी बग़ल में कुमारी शर्म्मा (स्थानापन्न आचार्य्या) जो लैफ़्टेनेन्ट हैं !

बाल रोगविज्ञानम्

इस महत्वपूर्ण पुस्तक के लेखक पाठकों के सुपरिचित, 'विष-विज्ञान' 'उपयोगी चिकित्सा' 'स्त्री-रोग-विज्ञानम्' आदि-आदि अनेक पुस्तकों के रचयिता, स्वर्ण-पदक प्राप्त प्रोफ़ेसर श्री० धर्मानन्द जी शास्त्री, आयुर्वेदाचार्य हैं, अतएव पुस्तक की उपयोगिता का अनुमान सहज ही में लगाया जा सकता है। आज भारतीय स्त्रियों में शिशु-पालन सम्बन्धी समुचित ज्ञान न होने के कारण सैकड़ों, हज़ारों और लाखों नहीं, किन्तु करोड़ों बच्चे प्रति वर्ष अकाल-मृत्यु के कलेवर हो रहे हैं। धातृ-शिक्षा का पाठ न स्त्रियों को घर में पढ़ाया जाता है और न आजकल के ग़ुलाम उत्पन्न करने वाले स्कूल और कॉलेजों में। इसी अभाव को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत पुस्तक लिखी और प्रकाशित की गई है। इसमें बालक-बालिका सम्बन्धी प्रत्येक रोग, उसका उपचार तथा ऐसी सहज घरेलू चिकित्सा तथा घरेलू दवाइयाँ बतलाई गई हैं, जिन्हें एक बार पढ़ लेने से प्रत्येक माता को उसके समस्त कर्तव्यों का ज्ञान सहज ही में हो सकता है और बिना डॉक्टर-वैद्यों की जेबें भरे वे शिशु-सम्बन्धी प्रत्येक रोग को समझ कर उसका उपचार कर सकती हैं। प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में इस पुस्तक की एक प्रति अवश्य होनी चाहिए। भावी माताओं के लिए तो प्रस्तुत पुस्तक आकाश-कुसुम ही समझना चाहिए। सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु० ; स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र !!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय
इलाहाबाद

और ज़बर्दस्ती विधवाश्रम में लाई गई हैं। विधवाश्रम की अन्य स्त्रियों ने पुलिस को जो बयान दिए, उनका आशय भी इसी प्रकार का था। उनकी करुण-कहानी का सारांश यह था कि वे ज़बर्दस्ती—अपनी इच्छा के विरुद्ध और स्वार्थवश आश्रम में रक्खी जा रही हैं !

यह अपराध इतना भयङ्कर और गर्हित है कि इसका दमन करने के लिए कठोर से कठोर उपायों का अवलम्बन करना भी अनुचित नहीं है। जिन शिक्षित और समझदार मनुष्यों को स्त्रियों के सम्मान और धर्म का सच्चा रक्षक होना चाहिए था, वही जनता और सरकार दोनों की आँखों में धूल झोंक कर असहाय स्त्रियों के धर्म और जीवन पर कुठाराघात कर रहे हैं। संयुक्त-प्रान्त का पश्चिमी भाग, पञ्जाब, सिन्ध, काश्मीर आदि प्रदेशों में स्त्रियों का व्यापार बड़े ज़ोरों से चल रहा है। व्यापार करने वाले गुण्डे भोली-भाली और दरिद्रता तथा पारिवारिक अत्याचारों से असन्तुष्ट स्त्रियों को नाना प्रकार के प्रलोभन देकर फुसलाते हैं और किसी दूर स्थान में भगा ले जाकर अच्छे दामों में उन्हें बेच देते हैं। इस प्रकार के भयङ्कर अपराधों की संख्या दिनोंदिन बड़े ज़ोरों से बढ़ती जा रही है; पर सरकार मेरठ-केस और सॉन्डर्स-हत्या-काण्ड के मुक़दमों में इतनी अधिक व्यस्त है कि उसे दीन स्त्रियों और असहाय अबलाओं की रक्षा करने का अवकाश नहीं है ! अभी हाल ही में इलाहाबाद-हाईकोर्ट के जस्टिस सेन महोदय के सामने इस प्रकार का एक मुक़द्मा पेश था। न्यायाधीश महोदय ने अभियुक्तों के, जिन्हें एक लड़की को दूषित अभिप्राय से भगा ले जाने के मुक़द्मे में सज़ा हुई थी, अपील को ख़ारिज करते हुए कहा कि संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों में इस प्रकार के अपराध बहुत अधिक संख्या में हो रहे हैं। फुसला कर भगाई हुई स्त्रियाँ प्रायः पञ्जाब प्रान्त में भेज दी जाया करती हैं, जहाँ की कई श्रेणियों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या बहुत ही कम है।

न्यायाधीश महोदय ने अपने विचारपूर्ण फ़ैसले में एक स्थान पर लिखा है :—

"Cases under Section 366 (Kidnapping) and cognate Sections of the Indian Penal Code are coming up before the courts of law in very large numbers. It may be fairly presumed that there is a large number of cases which do not attract the notice of the authorities and crime is allowed to walk free-footed without any let or hindrance. Where, therefore, the offenders are tracked they should be dealt with severely. The sentences passed in the present case do not err on the side of severity."

अर्थात्—"भारतीय दण्ड-विधान की धारा ३६६ (आदमियों को भगाना) तथा इसी श्रेणी के मुक़द्मे बहुत अधिक संख्या में न्यायालयों में पेश हो रहे हैं। बिना किसी जाँच-पड़ताल के भी इस बात को आसानी से मान लिया जा सकता है। बहुत से मामलों की ओर अधिकारियों की दृष्टि आकर्षित नहीं होती है और बिना किसी प्रकार की विघ्न-बाधा के अपराध स्वच्छन्द रीति से होने दिए जाते हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी ऐसे अपराधियों का पता लगे, उन्हें कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसे मामलों में दी जाने वाली सज़ाओं के अनुचित मात्रा में कठोर होने का कोई भय नहीं रहता!" ये शब्द एक निष्पक्ष न्यायाधीश के हैं। एक ऐसे समय में, जबकि सरकार अपने कर्त्तव्य की ओर से बिल्कुल निश्चिन्त है और स्त्रियों के भगा कर बेचे जाने का व्यापार दिनोंदिन बढ़ता चला जा रहा है, समाज के हितचिन्तकों का यह परम कर्त्तव्य है कि वे पीड़ित स्त्रियों की रक्षा का प्रबन्ध करें। कुछ स्वार्थी गुण्डों ने स्त्रियों की रक्षा का ढोंग रच कर, उनके साथ जो कलुषित व्यवहार किया है, उससे सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का उत्तरदायित्व पहले की अपेक्षा बहुत बढ़ गया है। जनता को ऐसे बनावटी समाज-सुधारकों से सावधान रहना चाहिए और उनके हथकण्डों से असहाय स्त्रियों की रक्षा करनी चाहिए।

* * *

७०×१३

काशी के एक सुप्रसिद्ध वैद्यराज पण्डित त्र्यम्बक शास्त्री ने लगभग ७० वर्ष की अवस्था में हाल ही में १३ वर्ष की एक बालिका से विवाह किया है। इससे पहले शास्त्री जी के पाँच-छः विवाह हो चुके

हैं और उनके १७-१८ साल का एक लड़का भी है। सुनने में आया है कि शास्त्री जी जब घर से बाहर जाते हैं, तब अपने पुत्र के डर से नव-विवाहिता पत्नी को ताले में बन्द कर जाते हैं! यह विवाह कितना आपत्तिजनक और भयावह है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। जिस जाति के विद्वान पण्डित मरणासन्न वृद्धावस्था में भी अपनी पोती के तुल्य अबोध बालिकाओं का पाणिग्रहण करके उनका जीवन नष्ट करने में कुण्ठित नहीं होते, उस जाति में यदि विधवाओं की भयावह संख्या में वृद्धि हो, उस जाति का जीवन यदि विधवाओं के रोमाञ्चकारी हाहाकार से काँप उठे, उस जाति में यदि गुप्त व्यभिचार और भ्रूण-हत्याओं की भरमार हो, उस जाति की देवियाँ यदि अन्य जाति के गुण्डों और बदमाशों द्वारा भगाई जावें, तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं! इन हृदय-द्रावक घटनाओं का घटित न होना ही सबसे बड़े आश्चर्य की बात होगी! पण्डितों और विद्वानों के चरित्र देख कर जनता शिक्षा ग्रहण करती है, पर जिस जाति के शास्त्रज्ञ पण्डितों का आन्तरिक चरित्र इतना कलुषित हो, उस जाति के साधारण मनुष्यों की क्या दशा होगी, इसकी कल्पना-मात्र से एक बार हृदय काँप उठता है!

भारतवर्ष की गुलामी का यह कारण नहीं है कि यहाँ के आदमी विद्वान नहीं हैं, यहाँ की सभ्यता किसी देश की सभ्यता से हीन है, यहाँ के मनुष्य रण-कुशल नहीं हैं या यहाँ के निवासियों में राजनीतिक योग्यता का अभाव है। भारतवर्ष की गुलामी का वास्तविक कारण भारतवासियों का नैतिक पतन है। भारतवर्ष के पण्डितों का ज्ञान अगाध है, उनकी विद्या की प्रशंसा विदेश के दिग्गज विद्वानों तक ने मुक्तकण्ठ से की है। फिर क्या कारण है कि समाज पर से उनका प्रभुत्व दिनोंदिन नष्ट होता जा रहा है? इसका कारण इतना स्पष्ट है कि एक अन्धा भी उसे अनायास देख सकता है। भारतीय पण्डितों का शास्त्र-ज्ञान जितना ही गम्भीर है, उनका चरित्र उतना ही पतित है! वे थोड़े से लाभ के लिए, अपने व्यक्तिगत तुच्छ स्वार्थ के लिए और अपने कलुषित पापों को ढकने के लिए शास्त्र का मनमाना अर्थ कर सकते हैं। वे इतने उत्तरदायित्व-शून्य और निर्लज्ज हो गए हैं कि जिस शास्त्र के आधार पर वे विधवा-विवाह का विरोध कर सकते हैं, उसी शास्त्र के आधार पर उसका समर्थन भी कर सकते हैं! इन पण्डित-पुरोहितों ने शास्त्रों की ऐसी दुर्दशा कर रक्खी है कि आज समाज के लिए उनकी व्यवस्था पर विश्वास करना भी कठिन हो गया है। कभी-कभी तो इनका हठ और दुराग्रह विवेक की सीमा को भी अतिक्रमण करके समाज की दृष्टि में इन्हें घृणा और उपेक्षा का पात्र बना देता है! काशी का एक सनातनी (?) हिन्दी साप्ताहिक "ब्राह्मण महासम्मेलन" पत्र शास्त्रों के नाम पर उक्त विवाह का समर्थन करके ऐसे ही हठ और दुराग्रह का परिचय दे रहा है।

यह पत्र कहता है कि शास्त्रों में च्यवन ऋषि तथा शन्तनु के अत्यन्त वृद्धावस्था में विवाह करने का प्रमाण पाया जाता है। फिर पण्डित त्र्यम्बक शास्त्री ने ७० वर्ष की अवस्था में विवाह कर लिया तो कौन सा अनर्थ हो गया? एक लम्बे लेख के अन्त में पुराणों के प्रमाण उद्धृत करते हुए यह पत्र लिखता है, "मनुष्य १६ साल तक बालक, तथा ७० वर्ष तक मध्यम और उसके बाद मामूली तौर पर वृद्ध कहा गया है। तब इस प्रमाण के अनुसार ७० वर्ष के बाद ही काम-व्यवहार-विरोधी वृद्धावस्था शुरू होती है। इस प्रमाण के अनुसार सिद्ध है कि शास्त्रों में वृद्ध-विवाह-निषेध जो किया गया है, यहाँ वृद्ध-पद से ७० वर्ष के ऊपर ही का वय लेना अच्छा है, क्योंकि उपर्युक्त कात्यायन के वाक्य से भी अति वृद्ध का ही विवाह-निषेध झलकता है।" "ब्राह्मण महासम्मेलन" जैसे हठी और निर्लज्ज पत्र को यह कौन समझावे कि विवाह की दृष्टि से ६८ और ७० वर्ष की अवस्थाओं में कोई विशेष भेद नहीं होता? फिर पण्डित त्र्यम्बक शास्त्री च्यवन ऋषि और शन्तनु के समान शक्तिशाली होने का दावा भी तो नहीं कर सकते! पुराणों में तो ब्रह्मा के अपनी बेटी सरस्वती पर आसक्त होने की कथा भी पाई जाती है। तो क्या "ब्राह्मण महासम्मेलन" अपनी पुत्री से विवाह कर लेने को भी शास्त्र-सम्मत बतलाएगा? प्रसङ्गवश काशी के इस विवेकहीन पत्र को हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि शन्तनु और च्यवन ऋषि अपने सगे पुत्र से अपनी स्त्री की सतीत्व-रक्षा की चिन्ता भी नहीं करते थे! उस काल में ७० वर्ष का पुरुष आजकल के ३०-३५ वर्ष के पुरुषों के समान अधेड़

समझा जाता था, किन्तु उसे अपने पौरुष में सन्देह नहीं होता था।

काशी के एक प्रसिद्ध पण्डित के द्वारा इस निन्दनीय वृद्ध-विवाह के किए जाने के कारण इसका गुरुत्व बहुत अधिक बढ़ गया है। दुर्भाग्यवश भारतवर्ष की अशिक्षित जनता अभी तक भी इन पतित पण्डितों के चङ्गुल में फँसी हुई है। समाचार-पत्रों और सार्वजनिक सभाओं के द्वारा यदि इस विवाह की तीव्र निन्दा नहीं की जायगी, तो समाज के नैतिक जीवन पर इस विवाह का बहुत ही घातक प्रभाव पड़ने की आशङ्का है। हमें हर्ष है कि काशी-निवासियों ने एक सार्वजनिक सभा करके सर्व-सम्मति से इस घृणित विवाह की निन्दा का प्रस्ताव पास किया है। विगत ११ अगस्त को काशी के टाउन हॉल में पं० कृष्णचन्द्र जी शर्मा के सभापतित्व में एक वृहत सभा हुई थी, जिसमें इस निन्दनीय विवाह के विरोध में कई प्रकाण्ड विद्वानों के प्रभावशाली व्याख्यान हुए और अन्त में सर्व-सम्मति से इस आशय का एक प्रस्ताव पास हुआ कि "काशी-निवासी हिन्दुओं की यह सभा काशी के एक प्रसिद्ध वैद्य ने सन्तान के रहते हुए ७२ वर्ष की उम्र में, सनातन-धर्म के सिद्धान्तों के विरुद्ध १२ वर्ष की बालिका से जो विवाह किया है, उसका घोर विरोध करती है और सभी हिन्दू-भाइयों से अनुरोध करती है कि वे भविष्य में इस प्रकार के विवाह रोकने के लिए पहले से ही उद्यत रहें।" देश भर में सार्वजनिक सभाएँ करके इस घृणित विवाह की निन्दा तथा जनता में वृद्ध-विवाह के विरुद्ध प्रचार किया जाना चाहिए।

* * *

कोटा-राज्य का वैवाहिक क़ानून

कोटा-राज्य ने प्रजा के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर विगत १ जुलाई सन् १९२७ ई० से अपने राज्य में एक क़ानून-शादी या वैवाहिक व्यवस्था प्रचलित कर दी है। जिस आदेश-पत्र के द्वारा इस व्यवस्था की घोषणा की गई थी, उस पत्र में कहा गया था कि "लड़के और लड़कियों की सगाई और विवाह के सम्बन्ध में ऐसे चलन और कुप्रथाएँ प्रचलित हो गई हैं, जिनसे न केवल समाज के बल और पुरुषार्थ की ही हानि हो रही है, वरन सदाचार के भी नीचे गिरने की पूरी आशङ्का है। ऐसी दशा में राज्य अपना कर्त्तव्य समझता है कि एक ऐसा नियम बनाया जावे जिससे बाल या वृद्ध-विवाहों की कुप्रथाओं से उत्पन्न होने वाली बुराइयों की रोक हो और उनसे समाज का जो अनिष्ट हो रहा है, वह बन्द हो।" विवाह-सम्बन्धी जो क़ानून पास किया गया है, उसकी कुछ धाराएँ इस प्रकार हैं:—

(१) १२ वर्ष से कम उम्र की लड़की और १६ वर्ष से कम उम्र के लड़के का विवाह न किया जावे।

(२) १८ वर्ष से कम अवस्था की लड़की के लिए उसकी दूनी उम्र से ज़्यादा का वर तजवीज़ न किया जावे।

(३) १८ वर्ष या इससे अधिक अवस्था की लड़की के माता-पिता या सम्बन्धी को अधिकार होगा कि वह अपनी इच्छा से जैसे वर से चाहें लड़की का विवाह करें, पर किसी दशा में भी ४५ वर्ष से अधिक अवस्था का पुरुष किसी कुँवारी लड़की से विवाह न कर सकेगा।

(४) इन नियमों की अवहेलना करने तथा अव-हेलना करने में सहायता देने के सम्बन्ध के मुक़द्दमों की सुनवाई प्रथम श्रेणी के मैजिस्ट्रेट के इजलास में होगी और मैजिस्ट्रेट को अधिकार होगा कि वह अपराधी को १०००) रुपए तक जुरमाना और ६ महीने तक सख़्त या सहज क़ैद की सज़ा दे सके और विवाह को भी रोक सके।

(५) यदि इस राज्य का कोई व्यक्ति इन नियमों से बचने के लिए राज्य से बाहर जाकर इन नियमों के विरुद्ध विवाह करेगा, तो वह इस राज्य में पुनः लौट आने के बाद इन नियमों के अनुसार दण्डनीय होगा।

एक धारा के अनुसार कन्या-पक्ष के लिए मामूली रस्मों के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार का धन वर-पक्ष से ग्रहण करना जुर्म क़रार दिया गया है।

इस नियम में बहुत सी त्रुटियों के होते हुए भी हम निस्सङ्कोच भाव से कह सकते हैं कि अपने राज्य में इस नियम का प्रचार करके कोटाधिपति ने अन्य देशी नरेशों के सामने वास्तव में प्रजा-प्रेम और राजोचित दूरदर्शिता का बहुत ही उज्ज्वल उदाहरण उपस्थित किया है। समाज में आजकल इस प्रकार के नियमों और व्यव-स्थाओं के प्रचार तथा पालन करने की कितनी बड़ी आव-

श्यकता है, इसका एक उत्कृष्ट प्रमाण यह है कि ब्रिटिश-भारत की बड़ी व्यवस्थापिका सभा जैसी सामाजिक बातों की ओर से सर्वथा उदासीन रहने वाली संस्था भी आज कल सहवास-वय-बिल नामक एक ऐसे ही नियम पर विचार कर रही है। इस व्यवस्था को प्रचलित करने के लिए कोटा-नरेश को जितनी बधाई दी जाय, सब थोड़ी है। कोटा की प्रजा का यह परम कर्तव्य है कि वह अपने प्रति अपने उन्नतिशील नरेश की शुभेच्छाओं का हृदय से स्वागत करे और विवाह-सम्बन्धी इस नए क़ानून का पूर्ण रूपेण पालन करके यह दिखा दे कि वह वास्तव में एक उन्नतिशील नरेश का प्रेम और वात्सल्य प्राप्त करने का पात्र है। किन्तु हमें हार्दिक क्लेश और मनस्ताप के साथ कहना पड़ता है कि कोटा की प्रजा अपने इस कर्तव्य का पालन उचित रीति से नहीं कर रही है। हमें निश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि कोटा राज्य के कई व्यक्तियों ने इस क़ानून के प्रभाव से बचने के लिए बहुत ही घृणित और निन्दनीय उपायों का अवलम्बन किया है। हाल ही में इस नए क़ानून सम्बन्धी एक मुक़दमे में निम्नलिखित चिट्ठी पकड़ी गई है, जिससे कोटा की प्रजा की निन्दनीय मनोवृत्ति का पता लगता है। हम चिट्ठी की नक़ल अविकल रूप से नीचे दे रहे हैं :—

सिधे श्री सरब ओपमा- बीराजमान मामाजी सा० श्री १०८ महादेवजी चरँजीव छगनलाल जी ....जोग लिखी कोटा का ओडपुरा से आप का तावेदार चतुरभुज केन जै श्री कृष्ण बँचज्यो.........अपरँच करीबन महीना १ होगया लिफाफा भेजा उसमें सब हालत लिखा छा...... यह लिफाफा आपके पास पहुँचा या नहीं। अच्छा बुरा हाल लिखना चाइजे क्यूँके उसमें मालनवासा की उस लड़की के बाबत जवाब लिखा है क्योंकि अठे अपनी बिरादरी में गौरी लाल घड़ीसाज है उनने मेरे को नोटिस दे दिया है कि तुम व्याव मत करो, पुनर्व्याव कर सकते हो। इस लिए रुपया तो खर्च होगा, परन्तु मैरा विचार लड़की का और मैरा मुआयना सरजन डाक्टर साहब से कराकर साठीफिकट लेकर फौजदारी में दरखवास्त देनो पड़ेगी शादी की मञ्जूरी लेनो पड़ेगी। इस लिए आसोज सुदी १ ताँई छगनलाल तू और मालनवासा से हीरालाल जी साहब और वह लड़की को लेकर नयेपुरे आनन्दी लाल जी के यहाँ पर ठहर जाजो। कोई पूछे तो कह देना कि दसेरा देखने आया है। पाँच पचास रुपया खर्च करके साठीफिकट लेना पड़ेगा। नहीं तो साला गौरीलाल दुख देगा... ......इसलिये डाक्टर साहब से लड़की का और मैरा माईना कराकर साठीफिकट लेकर फौजदारी में दरखवास्त देकर मँजूरी लेकर यो काम करोंगा उसमें सत्रु का दाव नहीं लागेगा। लड़की को टेवो नहीं होवें तो संवत ६७ का भादवा को टेवो बनवा लीज्यो और लड़की के ताँई दसेरा तक दस पाँच रुपया खिला दीज्यो सो बहुत होशयार लड़की दीख आवे सो डाक्टर के भी शक नहीं गुजरे। दो पांच सात आठ रुपया का सामान छावनी से लेजाकर छगनलाल तू तकलीफ भगत कर मालनवासा उस लड़की को खिलाने को मेल्याजे। अच्छी ऊँची पूरी तगड़ी ताजा दीख आवे। मैंने तो मैरा जन्म सम्बत १६५० का भादवा का है इससे मैरी उमर ३५ साल की है। अगर पूछा ताछी होवे तो सारँग खेडी में तो सब पुराना आदमी मर गया सो वहाँ से मैरा जनम का पता लागे नहीं। बन्यां से ही मैरा पता लगाना पड़ेगा। यही बात पहले लिखी है सो तू खुद छगनलाल मालनवासा जाकर वांसे सब बाताँ कह आजे और आसोज सुद १ तंई छगनलाल तू और हीरालालजी मालनवासा हाला और लड़की ने कोटे लेता आज्यो। थां का रस्ता खान खुराग वगैरा खर्च पडेगा वह मूँ देदूँगो। इन बात की भूल मत राखज्यो और इस कागज को बांच कर भूल मत जाना। याद रखना किसी के तांई मत बताना।.........और २४-८-२८ को जुवाबी कारट पता बेनीप्रसादजी का लिखकर भेज्या छे सो पूनने पर मुकाम पोलु तवेला

मुशरफ चतुरभुज के नाव लिफाफा में भेजना... और मुलमुल की सावली १ और लठ्ठा की सावली १ और घाघरी तो मैने बनाली हैं......२५-८-२८"

यह चिट्ठी कितने घृणित भावों से भरी हुई है, इसे बताने की आवश्यकता नहीं। इससे मालूम होता है कि कोटा के कामी बुड्ढों ने क़ानून की आँखों में भी धूल झोंक करके अपनी काम-लिप्सा को तृप्त करने का निश्चय कर लिया है। ये नारकी कीड़े छोटी-छोटी बच्चियों को बादाम का हलवा आदि पौष्टिक पदार्थ खिला कर हृष्ट-पुष्ट बनाते हैं और अल्पावस्था में ही उन्हें पूर्ण-यौवना बना उनसे विवाह करके उनका जीवन नष्ट कर देते हैं। ऐसे ही नर-पिशाचों के कुटिल कुचक्र से अबोध बालिकाओं की रक्षा करने के लिए कोटा-राज्य ने विवाह-सम्बन्धी इस नए क़ानून की रचना की है। पर कुछ कुटिल और स्वार्थी लोगों ने कोटा-राज्य की भोली-भाली प्रजा को बहका कर उक्त क़ानून को असफल बना देने के लिए एक आन्दोलन खड़ा कर दिया है। काशी का हिन्दी साप्ताहिक "ब्राह्मण महासम्मेलन" पत्र अपने १० जून सन् १९२९ ई० के अङ्क में उक्त पत्र की समालोचना करते हुए लिखता है "× × × बाल्यकाल में कन्याओं का विवाह करना बहुत ही उपकारक है। इससे समाज में व्यभिचार आदि दोष कम उत्पन्न होते हैं। रह गई वृद्ध-विवाह की बात, वह भी शास्त्र-सम्मत है।" इस अनर्गल प्रलाप पर टीका-टिप्पणी करना हम व्यर्थ समझते हैं। काशी का "ब्राह्मण महा-सम्मेलन" उन पत्रों में है जो सत्य को देख कर भी नहीं देखना चाहते। भारतवर्ष में न जाने कितनी पीढ़ियों से बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह की कुरीतियाँ प्रचलित हैं और इन कुरीतियों के अनिवार्य फल-स्वरूप समाज में व्यभिचार और भ्रूण-हत्याओं का बाज़ार भी बड़े ज़ोरों से गर्म है। पर "ब्राह्मण सम्मेलन" पत्र को इन नित्य घटित होने वाली बातों से कुछ मतलब नहीं। जो पत्र बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह जैसी भयङ्कर और घातक कुरीतियों का समर्थन शास्त्र के नाम पर कर सकता है, उस निर्लज्ज और अधम पत्र के लिए व्यभिचार, भ्रूण-हत्या, वेश्या-वृत्ति आदि किसी भी बात को शास्त्र-सम्मत बना देना कठिन नहीं है !! ऐसे ही उच्छृङ्खल पत्रों और उत्तरदायित्व-शून्य पत्रकारों के ऊपर हिन्दू-शास्त्रों की प्रतिष्ठा को मटियामेट करने का सारा उत्तरदायित्व है। ऐसे ही धर्मपराङ्मुख और शास्त्र की हत्या करने वाले दुर्विदग्धों ने भारतवर्ष की आदर्श वर्ण-व्यवस्था को नष्ट करके भारतीय समाज को आज पाप और व्यभिचार का घर बना-रक्खा है। हम आशा करते हैं कि कोटा की प्रजा इन शास्त्र-विरोधी और स्वार्थपूर्ण व्यवस्थाओं के बहकावे में न आवेगी। वह यदि ईमानदारी के साथ और प्रसन्नता-पूर्वक अपने सुयोग्य तथा प्रजावत्सल नरेश की आज्ञाओं का पालन करती जाय, तो कुछ ही दिनों में इस राज्य से पाप और व्यभिचार का नामोनिशान मिट जायगा और कोटा-राज्य समस्त भारतवर्ष में आदर और सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगेगा।

कोटा-राज्य के अधिकारियों का भी यह पवित्र कर्तव्य है कि जिस आदर्श वैवाहिक क़ानून की रचना उन्होंने की है, उसे सर्वाङ्गपूर्ण और सफल बनाने में उन्हें कोई प्रयत्न उठा नहीं रखना चाहिए। वैवाहिक क़ानून अपने वर्तमान रूप में बहुत ही त्रुटिपूर्ण है। कम से कम इसकी पहली धारा में इतना परिवर्तन तो बहुत ही शीघ्र होना चाहिए कि लड़कियों के विवाह की कम से कम उम्र १२ के स्थान पर १४ और लड़कों की उम्र १६ के स्थान पर १८ कर देना चाहिए। बड़ी व्यवस्थापिका सभा द्वारा नियुक्त सहवास-वय-समिति ने भी, जिसकी सम्मति इस विषय में लोकमत का दर्पण है, लड़कियों के लिए विवाह की छोटी से छोटी अवस्था १४ वर्ष की ही निश्चित की है। हम आशा करते हैं कि कोटा-राज्य के समान एक उन्नतिशील देशी राज्य सामाजिक व्यवस्था के मामले में ब्रिटिश-भारत से पीछे कदापि नहीं रहेगा। बहुत से देशी राज्यों ने सामाजिक सुधार-सम्बन्धी क़ानून केवल मात्र दिखावे के लिए—अपने श्वेताङ्ग महाप्रभुओं की दृष्टि में अपने को उन्नतिशील प्रमाणित करने के लिए—जारी कर रक्खे हैं। विवाह-क़ानून को प्रचलित करने में कोटा-राज्य का आन्तरिक उद्देश्य क्या है, इस सम्बन्ध में हमें कोई विश्वसनीय सूचना नहीं प्राप्त हुई है। उड़ते हुए समाचारों और अनुमानों के आधार पर हम कोई सम्मति निर्धारित करना भी नहीं चाहते। इस क़ानून को सफल बनाने के लिए राज्य की ओर से भविष्य में किए जाने वाले प्रयत्नों को देख कर ही अधिकारियों के आन्तरिक उद्देश्य के सम्बन्ध में कोई सम्मति निश्चित रूप से निर्धारित की

जा सकेगी। यहाँ हम केवल इतना ही कह देना चाहते हैं कि कोटा-राज्य ने यदि केवल दिखाने के लिए यह क़ानून पास किया है, तो हम कोटा-राज्य के इस कार्य की घोर निन्दा करते हैं और यदि राज्य ने प्रजा के कल्याण की भावना से प्रेरित होकर, जैसा कि घोषणा-पत्र में कहा गया है, इस क़ानून को प्रचलित किया है, तो हम हृदय की समस्त शक्ति के साथ इस क़ानून का स्वागत करते हैं।

* * *

काला और गोरा क़ानून

अलीगढ़ ज़िले के कुछ किसानों ने हाल ही में एक धनी ज़मींदार के द्वारा अपनी स्त्रियों के धर्म का अपहरण किए जाते देख कर, उसकी हत्या कर दी है। हेमसिंह ज़मींदार, जिसकी अवस्था लगभग ४० वर्ष की थी, अपने ग्रामों में बड़ा ही भयानक आदमी समझा जाता था। उसने रेवती नाम की एक प्रौढ़ा स्त्री की सहायता से बहुत सी स्त्रियों और युवतियों को धर्म-भ्रष्ट किया था। पर उसके डर के मारे कोई उसके विरुद्ध ज़बान तक न हिलाता था। एक दिन उसकी कुदृष्टि प्रेमसिंह की स्त्री तोफ़ा पर पड़ी। इस पर प्रेमसिंह और उसके साथियों ने राय ठहराई कि तोफ़ा एक रात को हेमसिंह को बुला भेजे और हम लोग इधर-उधर छिप रहें और मौक़ा पाकर उसे मार डालें। इस निश्चय के अनुसार एक रात को हेमसिंह बुलाया गया; तोफ़ा ने उसका आदर-सत्कार किया; उसे पलङ्ग पर बैठाया और कमरे से एक लैम्प ले जाने के बहाने बाहर निकल गई। उसी समय प्रेमसिंह अपने साथियों के सहित हेमसिंह पर टूट पड़ा और उसे मार डाला। मुक़द्दमा चलने पर अभियुक्तों ने अदालत में सारी कहानी सच-सच बता दी और कहा कि हम लोगों ने अपनी स्त्रियों की रक्षा करने के लिए ही हेमसिंह को संसार से हटाया है। सेशन जज ने प्रेमसिंह और उसके साथी टोरीसिंह को हत्या का अपराधी पाया और आजन्म कालेपानी की सज़ा दी। मुसम्मात तोफ़ा निर्दोष कह कर छोड़ दी गई। प्रयाग-हाईकोर्ट ने यह कह कर कि अभियोग ठीक साबित हो चुका है, अभियुक्तों की अपील ख़ारिज कर दी।

अब इसी प्रकार के इङ्गलैण्ड के एक मुक़द्दमे का निर्णय भी सुनिए:—फ़्रेडरिक कार्टर नाम के एक १६ वर्ष के नवयुवक ने आर्थर टॉमस सैण्डर्सन की हत्या हाल ही में इस कारण की थी कि सैण्डर्सन कार्टर की माता और बहिन का अपमान कर रहा था। सरकारी वकील के कथनानुसार कार्टर की माता का, जो विधवा थी, सैण्डर्सन से प्रेम था। सैण्डर्सन की अवस्था ३२ वर्ष की थी। कार्टर किसी कारण से सैण्डर्सन से द्वेष रखता था। सैण्डर्सन एक रात को शराब पीकर कार्टर के घर आया और उसकी विधवा माता को मार गिराया तथा उसकी बहिन को सीढ़ी पर ढकेल दिया। अपनी माता और बहिन का अपमान होते देख कर कार्टर को क्रोध आ गया। उसने अपने बिछावन से उठकर एक मांस काटने वाली छुरी से सैण्डर्सन के गले तथा पीठ पर आघात किया, जिससे थोड़ी देर के बाद सैण्डर्सन की मृत्यु हो गई। युवक कार्टर ने पुलिस को बयान देते हुए कहा कि मैंने अपनी माता और बहिन का अपमान करने के कारण सैण्डर्सन की हत्या की है और मुझे इस कार्य के लिए प्रसन्नता है। ओल्ड बेली के जस्टिस स्विफ़्ट ने इस मुक़द्दमे के सभी गवाहों का बयान सुन चुकने के बाद कार्टर के कार्य की आलोचना करते हुए कहा कि जूरी का कोई भी सदस्य यदि अपनी माता और बहिन को दो बार ठोकर मार कर गिराए जाते हुए देखे तो वह भी वही कार्य करेगा जो कार्टर ने किया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जूरी ने कार्टर को निरपराध कह कर छोड़ दिया।

भारतवर्ष और इङ्गलैण्ड के एक ही प्रकार के दो मुक़द्दमों के इन परस्पर-विरोधी निर्णयों को सुन कर हमें स्पष्ट रूप से अपनी दासता का अनुभव हो जाता है। कार्टर की माता और बहिन पर केवल प्रहार हुआ था; पर पापी हेमसिंह के द्वारा कितनी ही असहाया स्त्रियों का धर्म नष्ट किया जा चुका था। तोभी कार्टर निरपराध कहकर मुक्त किया गया और प्रेमसिंह तथा उसके साथी को कालेपानी की सज़ा दी गई! इसके लिए हम इलाहाबाद-हाईकोर्ट को दोष नहीं दे सकते। दोष है, हमारी ग़ुलामी का, जिसने हमें ऐसे क्रूर न्यायों को सहन करने के लिए विवश कर रक्खा है!

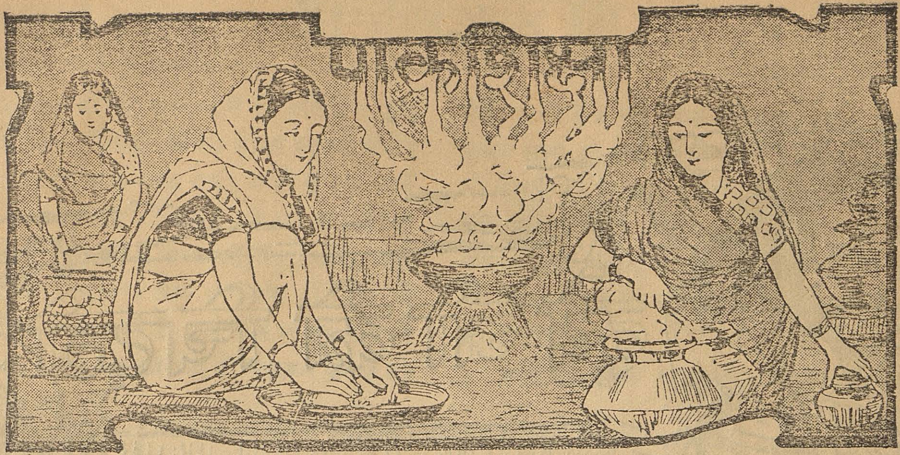

ज्वार के पापड़

तीन पाव ज्वार लेकर उसे ख़ूब कूटो। जब उसकी मिङ्गी निकल आवे तब धोकर सुखा दो। पाव भर चावलों को भी धोकर सुखा दो। जब दोनों चीज़ें ख़ूब सूख जायँ तब मिला कर ख़ूब बारीक आटे की तरह पीस लो। पुनः आटे के अन्दाज़ से पानी लेकर और पतीली में चारों ओर कड़वा तेल लगा कर पानी को खौलाओ। सज्जी को बारीक पीस कर पानी में ही डाल देना चाहिए। (सज्जी सेर भर आटे में टका भर पड़ती है, इसी अन्दाज़ से डालनी उचित है।) पानी खौलने पर आटे को नमक, काली अथवा लाल मिर्च और गरम मसाले के साथ पानी में डाल कर ख़ूब घोटना चाहिए। यदि ठीक अथवा शीघ्र चलाया न जायगा तो गाँठें पड़ जायँगी। जिस प्रकार कि हलवा होता है वैसा ही पक जाय और हाथ से छूने पर जब उसमें चेप न रहे, तब उतार लो। गरम-गरम ही तेल लगा कर पापड़ बेलना चाहिए, बेल कर धूप में सुखाते जाओ, सूखने पर रख लो। यह तेज़ आँच से और अधिक घी में भूनने से बढ़ते हैं और खाने में बड़े स्वादिष्ट होते हैं।

—कमलाकुमारी

* * *

आलू की मीठी पूरी

एक सेर आलू उबाल कर छील डालें और सिल पर बारीक पीस लें, ताकि गाँठ न रहने पावे। पानी नहीं डालना चाहिए। इसकी छोटी-छोटी पूरियाँ मैदा लगा कर बेलें तथा घी में बादामी रङ्ग की सेंक लें। पुनः एक तार की चाशनी में गरम-गरम पूरियाँ छोड़ते जावें। यह चाशनी पहले ही तैयार करके रख लेनी चाहिए।

* * *

साबूदाने की कचरी

प्रथम आध सेर साबूदाना पानी में पका लें, कनी न रहने पावे। फिर अन्दाज़ से नमक तथा इच्छानुसार काली या लाल मिर्च बारीक पीस कर मिलावें, और चौड़ी थाली में घी लगा, उस पर तैयार किया हुआ साबूदाना हाथ से फैला कर धूप में सुखा लें। सूखने पर घी या तेल में तलने से फूल कर भुरभुरी हो जाती है। हल्की होने से रोगी भी सेवन कर सकता है।

—प्रकाशदेवी भटनागर

* * *

नारियल का पाक

एक बड़े नारियल के गोले को घिसनी में अच्छी तरह घिस डालो। एक सेर शक्कर में दो सेर पानी डाल कर चूल्हे पर चढ़ा दो। जब एक तार की चाशनी आ जावे तब घिसा हुआ नारियल और भूना हुआ आधा सेर खोवा इसमें डाल कर मिला लो। एक बर्तन में घी लगाकर इसे उसमें जमा दो और ऊपर से पिस्ता, बादाम, केशर बारीक-बारीक काट कर छिड़क दो। यह पाक स्वादिष्ट और पुष्टिकारक होता है।

—सुशीला देशमुख

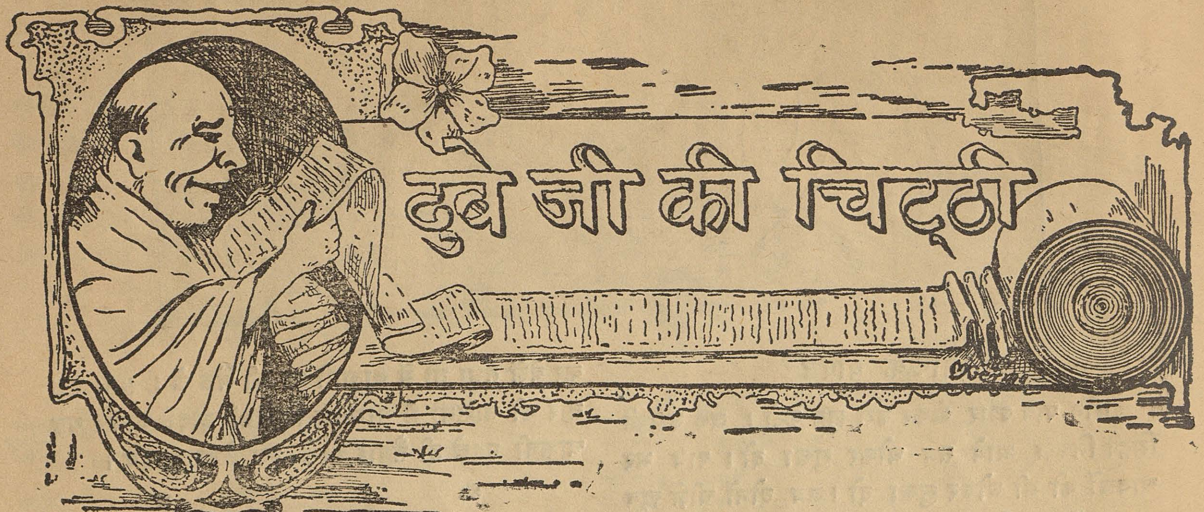

अजी सम्पादक जी महाराज,

जय राम जी की !

आपने दिल्ली के इन्द्रप्रस्थ विधवाश्रम की पुनीत सेवाओं का वृत्तान्त समाचार-पत्रों में पढ़ा ही होगा। यहाँ भी एक विधवाश्रम की सेवाएँ पुलिस की आँख में मूसल की भाँति खटकती थीं। अतएव उसने एक दिन अवसर पाकर आश्रम पर छापा मारा और उसके परोपकारी सञ्चालक को सरकारी मेहमानख़ाने का उम्मीदवार बनाकर छोड़ दिया। भई, चाहे कोई माने या न माने, पर अपने राम तो इसे सोलहो आने पुलिस की चालबाज़ी मानते हैं। पुलिस का आरोप यह है कि उक्त आश्रम में इधर-उधर की भूली-भटकी स्त्रियाँ बहका कर लाई जाती थीं। उनसे व्यभिचार कराया जाता था और ग्राहक लगने पर उन्हें बेच दिया जाता था।

अपने राम इस आरोप के अक्षरों की एक मात्रा भी सत्य मानने के लिए प्रस्तुत नहीं। स्त्रियाँ कुछ गाय-भैंसें तो हैं नहीं, जो पकड़-पकड़ कर काँजी-हाउस की तरह विधवाश्रम में हाँक दी जा सकें। स्त्रियों को हाँक ले जाना सहज नहीं है—यदि इसमें आपको सन्देह हो तो किसी पत्नी वाले सद्गृहस्थ से पूछ लीजिए। वह आपको यही उत्तर देगा कि स्त्रियों के समान अड़ियल मनुष्यों में तो क्या, टट्टुओं में भी चिराग़ लेकर ढूँढ़ने पर भी कदाचित् ही मिले। इन्हें जितना आगे बढ़ाने की चेष्टा करो उतना ही ये पीछे हटती हैं। ऐसी स्त्रियों को विधवाश्रम वाले हाँक ले जायँ ! शिव ! शिव !!

इसके अतिरिक्त दूसरी बात यह है कि भूली-भटकी स्त्रियाँ हसन निज़ामी के चेलों से बचने ही कहाँ पाती हैं जो दूसरों के हाथ में पड़ें और न कभी यह देखा कि विधवाश्रम वालों तथा हसन निज़ामी के चेलों में किसी स्त्री की छीन-झपट करते हुए लात-जूता चला हो—हाँ, सुना बहुधा है; परन्तु अपने राम सुनी हुई बात पर बहुत कम विश्वास करते हैं।

कहा यह जाता है कि विधवाश्रम वाले स्त्रियाँ बेचते हैं। यह बात बिल्कुल ग़लत है। आश्रम वाले स्त्रियाँ बेच ही नहीं सकते। क्यों ? उन्हें हुकुम नहीं है। जब हुकुम नहीं है तब कैसे बेच सकते हैं—दिल्लगी है ? हुँह ! कह दिया बेचते हैं। और बिकने वाली चीज़ें कैसे जाती हैं, जड़ पदार्थ पैक होकर जाते—अथवा सन्दूक़, बक्स या टोकरी इत्यादि में जाते हैं, पशु इत्यादि गले में रस्सी या नाक में नाथ डाल कर ले जाए जाते हैं। स्त्रियाँ न पैक की जा सकती हैं, न उन्हें किसी बक्स या टोकरी में रक्खा जा सकता है। न उनके गले में रस्सी डाली जा सकती है और न नाक में—फिर ख़रीदार उन्हें ले कैसे जाते होंगे। अपने राम की समझ में आज तक यह

बात नहीं आई। अजी यह सब कहने की बातें हैं। कुछ लोग कहते हैं कि—"स्त्रियाँ विवश होकर स्वयम् पालतू कुत्ते की तरह ख़रीदार के साथ चली जाती हैं। न जायँ तो करें क्या?" यह बात भी अपने राम को कम जँचती है। इस बीसवीं शताब्दी में सत्याग्रह, असहयोग, अनशन, अहिंसा तथा और न जाने क्या-क्या होते हुए भी कहा जाता है कि क्या करें? कुछ और न कर सकें तो कहीं एक स्थान पर बैठकर कोसना ही आरम्भ कर दें तो बेचने वाले और ख़रीदने वाले दोनों के पुरखों की आत्माएँ तक तिलमिला जायँ। 'काह न अबला करि सकै' वाली कहावत के अनुसार स्त्री सब कुछ कर सकती है। यहाँ तक कि जब वह अपनी इच्छा के विरुद्ध बेची जाने पर ख़रीदार के साथ बिना भौंहें मटकाए और उँगली नचाए चली जाती है तो रह क्या गया? इसी से तो कहा जाता है कि स्त्री सब कुछ कर सकती है। स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध कोई नहीं ले जा सकता। रावण सीता को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले गया तो उसका क्या परिणाम हुआ—हालाँ कि रावण कैसा शक्तिशाली और बलवान् था—यह सब जानते हैं। शिशुपाल ने रुक्मिणी को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले जाना चाहा था—आख़िर वह किस दशा को प्राप्त होता भया, यह आपने रुक्मिणी-मङ्गल में अवश्य सुना होगा। और वैसे तो लोग नित्य हज़ारों स्त्रियों को उनकी इच्छा के विरुद्ध ले जाते हैं और कोई माई का लाल चूँ नहीं करता। उलटे ख़ुशी मनाते हैं, बाजे बजवाते हैं, रुपए-पैसे लुटाते हैं। स्त्री बेचारी बिलख-बिलख कर रोती हुई उनके साथ हो लेती है। यदि वह अपनी इच्छा से जाय तो हँसती हुई न जाय—रोती हुई क्यों जाय? हाँ, इतनी बात अवश्य है कि उस दशा में जो स्त्री को ले जाता है उसकी मुट्ठी गर्म होती है और इस दशा में जिसे लोग स्त्री-विक्रय कहते हैं, स्त्री को ले जाने वाले की मुट्ठी ठण्ढी हो जाती है।

यदि स्त्री बेचने वाले भी ख़रीदार की मुट्ठी गर्म कर दिया करें तो फिर शायद लोगों को कोई शिकायत न रहे।

अब ज़रा उन लोगों पर ग़ौर कीजिए, जिन पर स्त्री-विक्रय का आरोप लगाया जाता है। उनमें से अधिकांश जो हैं वह खद्दर पहनते हैं। (जो नहीं पहनते वह ग़लती करते हैं। और इसीलिए लोगों को उन पर शक करने का मौक़ा मिलता है।) दूसरे वे अपने द्वार पर ऐसा साइन-बोर्ड लगाते हैं जिसमें से देश-सेवा शहद की तरह टपकती रहती है। फिर भी लोग उनकी देश-सेवा पर सन्देह करते हैं—ग़ज़ब है, सितम है। हालाँ कि वह बेचारे केवल इसीलिए कि लोग उन पर सन्देह न करें, सबका आदर करते रहते हैं और सबको ख़ुश रखने की चेष्टा करते हैं। ख़ास कर पुलिस को ख़ुश रखने में उन बेचारों को काफ़ी परिश्रम पड़ता है। क्योंकि पुलिस का स्वभाव बड़ा शक्की होता है और पुलिस का शक किसी क़दर ख़तरनाक भी कहा जाता है। इतना करने पर भी लोग उन पर अविश्वास करते हैं। राम! राम! इसी से तो कहा है कि संसार

लम्बी दाढ़ी

पाठकों को जान कर प्रसन्नता होगी कि हिन्दी के ख्यातनामा हास्यरस-लेखक श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल-एल० बी० की प्रायः सभी आगामी पुस्तकें इस संस्था द्वारा प्रकाशित होंगी। श्रीवास्तव महोदय ने अपनी सुविख्यात पुस्तक "लम्बी दाढ़ी" जिसकी छपाई आदि का इधर वर्षों से ठीक प्रबन्ध नहीं था, समस्त अधिकार इस संस्था को दे दिया है। चौथे संस्करण का संशोधन तथा छपाई आदि का प्रबन्ध हो रहा है। इस बार पुस्तक सचित्र और सजिल्द प्रकाशित होगी। ग्राहकों को अभी से अपना नाम रजिस्टर करा लेना चाहिए। मूल्य लगभग २) रु० होगा।

श्रीवास्तव महोदय की दो सुन्दर पुस्तकें "लतख़ोरी लाल" तथा "काठ का उल्लू" आदि भी हमारे यहाँ से शीघ्र ही प्रकाशित होने वाली हैं।

मैनेजर 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

से न्याय उठ गया। जब उन्होंने द्वार पर विधवाश्रम अथवा किसी ऐसे ही श्रद्धा उत्पन्न करने वाले नाम का साइनबोर्ड लगा रक्खा है तो फिर वे भीतर चाहे कोकेन बेचें, चाहे जुआ खिलावें और चाहे स्त्री बेचें—इससे लोगों को क्या मतलब? किसी की भीतरी बातों से सर्वसाधारण को क्या सरोकार? हाँ, यदि बम बनावें, या सरकार के विरुद्ध षड्यन्त्र रचें तो पुलिस को अधिकार है कि उसमें हस्तक्षेप करे। परन्तु जब वह सरकार के ख़ैरख़्वाह और पुलीस के मित्र हैं, तो फिर किसी को बोलने का अधिकार नहीं है।

उस दिन एक महाशय मुझसे बोले—क्यों दुबे जी, क्या विधवाश्रमों में सत्य ही ऐसा अनर्थ होता है?

मैंने उत्तर दिया—विधवाश्रमों में अनर्थ हो ही नहीं सकता—जो कुछ होता है वह सार्थक होता है।

"आपका तात्पर्य यह है कि अनर्थ भी सार्थक होता है?"

"निस्सन्देह!"

"क्यों?"

"इसलिए कि कपास जहाँ जायगी ओटी जायगी। सुन्दर और युवती स्त्रियाँ जहाँ जायँगी वहीं लोग उन्हें घतियाएँगे। क्या आप समझते हैं कि विधवाश्रम के कार्यकर्त्ता सब इन्द्रियजित अथवा धर्मराज के वंशज हैं?"

"जनता तो उनसे ऐसे ही व्यवहार की आशा करती है।"

"तो जनता अन्धी और मूर्ख है। सम्भव है, एकाध मनुष्य ऐसा निकल आवे; परन्तु प्रत्येक विधवाश्रम का प्रत्येक कार्यकर्त्ता ऐसा नहीं हो सकता। और न समस्त विधवाएँ ही सीता-सावित्री हो सकती हैं। ऐसी दशा में केवल दो ही उपाय हैं। या तो विधवाश्रम रक्खे ही न जायँ और जो रक्खे जायँ तो वहाँ जो कुछ भी हो उसे सहन किया जाय।"

"जो विधवाश्रम तोड़ दिए जायँ तो विधवाएँ कहाँ जायँ?"

"उनका विवाह कर दिया जाय।"

"परन्तु विधवा-विवाह का इतना प्रचलन अभी है कहाँ?"

"प्रचलन अपने आप तो हो नहीं जायगा। जब आप लोग करेंगे तभी होगा।"

"कोई और उपाय होना चाहिए।"

"हाँ, एक उपाय और है?"

"वह क्या?"

"विधवाश्रमों के जितने कार्यकर्त्ता हों, सब ख़्वाजासरा हों—जैसे कि मुसलमान-बादशाह अपने हरम के लिए रखते थे।"

"ख़्वाजासरा किसे कहते हैं?"

"ख़्वाजासरा एक ऐसा प्राणी होता है जिसके केवल नौ इन्द्रियाँ होती हैं—दसवीं इन्द्री बिल्कुल जड़ से ग़ायब होती है।"

"आप तो मज़ाक़ करते हैं।"

"बेशक मज़ाक़ है, क्योंकि ऐसा होना असम्भव है; इसलिए मज़ाक़ तो है ही।"

"परन्तु विधवाओं को बेच भी तो लेते हैं। इसकी रोक-थाम कैसे होगी। और यदि ख़्वाजासरा भी रक्खे जायँ तो वे अन्य पुरुषों को विधवाओं से मिला सकते हैं। ख़्वाजासरा रुपए के लोभ को कैसे त्याग देंगे?"

"इसकी युक्ति यह है कि जितने ख़्वाजासरा हों सब लखपती और करोड़पती हों—उनके घर में असंख्य रुपए भरे पड़े हों—तब वह रुपए के लोभ से कोई काम न करेंगे। अब आप समझे? स्वयम् वह किसी काम के नहीं—रुपए की उन्हें कमी नहीं, इसलिए दूसरों की भी दाल नहीं गल सकती। बस, फिर बेखटके विधवाश्रम चलने दीजिए।"

वह महाशय सोचकर बोले—युक्ति तो अच्छी है; पर कार्य में परिणत नहीं हो सकती।

"तो फिर बातों के जमा-ख़र्च से काम भी नहीं चल सकता, आराम से घर में बैठिए और बस 'टुक-टुक दीदम दम न कशीदम' वाली कहावत से काम लीजिए।"

"यह भी तो नहीं हो सकता।"

"तो गङ्गा में जाकर डूब मरिए, न देखिएगा न भूँकिएगा।"

"वाह! यह आपने अच्छी कही, मैं गङ्गा में क्यों डूबने लगा?"

"बेशक, गङ्गा क्या, आप तो समुद्र के भीतर से भी टहयाँ से निकल आवेंगे। आप प्रशान्त महासागर में भी न डूबेंगे। आप उन आदमियों में नहीं हैं जिनके लिए चुल्लू भर काफ़ी होता है।"

इतना सुन कर फिर वह नहीं बोले—चुपचाप खिसक गए।

सम्पादक जी, मेरी राय में तो विधवाश्रम एक बिल्कुल व्यर्थ संस्था है। इससे अपकार के अतिरिक्त उपकार बहुत कम होता है। भगवान् जाने यह किसकी ईजाद है। मेरी समझ में विधवाश्रम के अर्थ इसके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कि कुछ स्त्रियों को कुछ पुरुष एक स्थान पर जमा रक्खें और उन्हें रोटी-कपड़ा देकर उनसे अपनी इच्छानुसार काम लें। जिन विधवाओं को कहीं खाने-पीने का तथा आराम से रहने का ठिकाना होगा, वह विधवाश्रम में जायँगी ही क्यों? विधवाश्रम में वे ही जायँगी जो आश्रयहीन होंगी। आश्रयहीन स्त्रियों में इतना साहस कहाँ कि वे आश्रम के कार्यकर्ताओं की आज्ञा का उल्लङ्घन कर सकें। उल्लङ्घन करें तो कोई न कोई तोहमत लगाकर निकाल बाहर की जायँ। ऐसी दशा में विधवाएँ सर्वथा कार्यकर्त्ताओं के अधीन होती हैं और वे जैसा चाहते हैं वैसा उन्हें करना पड़ता है। यदि विधवा-विवाह का प्रचलन पूर्णरूप से हो जाय तो फिर इन आश्रमों की आवश्यकता ही न रहे। जब तक विधवाश्रम रहेंगे तब तक उनमें से अधिकांश में ऐसी ही बातें रहेंगी। इसके लिए विधवाओं को अथवा कार्यकर्त्ताओं को दोष देना संसार से और मनुष्य-स्वभाव से अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है। स्त्रियाँ, जो काम तथा अर्थ दोनों का प्रलोभन उत्पन्न करने वाली हैं, उनकी संस्था का प्रबन्ध पुरुष करें, मेरे लिए तो यह ऐसी ही बात है कि चूहों की संस्था की प्रबन्धक बिल्लियाँ बनाई जावें। मैं तो यहाँ तक कहता हूँ कि यदि विधवाश्रमों की कार्यकर्त्ताएँ केवल स्त्रियाँ ही बनाई जावें तब भी वहाँ सदाचार का रहना असम्भव है। स्त्री कार्यकर्त्ताएँ स्वयम् विधवाओं को भ्रष्ट नहीं कर सकतीं, परन्तु रुपए के लोभ से उन्हें बेच सकती हैं—मनचले पुरुषों द्वारा भ्रष्ट करवा सकती हैं।

जो व्यक्ति यह आशा करते हैं कि विधवाश्रम के कार्यकर्त्ताओं को सदाचारी, ब्रह्मचारी, त्यागी, निर्लोभी होना चाहिए, वे पागल हैं, घास खा गए हैं। उन्हें चाहिए कि वे पहाड़ों की कन्दराओं में जाकर निवास करें, बस्ती में न रहें। या फिर संसार का और मनुष्य-स्वभाव का अध्ययन करके अपने भेजे में थोड़ी अक़्ल पैदा करें।

सम्पादक जी, विधवाश्रमों को उनके हाल पर छोड़िए, उनमें सुधार करना किसी के बूते का रोग नहीं है। उनका सुधार तो केवल यही है कि उनको समूल नष्ट कर दिया जाय। इसका असली इलाज विधवा-विवाह है। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी—जब विधवाएँ ही न रहेंगी तो विधवाश्रम कहाँ रहेंगे? जब तक रोग के कीटाणु नहीं मरते तब तक रोग नहीं हटता। विधवाएँ व्यभिचार, स्त्री-विक्रय, विधर्मियों की जन-वृद्धि इत्यादि रोगों के कीटाणु हैं। ये कीटाणु जब तक जीवित हैं, तब तक हज़ार प्रयत्न करने पर भी उक्त रोगों से छुटकारा मिलना असम्भव है। यदि इन रोगों से छुटकारा पाना हो तो विधवाओं का नाश कीजिए। और उनके नष्ट करने का केवल एक उपाय है और वह है—विधवा-विवाह।

भवदीय,

विजयानन्द (दुबे जी)

अन्तिम पृष्ठ छपते-छपते हमारे पास मध्य-प्रान्त तथा बरार के डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इन्स्ट्रक्शन का आज्ञापत्र आया है, जिसमें इन प्रान्तों के स्कूल और कॉलेजों में भी 'चाँद' बन्द होने की सूचना है!

बूढ़े का नवाँ विवाह

झाबुआ के अधिकार-च्युत राजा साहब, जो आजकल इन्दौर में रहते हैं, ५४ वर्ष की अवस्था में नवाँ विवाह करने की तैयारी कर रहे हैं। उनकी पाँच रानियाँ मर चुकी हैं और तीन इस समय ज़िन्दा हैं। उनकी आठवीं शादी केवल छः महीना पहले हुई थी। दुःख केवल इतना है कि आपका स्वास्थ्य अच्छा नहीं! परमात्मा ऐसे बूढ़ों का भला करें!!

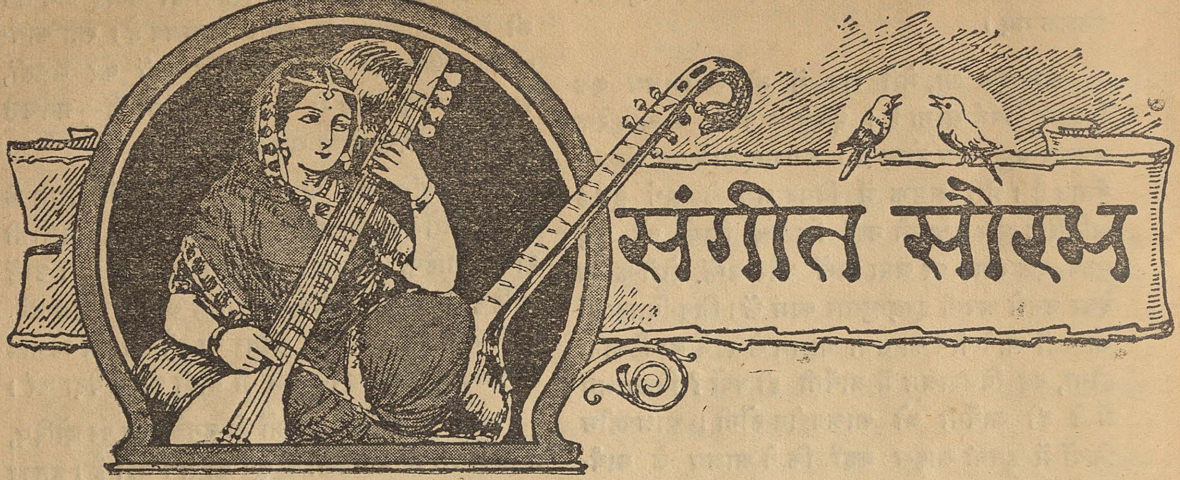

[सम्पादक—श्री० किरणकुमार मुखोपाध्याय (नीलू बाबू)]

सोरठा, ३ ताल

[शब्दकार—सूरदास जी

गीत

स्थायी—जा जा रे भ्रमरा दूर दूर ।
तेरो सो रङ्ग अङ्ग है उनको,
जिन मेरो चित कियो चूर चूर ।

अन्तरा—जब लगि तरुण फूल महकत हैं,
तब लग रहत हजूर-हजूर ।
सूर श्याम मतलब के मधुकर,
ले ले कली रस घूर घूर ॥

स्थायी

		०				१				×				३	
सं	—	—	नि[क]	ध	प	म	म	प	—	म	ध	प	म	ग	रे
जा	—	—	जा	आ	रे	भ्र	म	रा	—	दू	ऊ	र	दू	ऊ	र
रे	ग	रे	प	—	म	ग	—	ग	स	—	रे	ग	म	—	—
ते	रो	सो	रं	—	ग	अं	—	ग	है	—	उ	न	को	—	—
रे	रे	म	म	प	प	ध	ध	नि[क]	—	ध	प	—	प	—	—
जि	न	मे	रो	चि	त	कि	यो	चू	—	र	चू	—	र	—	—

अन्तरा

रे	ग	रे	प	म	म	म	ग	रे	ग	स	स	रे	ग	म	—
ज	ब	ल	गि	त	रु	ण	फू	ऊ	ल	म	ह	क	त	हैं	—
रे	रे	म	म	प	प	ध	ध	नि(क)	—	ध	प	—	प	—	—
त	ब	ल	ग	र	ह	त	ह	जू	—	र	जू	—	र	—	—
म	—	म	प	—	प	नि	नि	प	प	नि	—	नि	सं	रें	रें
सू	—	र	श्या	—	म	म	त	ल	ब	के	—	म	धु	क	र
मं	—	रें	नि	रें	नि	सं	सं	प	प	नि	—	नि	सं	रें	रें
सू	—	र	श्या	आ	म	म	त	ल	ब	के	—	म	धु	क	र
नि	नि	नि	नि	—	सं	सं	—	नि	रें	सं	नि(क)	—	ध	प	—
ले	ले	क	ली	—	र	स	—	घू	ऊ	र	घू	—	ऊ	र	—

क्रान्ति की आवश्यकता

जैसोर खुलना युवक-कॉन्फ़्रेन्स का अधिवेशन हाल ही में सानन्द समाप्त हुआ है। इस सम्मेलन में अन्तर्जातीय विवाह, अन्तर्जातीय सहभोज, महिलाओं का उद्धार, मजूरों का सङ्गठन आदि विषयों पर बहुत से महत्वपूर्ण प्रस्ताव पास हुए हैं। युवक-सम्मेलन ने अगले वर्ष के लिए अपना जो कार्य-क्रम बनाया है, उसमें प्राथमिक स्कूलों की स्थापना, ब्रिटिश माल का बहिष्कार, कृषि और उद्योग की उन्नति तथा अखाड़ों की स्थापना करना शामिल है। एक प्रस्ताव के द्वारा ऐसा क़ानून बनाने की माँग भी की गई है, जिससे पैत्रिक सम्पत्ति में स्त्रियों का भी अधिकार समझा जाय। इस सम्मेलन की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके सुयोग्य अध्यक्ष श्री० सुभाषचन्द्र बोस महोदय ने बड़े ही प्रभावोत्पादक और ओजस्विनी भाषा में यह बताया कि वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि आदर्श समाज की सृष्टि की जाय। नवयुवकों को सब प्रकार के सामाजिक अत्याचारों, नाशकारी रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के विरुद्ध विद्रोह करना सीखना चाहिए। जब तक स्त्रियों को अबाध रूप से अपनी उन्नति करने का अवसर नहीं दिया जायगा, तब तक देश की स्वतन्त्रता के लिए चिल्लाना व्यर्थ है! स्वराज्य प्राप्त करने के पहले अछूतों को समाज के अत्याचारों से मुक्त करना पड़ेगा। इन सब कामों के करने का भार नवयुवकों पर ही है। अतः नवयुवकों को साहसपूर्ण कामों के करने के लिए अनन्त स्फूर्ति और अक्षय शक्ति का सञ्चय करना चाहिए। श्री० बोस महोदय ने जैसोर के नवयुवकों को जो शिक्षा दी है, उसे भारत के प्रत्येक नवयुवक को अपने जीवन का मन्त्र बनाना चाहिए।

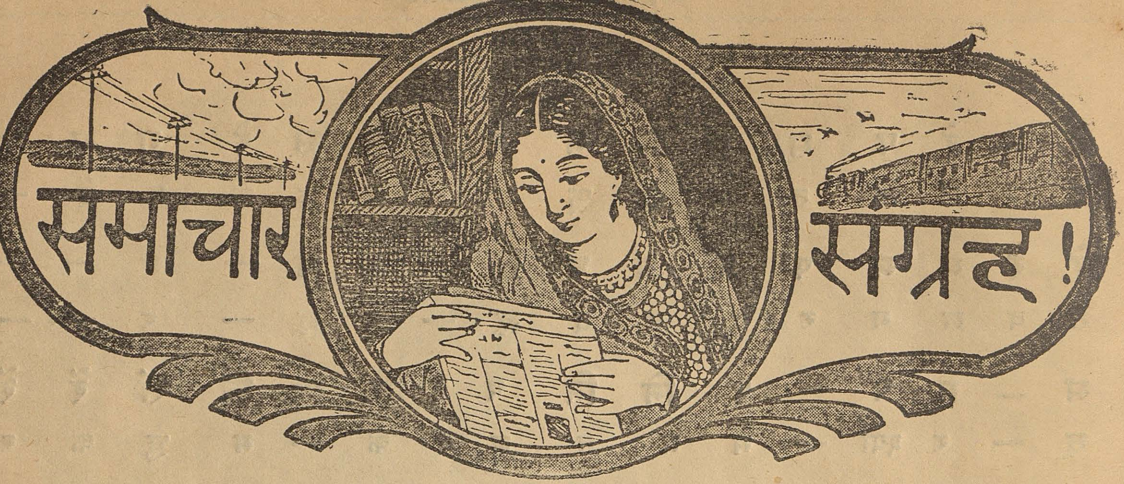

ब्राह्मणों में पुनर्विवाह

भारतवर्ष की सभी जातियाँ धीरे-धीरे सामाजिक सुधार के मार्ग पर अग्रसर हो रही हैं, पर ब्राह्मण लोग अभी तक हानिकारक रूढ़ियों के ही पोषक बने हुए हैं। ऐसी अवस्था में एक ब्राह्मण-नवयुवक का अन्तर्उपजातीय विवाह करना ब्राह्मण-समाज के लिए क्रान्ति ही कहा जायगा। रंगून के "डेली न्यूज़" प्रेस के क्लर्क श्री० भवानीफेर जी चौबे का शुभ-विवाह गत ४ जुलाई को श्वेबो के चीफ़ जेलर श्री० मोतीलाल जी की विदुषी पुत्री कुमारी लीलावती से हुआ है। श्री० भवानीफेर जी चौबे-कुल-भूषण हैं और देवी लीलावती का जन्म कान्यकुब्ज परिवार में हुआ है। उक्त दम्पति ने यह विवाह करके एक बड़ा ही सराहनीय कार्य किया है। ब्राह्मण नवयुवकों को हृदय से इस क्रान्ति का स्वागत करना चाहिए।

ब्राह्मणों में होने वाले एक और भी क्रान्तिकारी पुनर्विवाह का समाचार मिला है। बनारस के पण्डित छेदीलाल जी मिश्र गौड़ की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती गिरजादेवी बाल्यावस्था में ही विधवा हो गई थीं। उनके माता-पिता ने सामाजिक कुरीतियों को तोड़ कर गत १० जुलाई को उनका शुभ-विवाह पण्डित मदनमोहन जी मिश्र (गौड़) से कर दिया है। विवाह में बहुत से सगे-सम्बन्धियों ने भी सहयोग दान किया है। इस प्रशंसनीय कार्य के लिए काशी के आदि गौड़ ब्राह्मण बधाई के पात्र हैं। अन्य ब्राह्मणों को भी उनका अनुकरण करना चाहिए।

* * *

एक बालिका की करुण-कहानी

पारिवारिक अत्याचारों के कारण हिन्दू-स्त्रियों का जीवन कितना दुःखमय हो गया है, इसका कुछ अनुमान निम्न-लिखित घटना से लगाया जा सकता है। सिकन्दराबाद के सेकेण्ड मैजिस्ट्रेट के सामने एक बारह वर्षीया हिन्दू-बालिका के ऊपर आत्महत्या का प्रयत्न करने के अभियोग में मुक़द्दमा चल रहा था। मुक़द्दमे में कहा गया था कि लड़की ने रेल की पटरी पर सोकर आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया था। लड़की रेल की दोनों लाइनों के बीच में सोई हुई थी; इसलिए उसके ऊपर से होकर ट्रेन के चले जाने पर भी उसके शरीर में किसी प्रकार का आघात नहीं पहुँचा। लड़की ने अदालत के सामने अपने अपराध का कारण बताते हुए कहा कि मैं अपने पति के घर नहीं जाना चाहती थी, क्योंकि मुझे अपनी सास से दुर्व्यवहार के अतिरिक्त और किसी बात की आशा नहीं थी; पर मुझे वहाँ जाने के लिए जबर्दस्ती विवश किया जा रहा था। ऐसी अवस्था में मैंने प्राण दे देना ही अच्छा समझा। लड़की के पिता के एक वर्ष तक उसकी नेकचलनी की ज़मानत देने पर वह छोड़ दी गई। देश में इस प्रकार की हज़ारों घटनाएँ नित्य घटित हो रही हैं। पर अधिकांश हिन्दुओं का ध्यान इनकी ओर आकर्षित नहीं होता। क्या कन्याओं की इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह कर देने वाले और उन पर भाँति-भाँति के अत्याचार करने वाले रूढ़िग्रस्त हिन्दू-परिवार इस घटना से कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे?

* * *

लज्जाजनक जीवन से घृणा

एक स्त्री ने लज्जाजनक जीवन से ऊब कर हाल ही में आत्महत्या कर ली है। इस स्त्री का नाम सुनी था और यह जोड़ासाकू (कलकत्ता) की रहने वाली थी। कहा जाता है कि यह स्त्री एक दिन अपने किसी मित्र के साथ घूमने गई। लौटने पर उसका मित्र उसके कमरे में थोड़ी देर ठहर कर चला गया। स्त्री ने उसके जाते ही कमरे का दरवाज़ा भीतर से बन्द कर लिया और सो गई। उसके कमरे में टेलीफ़ोन लगा हुआ था। रात के तीन बजे के लगभग टेलीफ़ोन की घण्टी बजी; थोड़ी देर ठहर कर फिर दूसरी बार बजी। पर स्त्री ने उत्तर नहीं दिया। यह देख कर उसकी बहिन को, जो पास ही में रहती थी, कुछ सन्देह हुआ। उसने कई बार आवाज़ें दीं, पर कोई उत्तर नहीं मिला। इतने में उसकी माँ भी दौड़ी आई। दोनों ने खिड़की का शीशा तोड़ कर देखा तो स्त्री छत में साड़ी बाँध कर लटकी हुई थी। थोड़ी देर के बाद पुलिस आ गई, उसने दरवाज़ा तोड़ कर कमरे की तलाशी ली। कमरे में बहुत से बहुमूल्य गहने ज्यों के त्यों रक्खे हुए थे। जाँच करते समय पुलिस को उसकी साड़ी में एक पत्र बँधा मिला जिसमें लिखा था कि "नगर की स्त्री" बन कर जीवन बिताने से मैं ऊब गई हूँ। इस लज्जामय जीवन से छुटकारा पाने के लिए ही मैं आत्महत्या कर रही हूँ। इस पत्र में अन्य स्त्रियों को भी लज्जामय और घृणित पेशा ग्रहण करने से मना किया गया है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि जाँच किया जाय तो इस पवित्रमना रमणी के हिन्दू-कुल-सम्भवा होने का अवश्यमेव पता चलेगा। हिन्दू-समाज के लिए घोर दुर्भाग्य की बात है कि जिस रमणी-रत्न को किसी उच्च घर की गृहलक्ष्मी होना चाहिए था, उसका ऐसा शोचनीय अन्त हुआ है।

* * *

मातृ-मन्दिर

हमें खेद है, स्थानाभाव तथा समयाभाव के कारण इस अङ्क में मातृ-मन्दिर सम्बन्धी कई आवश्यक सूचनाएँ प्रकाशित नहीं हो सकीं। अनेक भाई-बहिनों के दान तथा वचन हमें प्राप्त हुए हैं, जिसकी विस्तृत सूचना 'चाँद' के आगामी अङ्क में अवश्य प्रकाशित होगी।

—स० 'चाँद'

समाज की आहुति

कलकत्ते में कुमुदनी बाला नामक एक वेश्या की मृत्यु हाल ही में हुई है। मृत्यु के पूर्व इस रमणी ने अपनी सारी सम्पत्ति, जिसका मूल्य लगभग २०-२५ हज़ार रुपया बताया जाता है, स्थानीय हिन्दू-अनाथालय को दान कर दी है। कुमुदनी बाला हिन्दू-समाज के अमानुषिक अत्याचारों की शिकार होकर वेश्या बनने के लिए बाध्य हुई थी। वह कुलीन ब्राह्मण की कन्या थी। उसकी बाल्यावस्था में पिता ने कुलीनता का टेक निबाहने के लिए एक पागल कुलीन लड़के के साथ उसके विवाह का स्वाँग रच कर उसे सदा के लिए नरक की आग में धायँ-धायँ जलने के लिए फेंक दिया! कुमुदनी बाला अत्यन्त रूपवती थी। यौवनावस्था में एक युवक से उसका प्रेम होगया और उसके साथ वह घर से निकल पड़ी। हिन्दू-समाज के आजकल के नपुंसक युवकों से नैतिक दृढ़ता की आशा करना ही मूर्खता है! कुमुदनी बाला का प्रेमी समाज के भय से अधिक दिनों तक उसे अपने साथ न रख सका। अन्त में विवश होकर कुमुदनी बाला को वेश्यावृत्ति ग्रहण करनी पड़ी। मृत्यु के समय के उसके दान से उसके सद्विचारों का पता लगता है। आजीवन पापमय व्यवसाय करने के बाद भी जिस रमणी-रत्न का हृदय इतना पवित्र था, जिसके विचार इतने शुद्ध थे, जिसके हृदय में अपनी जाति के प्रति इतना गहरा प्रेम था, उसका आरम्भिक जीवन कितना अधिक पवित्र और पूजनीय रहा होगा, यह केवल कल्पना करने की बात है! जो हिन्दू-जाति झूठी धार्मिकता का ढोंग रच कर अपने घर की इन पूजनीया देवियों को निर्वासित कर सकती है, निस्सन्देह संसार में वह अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकती।

* * *

स्त्रियों का सुधार-प्रेम

मालेगाँव (अकोला) के माहेश्वरी छगनलाल चण्डक ने अहमदनगर ज़िले की एक १४ वर्षीय कन्या से विवाह करना चाहा था। यह समाचार पाकर "बाल-वृद्ध-बेजोड़-विवाह-प्रतिबन्धक दल" के सदस्यों ने समझा-बुझा कर विवाह रुकवा दिया। इसके तीसरे दिन उस गाँव की स्त्रियों ने उस लड़की का विवाह एक योग्य वर से करा दिया।

जैन-समाज की दुरवस्था

अहमदनगर से हिन्दी साप्ताहिक "जैन-सुधारक" के एक सम्वाददाता लिखते हैं कि मदर-इण्डिया नाम की एक ही पुस्तक से देश और विदेशों में तहलक़ा सा मच गया था। किन्तु यदि केवल अहमदनगर ज़िले के केवल जैन-समाज के पापों का सब हाल लिखा जाय, तो मैं आपको दावे से कह सकता हूँ कि 'मदर-इण्डिया' जैसी १० पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। इस ज़िले में ऐसी-ऐसी रोमाञ्चकारी घटनाएँ, जिनके सामने 'मदर-इण्डिया' के वर्णन भी तुच्छ प्रतीत हैं, बहुतों की संख्या में सदा ही घटित होती रहती हैं। पर उनके द्वारा समाज में कोई तहलक़ा नहीं मचता। जिस तरह मुसलमान लोग बकरा-ईद के दिन जबह करने के लिए जानवरों को साल भर ख़ूब खिला-पिला कर मोटा-ताज़ा करते हैं, उसी प्रकार यहाँ के जैनी कहे जाने वाले जैन-धर्म के कुपूत माता-पिता धन कमाने की इच्छा से अपनी लड़कियों को पाल-पोस कर ख़ूब बड़ी करते हैं। कोई-कोई लड़की तो ३०-३१ साल की उमर तक भी अविवाहिता रक्खी जाती है। इस प्रकार गुप्त व्यभिचार फैलता है और समाज की आँखों में धूल झोंकने के लिए भ्रूण-हत्याएँ कराई जाती हैं। सम्वाददाता के भेजे हुए कुछ समाचारों के नमूने इस प्रकार हैं :—

(१) हाल ही में कड़ा-निवासी श्री० राजमल जी मोतीलाल जी ने अपनी बहिन नाजीबाई का विवाह पाहुर-निवासी श्री० किशनलाल जी नामक एक जैन से किया है। लड़की की अवस्था कुल १३ वर्ष की है और नक़द ६०००) में उसका नीलाम हुआ है। एक मनचले भाई ने अन्दाज़ा लगाया है कि लड़की के मांस की क़ीमत २॥) तोला पड़ी!

(२) लड़की की उमर २०-२२ वर्ष की है। संरक्षक उसकी क़ीमत १६ हज़ार रुपए माँगता है। ग्राहक की ओर से १२ हज़ार तक दाम लगाया जा चुका है। संरक्षक कहता है कि आठ-आठ हज़ार की तो मेरी लड़की की एक-एक आँख हैं! १६ हज़ार से कौड़ी कम न लूँगा! सौदा नीलाम पर है। जो बोलेगा सो पावेगा!

(३) लड़की की उम्र ३०-३१ वर्ष की है। संरक्षक उसकी क़ीमत २० हज़ार रुपए माँग रहा है। १६ हज़ार तक आँका जा चुका है। संरक्षक का कहना है कि मेरा माल देख कर उसके दाम पर पुनः विचार कर लीजिए! इस पर भी तुर्रा यह कि लड़की के छोटे भाई की शादी ख़रीददार को करानी पड़ेगी!

(४) जामखेड़ निवासी श्री० दगडू भाऊ नामक जैन ने ४ हज़ार रुपया लेकर अपनी ६ वर्ष की बहिन की शादी कुसड गाँव-निवासी श्री० रघुनाथ जी से कर दी है, जिनकी अवस्था ५५ वर्ष की है।

जैन-समाज का आन्तरिक चित्र इतना भीषण है कि उसे देख कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं! कोई भी सहृदय मनुष्य बूढ़ों की काम-लिप्सा पर इन अबोध बालिकाओं का बलिदान होते हुए देख कर घृणा प्रकट किए बिना नहीं रह सकता!

मारवाड़ी-अंक

हमें बड़ा खेद है, तार द्वारा छपाई सम्बन्धी जिन नई मैशीनों का ऑर्डर जर्मनी दिया गया था, हमें पता मिला है कि यह माल २० नवम्बर से पहले नहीं आ सकता। इसलिए हमें दुख है कि वर्तमान प्रबन्ध के अनुसार हम 'चाँद' की १५,००० प्रतियाँ से अधिक छापने में सर्वथा असमर्थ हैं। जो थोड़ी सी प्रतियाँ फुटकर बिकेंगी उनका मूल्य २॥) से ३) रु० के भीतर फ़ी प्रति—सामग्री के लिहाज़ से होगा, किन्तु जो लोग अभी से अपना ऑर्डर रजिस्टर करा लेंगे अथवा हमारे कलकत्ता की शाख़ से टिकट ख़रीद लेंगे, उन्हें २) रु० में ही यह विशेषाङ्क दे दिया जायगा।

—व्यवस्थापक 'चाँद'

कमला के पत्र

[सुनहरी जिल्द, तिरङ्गा कवर]

यह पुस्तक कमला नामक एक शिक्षित मद्रासी महिला के द्वारा अपने पति के पास लिखे हुए पत्रों का हिन्दी-अनुवाद है। इन गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण एवं अमूल्य पत्रों का मराठी, बँगला तथा कई अन्य भारतीय भाषाओं में बहुत पहले अनुवाद हो चुका है। पर आज तक हिन्दी-संसार को इन पत्रों के पढ़ने का सुअवसर नहीं मिला था। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए ही हमने इसका हिन्दी-अनुवाद प्रकाशित किया है।

इन पत्रों में कुछ पत्रों को छोड़, प्रायः सभी पत्र सामाजिक प्रथाओं एवं साधारण घरेलू चर्चाओं से परिपूर्ण हैं। उन पर साधारण चर्चाओं में भी जिस मार्मिक ढङ्ग से रमणी-हृदय का अनन्त प्रणय, उसकी विश्व-व्यापी महानता, उसका उज्ज्वल पतिभाव और प्रणय-पथ में उसकी अक्षय साधना की पुनीत प्रतिमा चित्रित की गई है, उसे पढ़ते ही आँखें भर आती हैं और हृदय-वीणा के अत्यन्त कोमल तार एक अनियन्त्रित गति से बज उठते हैं। दुर्भाग्यवश रमणी-हृदय की उठती हुई सन्दिग्ध भावनाओं के कारण कमला की आशा-ज्योति अपनी सारी प्रभा छिटकाने के पहले ही सन्देह एवं निराशा के अनन्त तम में विलीन हो गई। इसका परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए—कमला को उन्माद-रोग हो गया। उसके अन्तिम पत्र प्रणय की स्मृति और उन्माद की विस्मृति की सम्मिलित अवस्थाओं में लिखे गए हैं। अनुवाद बड़ी योग्यता के साथ किया गया है और उसमें इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि भाषा सरल, सरस और सुबोध हो और मूल लेखिका की स्वाभाविकता किसी प्रकार नष्ट न होने पाए। पुस्तक अपने ढङ्ग की अनोखी है। काग़ज़ ४० पाउण्ड एण्टिक, पृष्ठ-संख्या ३००, छपाई-सफ़ाई दर्शनीय; मूल्य केवल ३) रु०; स्थायी ग्राहकों के लिए २।) मात्र! पुस्तक सुनहरी सजिल्द है और ऊपर तिरङ्गा Protecting Cover भी है!!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

—इलाहाबाद—

शान्ता

इस पुस्तक में देश-भक्ति और समाज-सेवा का सजीव वर्णन किया गया है। देश की वर्तमान अवस्था में हमें कौन-कौन सामाजिक सुधार करने की परमावश्यकता है; और वे सुधार किस प्रकार किए जा सकते हैं, आदि आवश्यक एवं उपयोगी विषयों का लेखक ने बड़ी योग्यता के साथ दिग्दर्शन कराया है। शान्ता और गङ्गाराम का शुद्ध और आदर्श-प्रेम देखकर हृदय गद्गद हो जाता है। साथ ही साथ हिन्दू-समाज के अत्याचार और षड्यन्त्र से शान्ता का उद्धार देखकर उसके साहस, धैर्य और स्वार्थ-त्याग की प्रशंसा करते ही बनती है। मूल्य केवल लागत-मात्र ॥) बारह आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है।

घरेलू चिकित्सा

[ले० अनेक सुविख्यात डॉक्टर, वैद्य और हकीम]

'चाँद' के प्रत्येक अङ्क में बड़े-बड़े नामी डॉक्टरों, वैद्यों और अनुभवी बड़े-बूढ़ों द्वारा लिखे गए हज़ारों अनमोल नुस्ख़े प्रकाशित हुए हैं, जिनसे सर्व-साधारण का बहुत-कुछ मङ्गल हुआ है, और जनता ने इन नुस्ख़ों की सचाई तथा इनके प्रयोग से होने वाले लाभ की मुक्त-कण्ठ से प्रशंसा की है। इनके द्वारा आए-दिन डॉक्टरों की भेंट किए जाने वाले सैकड़ों रुपए बचाए जा सकते हैं। इस महत्वपूर्ण पुस्तक की एक प्रति प्रत्येक सद्गृहस्थ को अपने यहाँ रखनी चाहिए। छपाई-सफ़ाई अत्युत्तम और सुन्दर। मोटे चिकने काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

स्थायी ग्राहकों को हमारे यहाँ की प्रकाशित सभी पुस्तकें, केवल प्रचार की दृष्टि से, पौने मूल्य में ही दी जाती हैं, इसे स्मरण रखिए!

उमासुन्दरी

[ले० श्रीमती शैलकुमारी देवी]

इस पुस्तक में पुरुष-समाज की विषय-वासना, अन्याय तथा भारतीय रमणियों के स्वार्थ-त्याग और पातिव्रत्य का ऐसा सुन्दर और मनोहर वर्णन किया गया है कि पढ़ते ही बनता है। सुन्दरी सुशीला का अपने पति सतीश पर अगाध प्रेम एवं विश्वास, उसके विपरीत सतीश बाबू का उमासुन्दरी नामक युवती पर मुग्ध हो जाना; उमासुन्दरी का अनुचित सम्बन्ध होते हुए भी सतीश को कुमार्ग से बचाना और उपदेश देकर उसे सन्मार्ग पर लाना आदि सुन्दर और शिक्षाप्रद घटनाओं को पढ़कर हृदय उमड़ पड़ता है। इतना ही नहीं, इसमें हिन्दू-समाज की स्वार्थपरता, काम-लोलुपता, विषय-वासना तथा अनेक कुरीतियों का हृदय-विदारक वर्णन किया गया है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर है। मूल्य केवल ॥) आने है; स्थायी ग्राहकों के लिए ॥-); दूसरी बार पुस्तक छपकर तैयार है!

गौरी-शङ्कर

आदर्श-भावों से भरा हुआ यह सामाजिक उपन्यास है। शङ्कर के प्रति गौरी का आदर्श-प्रेम सर्वथा प्रशंसनीय है। बालिका गौरी को धूर्तों ने किस प्रकार तङ्ग किया, बेचारी बालिका ने किस प्रकार कष्टों को चीरकर अपना मार्ग साफ़ किया, अन्त में चन्द्रकला नाम की एक वेश्या ने उसकी कैसी सच्ची सहायता की और उसका विवाह अन्त में शङ्कर के साथ कराया। यह सब बातें ऐसी हैं, जिनसे भारतीय स्त्री-समाज का मुखोज्ज्वल होता है। यह उपन्यास निश्चय ही समाज में एक आदर्श उपस्थित करेगा। छपाई-सफ़ाई सभी बहुत साफ़ और सुन्दर है। एक बार अवश्य पढ़िए। पुस्तक दूसरी बार छपकर तैयार है। मूल्य केवल ॥); स्थायी ग्राहकों से ॥-) मात्र!

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

अनाथ पत्नी

[ले० पण्डित भगवतीप्रसाद जी वाजपेयी]

[भूमिका-लेखक—श्री० विश्वम्भरनाथ जी शर्मा, कौशिक]

इस उपन्यास में बिछुड़े हुए दो हृदयों—पति-पत्नी—के अन्तर्द्वन्द्व का ऐसा सजीव चित्रण है कि पाठक एक बार इसके कुछ ही पन्ने पढ़कर करुणा, कुतूहल और विस्मय के भावों में ऐसे ओत-प्रोत हो जायँगे कि फिर क्या मजाल कि इसका अन्तिम पृष्ठ तक पढ़े बिना कहीं किसी पत्ते की खड़खड़ाहट तक सुन सकें !

अशिक्षित पिता की अदूरदर्शिता, पुत्र की मौन व्यथा, प्रथम पत्नी की समाज-सेवा, उसकी निराश रातें, पति का प्रथम पत्नी के लिए तड़पना और द्वितीय पत्नी को आघात न पहुँचाते हुए, उसे सन्तुष्ट रखने को सचेष्ट रहना, अन्त में घटनाओं के जाल में तीनों का एकत्रित होना और द्वितीय पत्नी के द्वारा, उसके अन्तकाल के समय, प्रथम पत्नी का प्रकट होना—ये सब दृश्य ऐसे मनोमोहक हैं, मानो लेखक ने जादू की क़लम से लिखे हों !!

लेखक कहानी और उपन्यास लिखने में वैसे भी लब्ध-प्रतिष्ठ हैं, पर इस उपन्यास के लिखने में तो उन्होंने सचमुच कमाल किया है। शरत् बाबू के उपन्यासों में जो मोहक आकर्षण है और मेरी करेली के उपन्यासों में जो तड़पन, वह सब आपको इसकी पृष्ठ-प्याखियों में सर्वत्र ही झलकता हुआ मिलेगा !!!

काग़ज़ बढ़िया, छपाई लाजवाब, मूल्य केवल २)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय इलाहाबाद

सखाराम

[ले॰ श्री॰ मदारीलाल जी गुप्त]

यदि वृद्ध-विवाह की नारकीय लीला तथा उससे होने वाले भयङ्कर परिणामों का नग्न-चित्र देखना हो तो एक बार इस उपन्यास को अवश्य पढ़िए। द्रव्य-लोभी, मूर्ख एवं नर-पिशाच माता-पिता किस प्रकार अपनी कन्या का गला घोंटते हैं—मृत्यु-मुख में जाने योग्य जर्जर एवं पतित बुड्ढे खूसट के साथ उसका अमूल्य जीवन नष्ट करते हैं और किस प्रकार वह कन्या उस बुड्ढे को ठुकराकर दूसरे की शरण लेने को उद्यत होती है—इसका सुविस्तृत वर्णन आपको इस पुस्तक में मिलेगा। मूल्य केवल १); स्थायी ग्राहकों से ॥।) मात्र!

मनोरमा

[ले॰ स्वर्गीय चण्डीप्रसाद जी, बी॰ ए॰ 'हृदयेश']

समाज का नङ्गा चित्र जिस योग्यता से इस पुस्तक में अङ्कित किया गया है, हम दावे के साथ कह सकते हैं, अब तक ऐसा एक भी उपन्यास हिन्दी-संसार में नहीं निकला है। बाल-विवाह और वृद्ध-विवाह के भयङ्कर दुष्परिणामों के अलावा भारतीय हिन्दू-विधवा का जीवन जैसा आदर्श और उच्च दिखलाया गया है, वह बड़ा ही स्वाभाविक है, पढ़ते ही तबीयत फड़क उठती है। भाषा अत्यन्त सरल और मुहावरेदार है। छपाई-सफ़ाई दर्शनीय, मूल्य केवल २॥), स्थायी ग्राहकों से १॥।=)

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय,

इलाहाबाद

दाम्पत्य जीवन

[लेखिका—श्रीमती सुशीलादेवी जी निगम, बी० ए०]

जिन महत्वपूर्ण विषयों पर प्रकाश डाला गया है, उनमें से कुछ ये हैं :—

(१) सहगमन (२) ब्रह्मचर्य (३) विवाह (४) आदर्श-विवाह (५) गर्भाशय में जल-सञ्चय (६) योनि-प्रदाह (७) योनि की खुजली (८) स्वप्न-दोष (९) डिम्ब-कोष के रोग (१०) कामोन्माद (११) मूत्राशय (१२) जननेन्द्रिय (१३) नपुंसकत्व (१४) अति-मैथुन (१५) शयन-गृह कैसा होना चाहिए ? (१६) सन्तान-वृद्धि-निग्रह (१७) गर्भ के पूर्व माता-पिता का प्रभाव (१८) मनचाही सन्तान उत्पन्न करना (१९) गर्भ पर तात्कालिक परिस्थिति का असर (२०) गर्भ के समय दम्पति का व्यवहार (२१) यौवन के उतार पर स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध (२२) रबर-कैप का प्रयोग (२३) माता का उत्तरदायित्व आदि-आदि सैकड़ों महत्वपूर्ण विषयों पर—उन विषयों पर, जिनके सम्बन्ध में जानकारी न होने के कारण हज़ारों युवक-युवतियाँ बुरी सोसाइटी में पड़कर अपना जीवन नष्ट कर लेती हैं—उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनकी अनभिज्ञता के कारण अधिकांश भारतीय गृह नरक की अग्नि में जल रहे हैं; उन महत्वपूर्ण विषयों पर, जिनको न जानने के कारण स्त्री पुरुष से और पुरुष स्त्री से असन्तुष्ट रहते हैं—भरपूर प्रकाश डाला गया है। हमें आशा है, देशवासी इस महत्वपूर्ण पुस्तक से लाभ उठाएँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग ३५०, तिरङ्गे Protecting Cover सहित सुन्दर सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥) रु०; 'चाँद' तथा पुस्तक-माला के स्थायी ग्राहकों से १॥।=) मात्र ! पुस्तक सचित्र है !!

☞ केवल विवाहित स्त्री-पुरुष ही पुस्तक मँगावें !

इस पुस्तक के सम्बन्ध में प्रकाशक के नाते हम केवल इतना ही कहना काफ़ी समझते हैं कि ऐसे नाज़ुक विषय पर इतनी सुन्दर, सरल और प्रामाणिक पुस्तक हिन्दी में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। इसकी सुयोग्य लेखिका ने काम-विज्ञान (Sexual Science) संबन्धी अनेक अङ्गरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी तथा गुजराती भाषा की पुस्तकें मनन करके इस कार्य में हाथ लगाया है। जिन अनेक पुस्तकों से सहायता ली गई है, उनमें से कुछ मूल्यवान् और प्रामाणिक पुस्तकों के नाम ये हैं :—

(1) Motherhood and the Relationship of the Sexes by *C. Gasquoine Hartley* (2) Confidential Talks with Husband & Wife by *Layman B. Sperry* (3) Youth's secret conflict by *Walter M. Gallichan* (4) The Threshold of Motherhood by *R. Douglas Howat* (5) Radiant Motherhood (6) Married Love and (7) Wise Parenthood by *Dr. Marie Stopes*

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

क्रान्तिकारी भावनाओं का सजीव चित्र

समाज की चिनगारियाँ

[लेखक—श्री॰ ज़हूरबख़्श जी]

एक अनन्त अतीत-काल से समाज के मूल में अन्ध-परम्पराएँ, अन्ध-विश्वास, अविश्रान्त अत्याचार और कुप्रथाएँ, भीषण अग्नि-ज्वालाएँ प्रज्वलित कर रही हैं और उनमें यह अभागा देश अपनी सदभिलाषाओं अपनी सत्कामनाओं, अपनी शक्तियों अपने धर्म और अपनी सभ्यता की आहुतियाँ दे रहा है। 'समाज की चिनगारियाँ' आपके समक्ष उसी दुर्दान्त दृश्य का एक धुँधला चित्र उपस्थित करने का प्रयास करती है। परन्तु यह धुँधला चित्र भी ऐसा दुखदायी है कि इसे देखकर आपके नेत्र आठ-आठ आँसू बहाए बिना न रहेंगे। 'समाज की चिनगारियाँ' आपको समाज के उस दारुण उत्पीड़न की मर्मस्पर्शी कथा सुनाने का उपक्रम करती है, जिसे सुनकर कभी आपका हृदय करुणा से उच्छ्वसित हो उठेगा, तो कभी मौन-हाहाकार कर उठेगा; कभी ग्लानि से गलित हो उठेगा, तो कभी जोश से फड़फड़ा उठेगा और कभी क्रोध की ज्वाला से भभक उठेगा तथा अन्त में आप आत्म-विस्मृत हो जायँगे।

पुस्तक बिलकुल मौलिक है और उसका एक-एक शब्द सत्य को साक्षी करके लिखा गया है। भाषा इसकी ऐसी सरल, बामुहाविरा, सुललित तथा करुणा की रागिनी से परिपूर्ण है कि पढ़ते ही बनती है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुस्तक की छपाई-सफ़ाई नेत्र-रञ्जक एवं समस्त कपड़े की जिल्द दर्शनीय हुई है; और सजीव प्रोटेक्टिङ्ग कवर ने तो इसकी सुन्दरता में चार चाँद लगा दिए हैं। फिर भी मूल्य केवल प्रचार-दृष्टि से लागत मात्र ३) रक्खा गया है। 'चाँद' तथा स्थायी ग्राहकों से २।) रु०

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

छप गई !　　　　　　　　　　प्रकाशित हो गई !!

अफ़्रिका-प्रवासी

भाई भवानीदयाल जी संन्यासी-लिखित

दक्षिण अफ़्रिका के मेरे अनुभव

दक्षिण अफ़्रिका के प्रवासी-भारतवासियों की नरक-यातना की कहानी आजकल प्रत्येक समाचार-पत्र में छप रही है। बड़े-बड़े भारतीय नेता इनके उद्धार के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न कर रहे हैं। महात्मा गाँधी, मि० सी० एफ़० एण्ड्रूज़, मि० पोलक आदि बड़े-बड़े नेताओं ने इन प्रवासी-भाइयों की करुण-स्थिति देखकर ख़ून के आँसू बहाए हैं। प० भवानीदयाल जी (सम्पादक 'हिन्दी') ने अपनी सारी ज़िन्दगी ही इन अभागे प्रवासी-भाइयों के सुधार में बिताई है। संन्यास ले चुकने पर भी आपको चैन नहीं पड़ा, आप फिर दक्षिण अफ़्रिका गए हैं। इस पुस्तक में आपके निजी अनुभवों का समावेश है। पुस्तक बड़ी रोचक है। पढ़ने में अच्छे उच्च-कोटि के उपन्यास का आनन्द आता है। इस एक पुस्तक को पढ़ लेने से सारे अफ़्रिका की सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति का सहज ही दिग्दर्शन हो जाता है, और वहाँ के स्थायी गोरों की स्वार्थपरता और धन-लोलुपता एवं अन्याय-प्रियता का अच्छा पता लग जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रवासी भारतीयों की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति जानने के लिए यह पुस्तक दर्पण-स्वरूप है। पुस्तक सजिल्द है और Protecting Cover भी लगाया गया है। मूल्य लागत मात्र केवल २।) रक्खा गया है। स्थायी ग्राहकों से १।||=); प्रत्येक स्त्री-पुरुष को पुस्तक एक बार अवश्य पढ़कर अपनी ज्ञान-वृद्धि करनी चाहिए।

व्यवस्थापिका 'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

दो अनमोल पुस्तकें !

देवदास

[सामाजिक उपन्यास]

देवदास को उपन्यास न कह कर यदि विविध अवस्थाओं के मानवी हृद्गत भावों का जीता-जागता चित्र कहें तो विशेष सार्थक होगा। देवदास पर पार्वती का अगाध प्रेम तथा धनी और निर्धन के कुटिल प्रश्न के कारण पार्वती का देवदास के साथ विवाह न होने पर भी उसका देवदास पर अपने पति से अधिक दावा देख कर दाँतों तले उँगली दबानी पड़ती है! पार्वती के वियोग के कारण देवदास का विक्षिप्तावस्था में करुणाजनक पतन पढ़ कर हृदय व्याकुल हो जाता है। सच्चे प्रेम के अद्भुत प्रभाव के कारण चन्द्रमुखी नाम की एक पतिता वेश्या को धर्ममय जीवन को अपनाते देखकर चमत्कृत हो जाना पड़ता है। अधिक प्रशंसा कर काग़ज़ काला करने से कोई लाभ नहीं। पुस्तक पढ़ने ही से सच्चा आनन्द मिलेगा और उसका महत्व मालूम होगा। पुस्तक की भाषा भी सरल, ललित और मुहावरेदार लिखी गई है। लगभग पौने दो सौ पृष्ठ की इस उत्तम पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० है; पर ग्रन्थ-माला के स्थायी ग्राहकों को पौने मूल्य अर्थात् ॥।) में ही दी जाती है।

ग्रह का फेर

मूल-लेखक—

[श्री० योगेन्द्रनाथ चौधरी, एम० ए०]

इस पुस्तक की विशेषता लेखक के नाम ही से प्रकट हो जाती है। यह बङ्गला के एक प्रसिद्ध उपन्यास का अनुवाद है। लड़के-लड़कियों की शादी-विवाह में असावधानी करने से जो भयङ्कर परिणाम होता है, उसका इसमें अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है। इसके अतिरिक्त यह बात भी इसमें अङ्कित की गई है कि अनाथ हिन्दू-बालिकाएँ किस प्रकार ठुकराई जाती हैं और उन्हें किस प्रकार ईसाई अपने चँगुल में फँसाते हैं। पुस्तक पढ़ने से पाठकों को जो आनन्द आता है, वह अकथनीय है। छपाई-सफ़ाई सब सुन्दर होते हुए भी पुस्तक का मूल्य केवल आठ आने तथा स्थायी ग्राहकों से छः आने मात्र!

व्यवस्थापिका,

'चाँद' कार्यालय, इलाहाबाद

LOVE LIES IN BEAUTY! BEAUTY LIES IN JEWELS!!

फ़ोन नं० २७४१, बड़ा बाज़ार

तार का पता—'नवचेतन'

आर्य-महिलाओं के लिए नवीन आविष्कार!

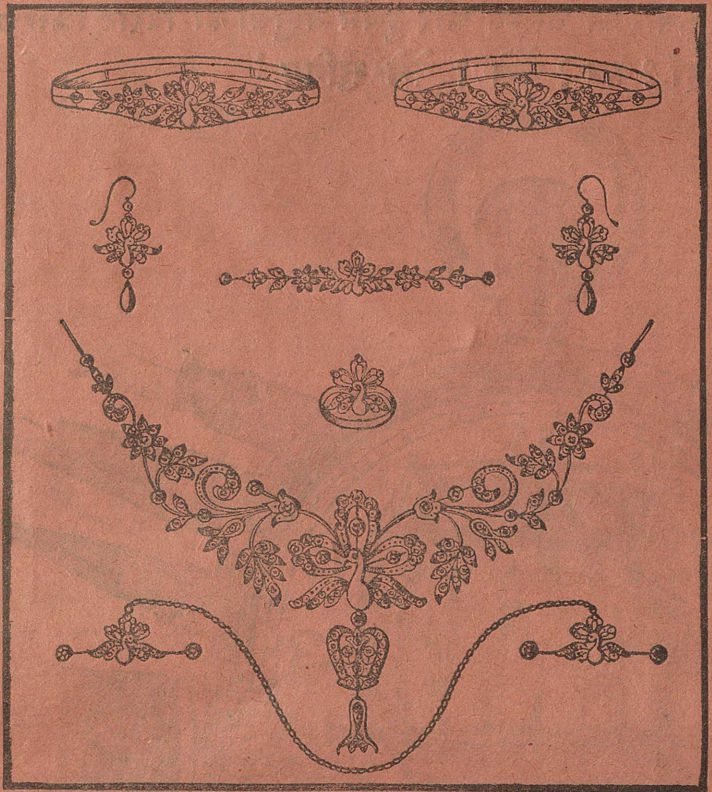

सोने का पूरा सेट जिसमें नेकलेस १, ब्रॉसलेट जोड़ा १, ईयरिङ्ग जोड़ा १, लेस-पिन जोड़ा १, साड़ी का ब्रोच १ और अँगूठी १— मोती, माणिक और पन्ना जड़ा हुआ, सब एक ही डिज़ाइन, बीच में मयूर बहुत उम्दा मीना किया हुआ है—का सुन्दर पूरा सेट बढ़िया मख़मल के बक्स के साथ मूल्य सिर्फ़ २८५) रु०

अलग-अलग मूल्य

नेकलेस	१२५)
ब्रासलेट जोड़ा एक	१००)
लेसपिन „ „	२५)
ईयरिङ्ग „ „	२५)
साड़ी का ब्रोच „	३०)
अँगूठी „	१५)

चित्र में दी हुई चीज़ छोटे साईज़ की हैं, किन्तु ग्राहकों को पूरे साईज़ का सामान भेजा जायगा।

साड़ी का ब्रोच मोतियों से सुसज्जित मूल्य ४०)
छोटा साईज़ ३०)

सौभाग्यवती

कुसुमकुमारी

किसी भी नाम का मोती जड़ा हुआ साड़ी का ब्रोच मूल्य ४०)
छोटा साईज़ " ३५)

ऑर्डर के साथ २५) पेशगी भेजना चाहिए

नोट—हमारे कारख़ाने में पक्का सोना तथा गिन्नी सोने का न्यू फ़ैशन का माल हर समय तैयार रहता है और ऑर्डर के अनुसार बनाकर भी भेजा जाता है। एक आना का टिकट भेज कर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगा कर देखिए!

ठि०—के० मणीलाल एण्ड को जौहरी, १७२ हैरिसन रोड, कलकत्ता

This PDF you are browsing now is in a series of several scanned documents by the Centre for the Study of Developing Societies (CSDS), Delhi

CSDS gratefully acknowledges the enterprise of the following savants/ institutions in making the digitzation possible:

Historian, Writer and Editor Priyamvad of Kanpur for the Hindi periodicals (Bhavishya, Chand, Madhuri)

Mr. Fuwad Khwaja for the Urdu weekly newspaper Sadaqat, edited by his grandfather and father.

Historian Shahid Amin for faciliating the donation.

British Library's Endangered Archives Programme (EAP-1435) for funding the project that involved rescue, scan, sharing and metadata creation.

ICAS-MP and India Habitat Centre for facilitating exhibitions.

Digital Upload by eGangotri Digital Preservation Trust.

CSDS
centre for the
study of developing
societies

BRITISH
LIBRARY